अमेशा योगदर्शन

उमेश योगदर्शन

(प्रथम खंड)

: लेखक :

योगासन-चित्रपट और उमेश योगदर्शन-द्वितीय खण्डके निर्माताः—
योगविद्या और प्राकृतिक चिकित्साके प्रायोगिक प्रचारक—
बौद्धिक, शारीरिक और स्वर-विज्ञानके सक्रिय शिक्षकः—
योगिराज श्री० उमेशचन्द्रजी (धर्मभूषण)
संस्थापक और संचालक,
श्रीरामतीर्थ योगाश्रम

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम प्रकाशन,
दादर-बम्बई १४ (भारत)
सन १९५९ ई.
शके १८८०
संवत् २०१५

मूल्य
रुपये १५ मात्र

प्रकाशक :
उमेशचंद्र एम्. जोशी,
संचालक, श्रीरामतीर्थ योगाश्रम प्रकाशन,
उमेशधाम, व्हिन्सेन्ट स्क्वेअर स्ट्रीट नं. २,
दादर (मध्य रेल्वे), बंबई १४ (भारत)

प्रथम आवृत्ति सन १९५९ ई.

मूल्य – भारतमें १५ रुपये मात्र
विदेशमें
यू. के. और युरोपखंडमें – १ पौंड (स्टर्लिंग) ८ शिलिंग
यु. एस्. ए. (अमेरिका) में ४ डॉलर्स

रंगीन रॅपर और आसन ब्लॉक्स् की छपाई
सर्वोदय प्रिंटर्स,
पालनजी एदलजी कम्पाउंड, खेतवाड़ी, बंबई ४ (भारत).

मुद्रक :
कृ. ना. सापळे,
रामकृष्ण प्रिंटिंग प्रेस,
रुक्मिणी–निवास, मोरबाग रोड,
दादर, बंबई १४ (भारत)

उमेश योगदर्शन (प्रथम खंड)

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ-संख्या
(१) योगिराज श्री० उमेशचंद्रजी, संचालक श्रीरामतीर्थ योगाश्रम का रंगीन छायाचित्र (फोटो) और	
चित्रमय योगदर्शन (छायाचित्र-विभाग) (विविध आसनोंका चित्रमय दर्शन तथा शरीर के अंतर्गत दृश्य, रोगनिवारक और आरोग्य तथा शक्तिवर्धक महत्त्वपूर्ण आसनोंका दिग्दर्शन)	९ से १२०
(२) प्रस्तावना	
योगाभ्यासका अधिकारी कौन है ?	१२१
भारतका अग्रस्थान	१२३
क्या शरीर और मनकी ओर ध्यान देना आवश्यक है ?	१२४
शंका- समाधान	१२५
दीर्घकालीन अनुभवका फल	१२६
रोगियोंके लिये	१२७
योगाभ्यासका व्यापक प्रचार आवश्यक	१२८
आसनोंका क्रमबद्ध अभ्यास	१२९
क्या योगाभ्यास व्यसन है ?	१२९
औषधियोंसे यथासम्भव बचें	१३०
दवाओंसे रोगकी जड़ नहीं जाती	१३१

विषय	पृष्ठ-संख्या
योगाभ्यासका वरदान	१३२
योगाभ्यासकी व्याप्ति	१३३
धनका सदुपयोग	१३३
देशी-विदेशी खेल और योगाभ्यास	१३४
योगाश्रमोंका महत्त्व	१३५
समयका सदुपयोग	१३६
(३) उमेश योगदर्शन	
आवश्यक निवेदन	१३८
कुछ मिथ्या प्रदर्शन	१३९
हठयोग क्या है ?	१३९
यमका निरूपण	१४१
अहिंसा	१४१
सत्य	१४१
अस्तेय	१४२
ब्रह्मचर्य	१४२
अपरिग्रह	१४३
नियमका निरूपण	१४३
शौच	१४४
सन्तोष	१४४
तप	१४४
स्वाध्याय	१४५
ईश्वरप्रणिधान	१४५
(४) मलशोधन-कर्म (षट्कर्म)	**१४६**
नेतिकर्म	१४८
जलनेति	१४८
सूत्रनेति (अपूर्ण)	१४९
सूत्रनेति (सम्पूर्ण)	१५०

विषय	पृष्ठ-संख्या
धौतिकर्म (अपूर्ण और सम्पूर्ण)	१५१
दण्डधौति (अपूर्ण)	१५२
दण्डधौति (सम्पूर्ण)	१५३
नवलिकर्म	१५४
वस्तिकर्म	१५७
कपालभाति	१५९
त्राटक	१६१
(५) आसन	**१६७**
व्यायाम के अन्य प्रकार और योगासनों की विशेषता	१६९
योगाभ्यासके लिये आरम्भिक नियम	१७०
अन्य आवश्यक निर्देश	१७१
जलका उपयोग	१७२
आसन करनेवालेका आहार घटता क्यों है ?	१७३
बहनोंके लिये योगासनोंका अभ्यास आवश्यक है या नहीं ?	१७४
बहनें कौन-सा आसन न करें ?	१७५
आसन कितने हैं ?	१७६
८४ आसनोंका दिग्दर्शन	१७७
आसनोंका निरूपण	१७९
(अ) अल्प श्रमसाध्य आसन-विभाग	**१७९**
(१) सिद्धासन	१७९
(२) स्वस्तिकासन (सुखासन)	१८०
(३) शवासन	१८१
(४) एकपाद उत्थानपादासन	१८३
द्विपाद उत्थानपादासन	१८५
(५) वज्रासन (पहला प्रकार)	१८६
वज्रासन (दूसरा प्रकार)	१८७
(६) एकपाद पवनमुक्तासन	१८८
द्विपाद पवनमुक्तासन	१८९

विषय पृष्ठ-संख्या

(७) वीरासन १९०

(८) त्रिकोणासन १९१

(९) आकर्षण (आकर्ण) धनुरासन १९२

(ब) श्रमसाध्य आसन-विभाग १९४

(१) शीर्षासन (अपूर्ण) १९४

शीर्षासन (सम्पूर्ण-पहला प्रकार) १९५

शीर्षासनका सम्पूर्ण रूप (दूसरा प्रकार) १९८

शीर्षासनस्थ पद्मासन १९९

(२) पद्मासन २००

पूर्ण पद्मासन-बद्ध पद्मासन (पहला प्रकार) २०२

बद्ध पद्मासन का दूसरा प्रकार २०२

बद्ध पद्मासनका तीसरा प्रकार २०३

बद्ध पद्मासनका चौथा प्रकार २०३

बद्ध पद्मासनका पॅचवां प्रकार २०४

बद्ध पद्मासनका छठां सम्पूर्ण प्रकार २०६

(३) सुप्त उर्ध्व हस्तासन २०६

(४) भुजगासन (अपूर्ण रूप) २०७

भुजंगासन (सम्पूर्ण रूप) २०८

(५) मत्स्यासन २०९

(६) तोलांगुलासन (तुलासन) २११

(७) एकपाद शलभासन २१२

द्विपाद शलभासन २१३

(८) जानु-शिरासन (पहला प्रकार) २१४

जानु-शिरासन (दूसरा और तीसरा प्रकार) २१५

(९) गोमुखासन (पृष्ठभाग) २१७

गोमुखासन (अग्रभाग) २१८

(१०) विपरीतकरणी (उर्ध्व सर्वांगासन सम्पूर्ण) २१९

विपरीतकरणी अवस्थामें पद्मासन २२१

विषय पृष्ठ-संख्या

विपरीतकरणी अवस्थामें पद्मासनका दूसरा प्रकार २२२
(११) नौकासन (पहला और दूसरा प्रकार) २२३
नौकासन (तृतीय प्रकार, २२४
(१२) अर्घ मत्स्येंद्रासन (पहला अपूर्ण प्रकार) २२५
अर्घ मत्स्येंद्रासन (पहला सम्पूर्ण प्रकार) २२६
अर्घ मत्स्येंद्रासन (दूसरा अपूर्ण प्रकार) २२७
अर्घ मत्स्येंद्रासन (दूसरा सम्पूर्ण प्रकार) २२७
(१३) पूर्ण मत्स्येंद्रासन (बायें अंगका अभ्यास) २२८
पूर्ण मत्स्येंद्रासन (दाहिने अंगका अभ्यास) २२९
(१४) लोलासन (पहला प्रकार) २३०
लोलासन (दूसरा प्रकार) २३१
लोलासन (तीसरा प्रकार) २३२
(१५) उत्कटासन २३२
(१६) गोरक्षासन (पहला अपूर्ण प्रकार) २३३
गोरक्षासन (दूसरा अपूर्ण प्रकार) २३४
गोरक्षासन (सम्पूर्ण अग्रभाग) २३४
गोरक्षासन (सम्पूर्ण पृष्ठभाग) २३५
(१७) कूर्मासन २३७
(१८) बकासन २३९
(१९) कर्णपीडनासन २४०

(क) विशेष श्रमसाध्य आसन-विभाग २४२

(१) पश्चिमोत्तानासन २४२
(२) सुप्त वज्रासन (पहला प्रकार) २४४
सुप्त वज्रासन (दूसरा प्रकार) २४५
(३) उर्ध्वपाद शिरासन २४६
(४) उर्ध्वपाद हस्तासन २४७
(५) सर्वांगासन (हलासन-पहला प्रकार) २४८
सर्वांगासन (हलासन-दूसरा प्रकार) २४८

विषय	पृष्ठ-संख्या
सर्वांगासन (हलासन – तीसरा प्रकार)	२४९
(६) विस्तृतपाद सर्वांगासन (पृष्ठभाग)	२५०
विस्तृतपाद सर्वांगासन (अग्रभाग)	२५१
(७) एकपाद भुजासन	२५२
द्विपाद भुजासन	२५३
(८) चक्रासन– पहला प्रकार (अपूर्ण)	२५५
चक्रासन– दूसरा प्रकार (संपूर्ण)	२५५
(९) उष्ट्रासन	२५७
(१०) हंसासन (अपूर्ण)	२५९
हंसासन (संपूर्ण)	२५९
(११) मयूरासन	२६१
(१२) मयूरी आसन	२६३
(१३) विस्तृतपाद वक्ष (छाती) भूमि-स्पर्शासन (पहला प्रकार और दूसरा प्रकार)	२६४
विस्तृतपाद वक्ष (छाती) भूमि-स्पर्शासन (संपूर्ण)	२६५
(१४) सिंहासन	२६७
(१५) गरुडासन	२६८
(१६) पादांगुष्ठासन	२६९
(१७) **शिरासन** (एकपाद)	२७१
द्विपाद शिरासन (अग्रभाग)	२७२
द्विपाद शिरासन (पृष्ठभाग)	२७३
सुप्त द्विपाद शिरासन	२७३
(१८) कुक्कुटासन	२७४
(१९) गर्भासन	२७६
(२०) वीर्य-स्तम्भनासन	२७७
(२१) सुप्त धनुरासन	२७९
(२२) वृक्षासन	२८०

विषय	पृष्ठ-संख्या

(६) रोग और उसके यौगिक उपचार ... २८१

नीरोग होनेपर भी शरीर और मनको यथावत् बनाये रखनेके लिये मलशोधन-कर्म, आसन और प्राणायाम ... २८१

(१) शिरोवेदना ... २८३

(२) मलबद्धता (कब्ज) ... २८४

(३) कामला ... २९४

(४) मुखमें दुर्गन्ध ... २९४

(५) अग्निमान्द्य ... २९५

(६) क्षय (T. B.) ... २९७

(७) वीर्य-विकार ... २९९

(८) दृष्टिक्षीणता के कारण और उपचार ... ३०१

(९) स्मरण-शक्ति-संवर्धन ... ३०४

(१०) अनिद्रा रोग ... ३०६

(११) हृदय-विकार ... ३०८

(१२) दमा (श्वास-अस्थमा) ... ३१०

(१३) मूर्च्छा रोग ... ३१५

(१४) केन्सर (अर्बुद-नासूर) ... ३१९

(१५) मूलव्याधि (अर्श-बवासीर) ... ३२३

(१६) आन्त्रपुच्छ रोग (एपेन्डिसाईटिस) ... ३२६

(१७) अण्डवृद्धि रोग ... ३३०

(१८) हाथीपग (श्लीपद) ... ३३४

(१९) पाण्डुरोग-एनीमिया ... ३३९

(२०) शारीरिक क्षीणता ... ३४३

(७) **श्रीरामतीर्थ योगाश्रम** की सर्वतोभद्र उपयोगिता

आमजनता और योगसाधकोंकी सम्मतियां—आपबीती ... ३५१

(१) निस्स्वार्थ लोकसेवाका आदर्श ... ३५१

(२) शारीरिक एवं मानसिक शक्ति-प्रदानका परोपकारी आयोजन ... ३५२

(३) हार्दिक उद्गार ... ३५२

विषय पृष्ठ-संख्या

सर्वांगासन (हलासन – तीसरा प्रकार) २४९
(६) विस्तृतपाद सर्वांगासन (पृष्ठभाग) २५०
विस्तृतपाद सर्वांगासन (अग्रभाग) २५१
(७) एकपाद भुजासन २५२
द्विपाद भुजासन २५३
(८) चक्रासन– पहला प्रकार (अपूर्ण) २५५
चक्रासन– दूसरा प्रकार (संपूर्ण) २५५
(९) उष्ट्रासन २५७
(१०) हंसासन (अपूर्ण) २५९
हसासन (संपूर्ण) २५९
(११) मयूरासन २६१
(१२) मयूरी आसन २६३
(१३) विस्तृतपाद वक्ष (छाती) भूमि-स्पर्शासन (पहला प्रकार और दूसरा प्रकार) २६४
विस्तृतपाद वक्ष (छाती) भूमि-स्पर्शासन (सपूर्ण) २६५
(१४) सिंहासन २६७
(१५) गरुड़ासन २६८
(१६) पादागुष्ठासन २६९
(१७) **शिरासन** (एकपाद) २७१
द्विपाद शिरासन (अग्रभाग) २७२
द्विपाद शिरासन (पृष्ठभाग) २७३
सुप्त द्विपाद शिरासन २७३
(१८) कुक्कुटासन २७४
(१९) गर्भासन २७६
(२०) वीर्य-स्तम्भनासन २७७
(२१) सुप्त धनुरासन २७९
(२२) वृक्षासन २८०

विषय पृष्ठ-संख्या

(६) रोग और उसके यौगिक उपचार — २८१

नीरोग होनेपर भी शरीर और मनको यथावत् बनाये रखनेके लिये मलशोधन कर्म, आसन और प्राणायाम — २८१

(१) शिरोवेदना — २८३
(२) मलबद्धता (कब्ज) — २८८
(३) कामला — २९४
(४) मुखमें दुर्गन्ध — २९४
(५) अग्निमान्द्य — २९५
(६) क्षय (T. B) — २९८
(७) वीर्य-विकार — २९९
(८) दृष्टिक्षीणता के कारण और उपचार — ३०१
(९) स्मरण-शक्ति-संवर्धन — ३०४
(१०) अनिद्रा रोग — ३०६
(११) हृदय-विकार — ३०८
(१२) दमा (श्वास-अस्थमा) — ३१०
(१३) मूर्च्छा रोग — ३१५
(१४) केन्सर (अर्बुद-नासूर) — ३१९
(१५) मूलव्याधि (अर्श-बवासीर) — ३२३
(१६) आन्त्रपुच्छ रोग (एपेन्डिसाईटिस) — ३२६
(१७) अण्डवृद्धि रोग — ३३०
(१८) हाथीपग (श्लीपद) — ३३४
(१९) पाण्डुरोग-एनीमिया — ३३९
(२०) शारीरिक क्षीणता — ३४३

(७) **श्रीरामतीर्थ योगाश्रम** की सर्वतोभद्र उपयोगिता

आमजनता और योगसाधकोंकी सम्मतियां—आपबीती — ३५१

(१) निस्स्वार्थ लोकसेवाका आदर्श — ३५१
(२) शारीरिक एवं मानसिक शक्ति-प्रदानका परोपकारी आयोजन — ३५२
(३) हार्दिक उद्‌गार — ३५२

विषय पृष्ठ–संख्या

(४) नवचेतन और उल्लासके पुरस्कर्ता श्री. योगिराजजी ३५३

(५) आन्तरिक समस्याओंका सरल समाधान ३५३

(६) डाक्टरोंके पास कभी न जायेंगे ३५४

(७) बिना दवाके दमाके रोगसे मै कैसे मुक्त हुआ ? ३५५

(८) मानव–देहमें सच्चिदानन्दकी झांकी ३५६

(९) जन–सेवाका पवित्र व्रत ३५७

(१०) हठीला दमा तथा शरदी मिट गई ३५७

(११) यौगिक उपचारोंकी महत्ता ३५८

(१२) दमा समूल नष्ट हो गया ३५९

(१३) आखोंकी ज्योतिमें असीम वृद्धि ३५९

(१४) योग और कायाकल्प ३६०

(१५) असाध्य व्याधियोंसे छुटकारा ३६१

(१६) लोककल्याण की सच्ची प्रवृत्ति ३६१

(१७) बवासीर (मूलव्याधि) मिट गई ३६२

(१८) योगाभ्यासके अलभ्य एवं अद्भुत लाभ ३६३

(१९) शरदी और गलेके रोगसे छुटकारा ३६४

(२०) योगाभ्यास द्वारा अनेक रोगोंसे मुक्ति ३६५

(२१) मेरा अनन्य अनुभव ३६५

(२२) वजनमें आशातीत वृद्धि ३६६

(२३) नेत्र–रोगसे मुक्ति ३६७

(२४) यौगिक और प्राकृतिक चिकित्साका अप्रतिहत प्रभाव ३६७

(२५) बिहारके सहकारिता, पशुपालन एवं कानून–मन्त्री श्री० जगत्नारायणलालके हृदयोद्गार ३६८

(२६) श्री० रामप्यारी देवी, एम्. एल्. सी. (पटना, बिहार) ३६९

(८) **योगीराज श्री० उमेशचन्द्रजी (स्वामीजी)**

संस्थापक और संचालक, **श्री रामतीर्थ योगाश्रम** और प्रस्तुत ग्रंथके लेखक का संक्षिप्त जीवन–परिचय ३७१

विषय	पृष्ठ-संख्या
श्री० योगीराजजीका प्रथम	३७३
व्यक्तित्व का प्रभावशाली स्वरूप	३७३
श्रीरामतीर्थ योगाश्रम	३७५
प्राकृतिक चिकित्साके प्रचारक	३७८
क्या प्राकृतिक चिकित्सा महँगी है ?	३७९
प्राकृतिक चिकित्सा की सुदक्षता	३८१
योगिराजजीका संक्षिप्त जीवन-वृत्त	३८२
विद्योपासना, साधना-व्रत और कला-प्रेम	३८३
श्रीरामतीर्थ योगाश्रमकी स्थापना और कार्यका श्रीगणेश	३८४
एक दिनकी बात	३८८
स्वामीजीका विवेचनात्मक और सारगर्भित उत्तर	३८९
पुष्पका आध्यात्मिक महत्त्व	३९०
प्राकृतिक जीवनमें वन-पर्वतोंका महत्त्व	३९१
वन-भ्रमण का विशेष प्रेम	३९३
सन्तों का परोपकारी जीवन	३९४
स्वयंसिद्ध साधक स्वामीजी	३९४
योगाश्रमके कार्य-विस्तार की महत्त्वाकांक्षा	३९६
स्वामीजीके उपास्य	३९६
प्रार्थनामय जीवन	३९६
दैनिक जीवनपर विचारोंका प्रभाव	३९७
मंगलकारी और लोकप्रिय अनुष्ठान	३९८
मानवमें दिव्य जीवनकी प्रतिष्ठा	३९९
साधकोंको लोकोत्तर स्थितिपर पहुचाने का शुभ संकल्प	४००
देशको शक्तिशाली और सुयोग्य नागरिकोंकी प्राप्ति	४०२
अन्तिम अभ्यर्थना	४०२
अनुसारिणी (शुद्धि-पत्र)	४०४

卐

चित्रमय योगदर्शन

योगीराज श्री उमेशचंद्रजी

संचालक-श्री रामतीर्थ योगाश्रम

लेखक-"उमेश योग दर्शन"

Yogiraj Shri Umeshchandraji

Director-Shri Ramtirth Yogashram

Author-"Umesh Yoga Darshan"

मलशोधन कर्म—प्रथम विभाग

CLINICAL TESTS — First Section

चित्र सं. १ सूत्रनेति-अपूर्ण

P No I Sutra Neti-Part One
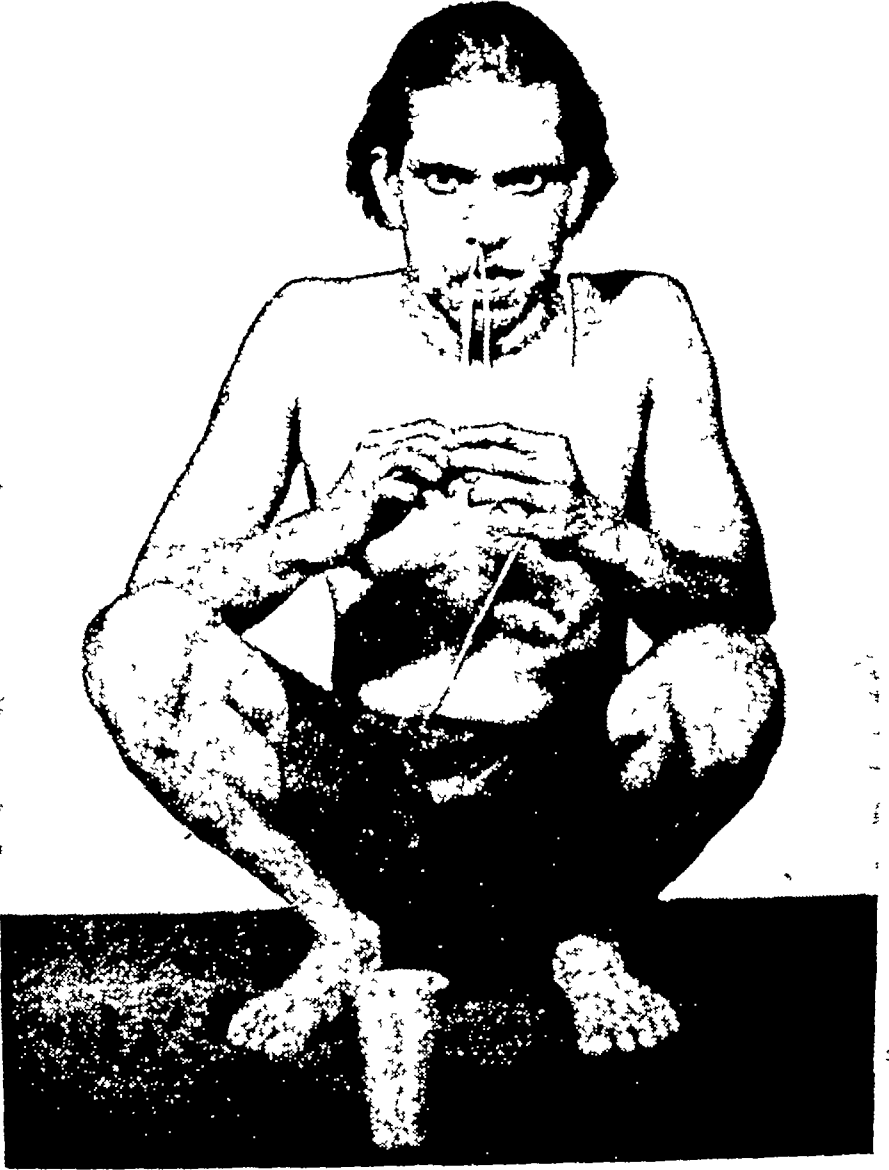
चित्र सं. २ सूत्रनेति–सम्पूर्ण

P No 2 Sutra Neti–Part Two

चित्र सं. ३ धौतिकर्म–अपूर्ण
P. No 3 Dhauti Karma-Part One

चित्र सं. ४ धौतिकर्म-सम्पूर्ण

P. No. 4 Dhauti Karma-Part Two

चित्र सं. ५ दण्डधौति–अपूर्ण
P No. 5 Danda Dhauti-Part One

चित्र सं० 6 दण्डधौति संपूर्ण
P No 6 Danda Dhouti (Part Two)
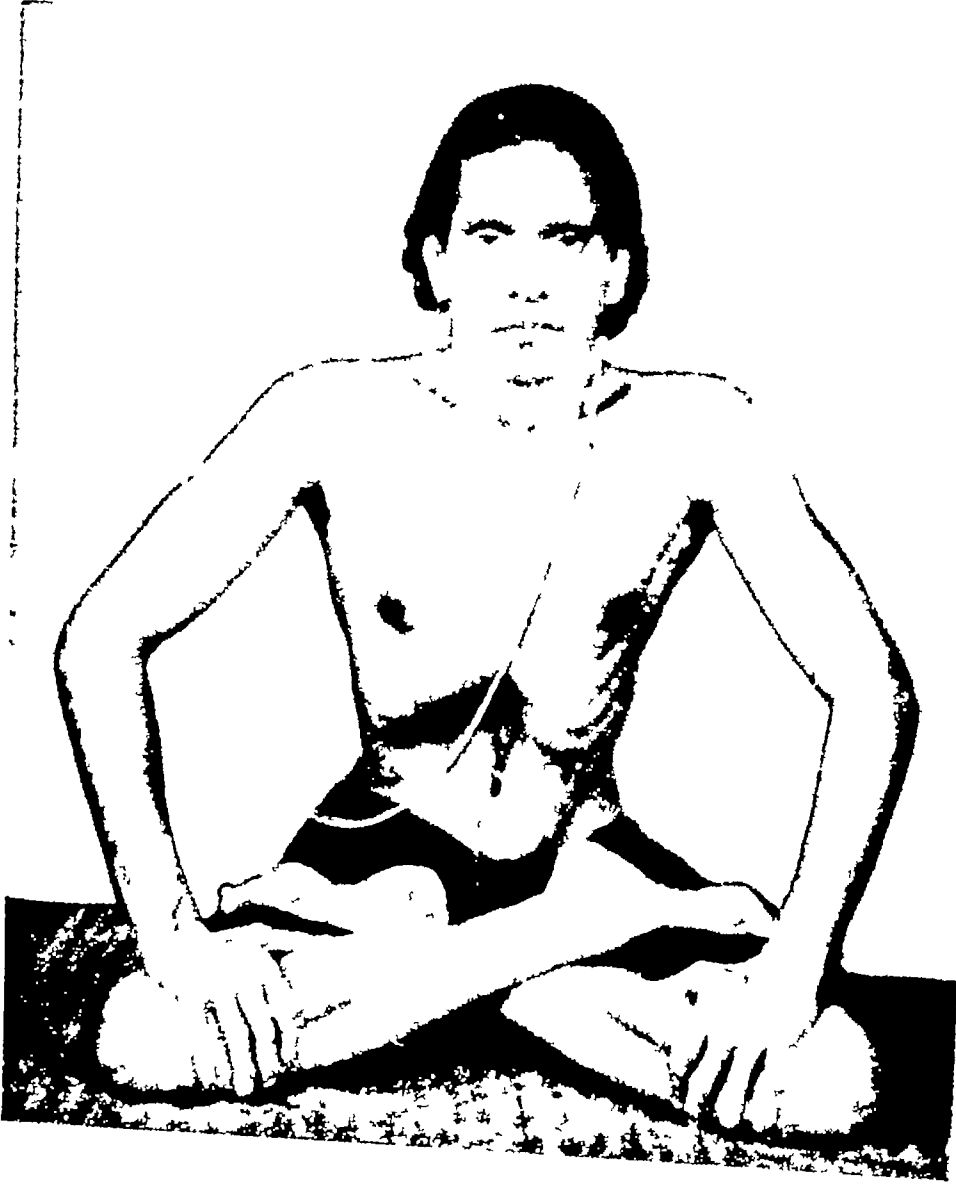
चित्र सं० 7 वाम नवलि (बैठकर)
P No 7 Vama Nauli (Squatting Pose)

चित्र सं. ८ दक्षिण नवलि (बैठकर)

P No 8 Dakshina (Right) Nauli (Squatting Pose)
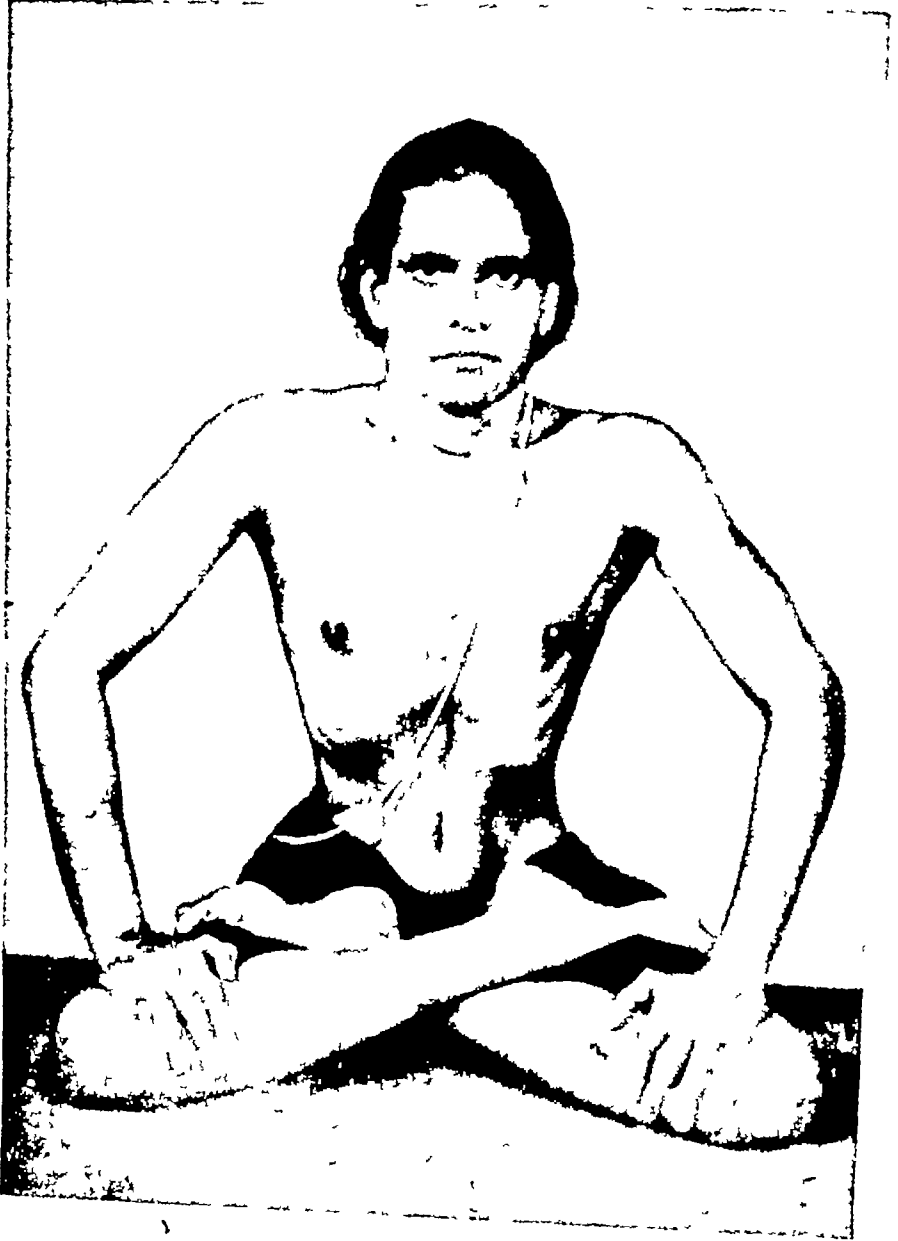
चित्र सं. ९ मध्य नवलि (बैठकर)
P. No 9 Madhya (Middle) Nauli (Squatting Pose)
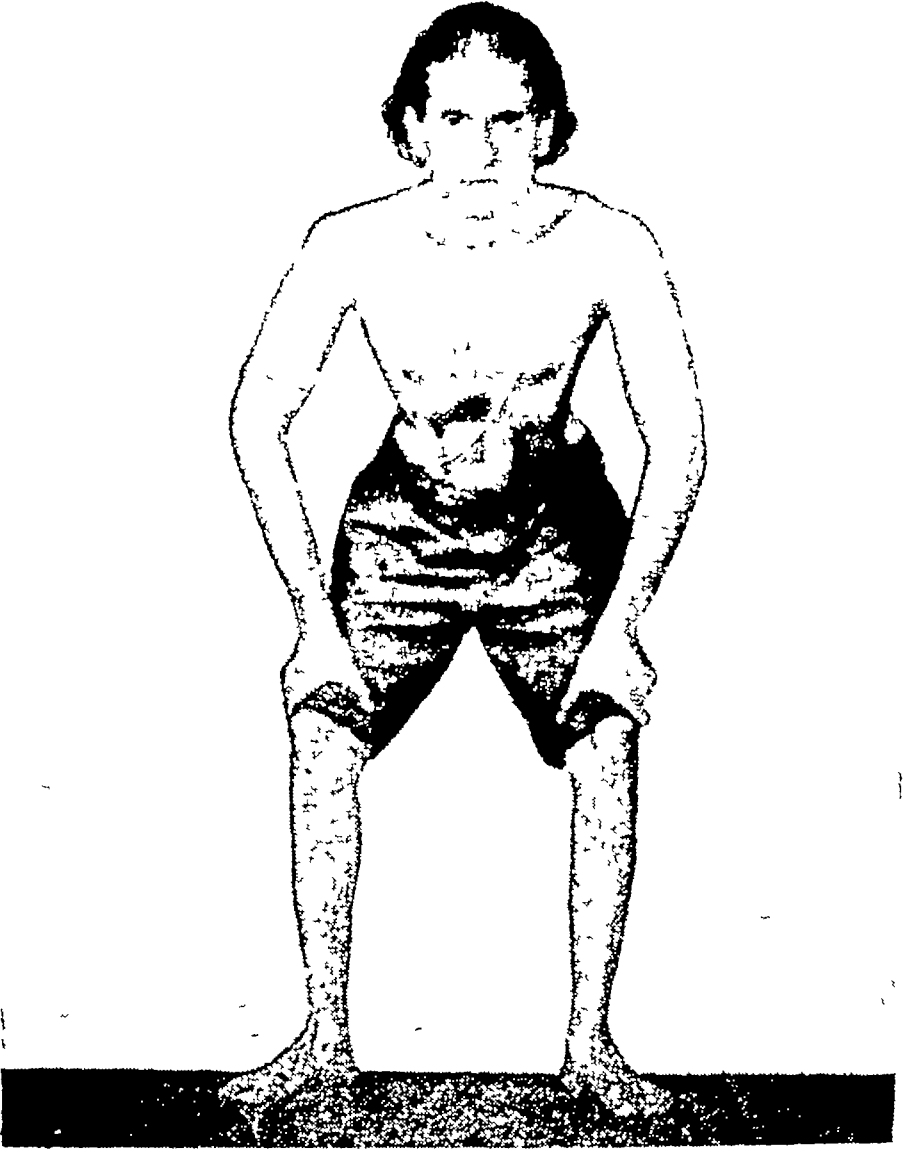
चित्र सं० 10 मध्य नवलि (खड़े होकर)
P No 10 Madhya (Middle) Nauli (Standing Pose)

अल्प श्रम साध्य विभाग—द्वितीय विभाग

AN EASY COURSE—Second Section
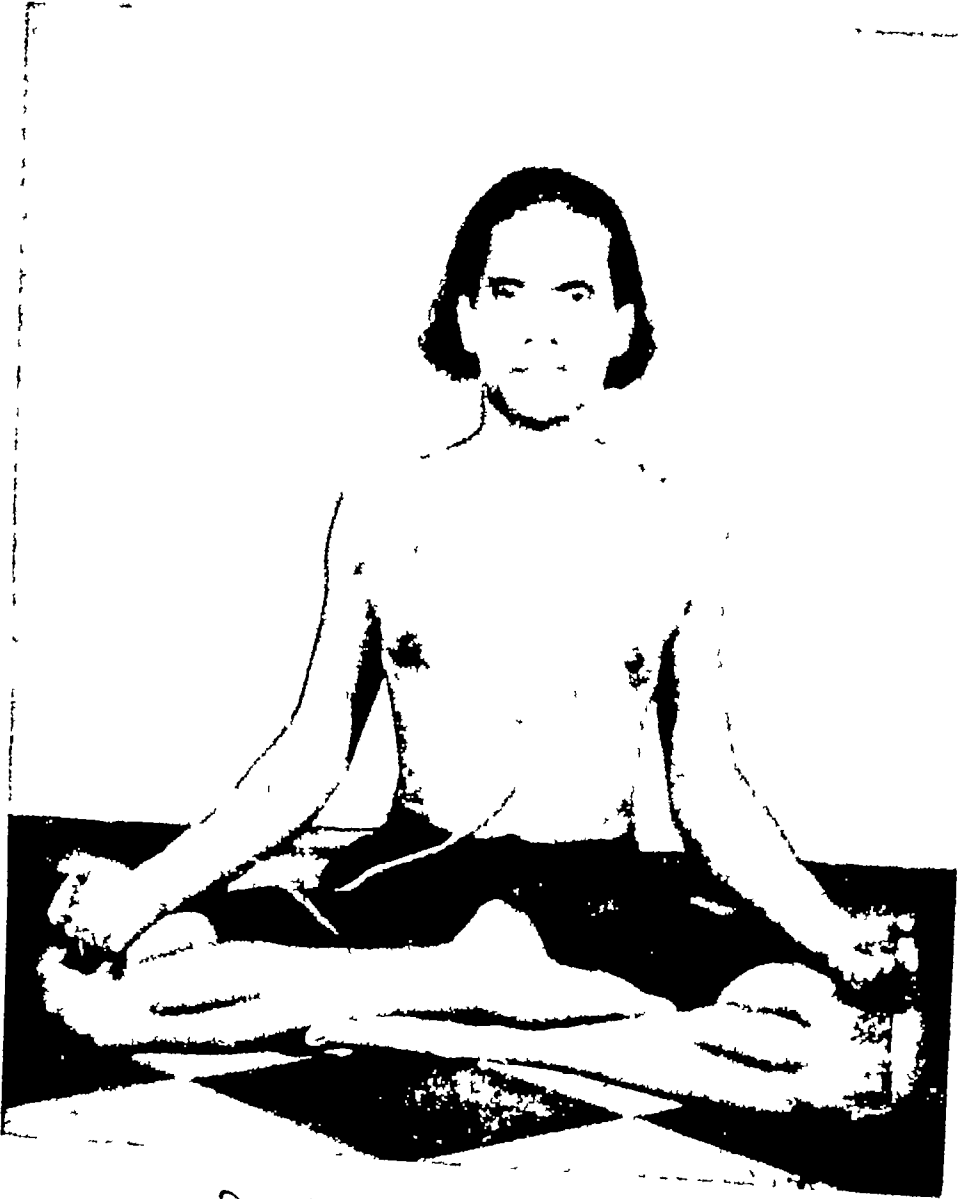
चित्र सं० 1 (पूर्ण सं. 11) सिद्धासन ✓ १
P No 1 (S No 11) Siddhasana
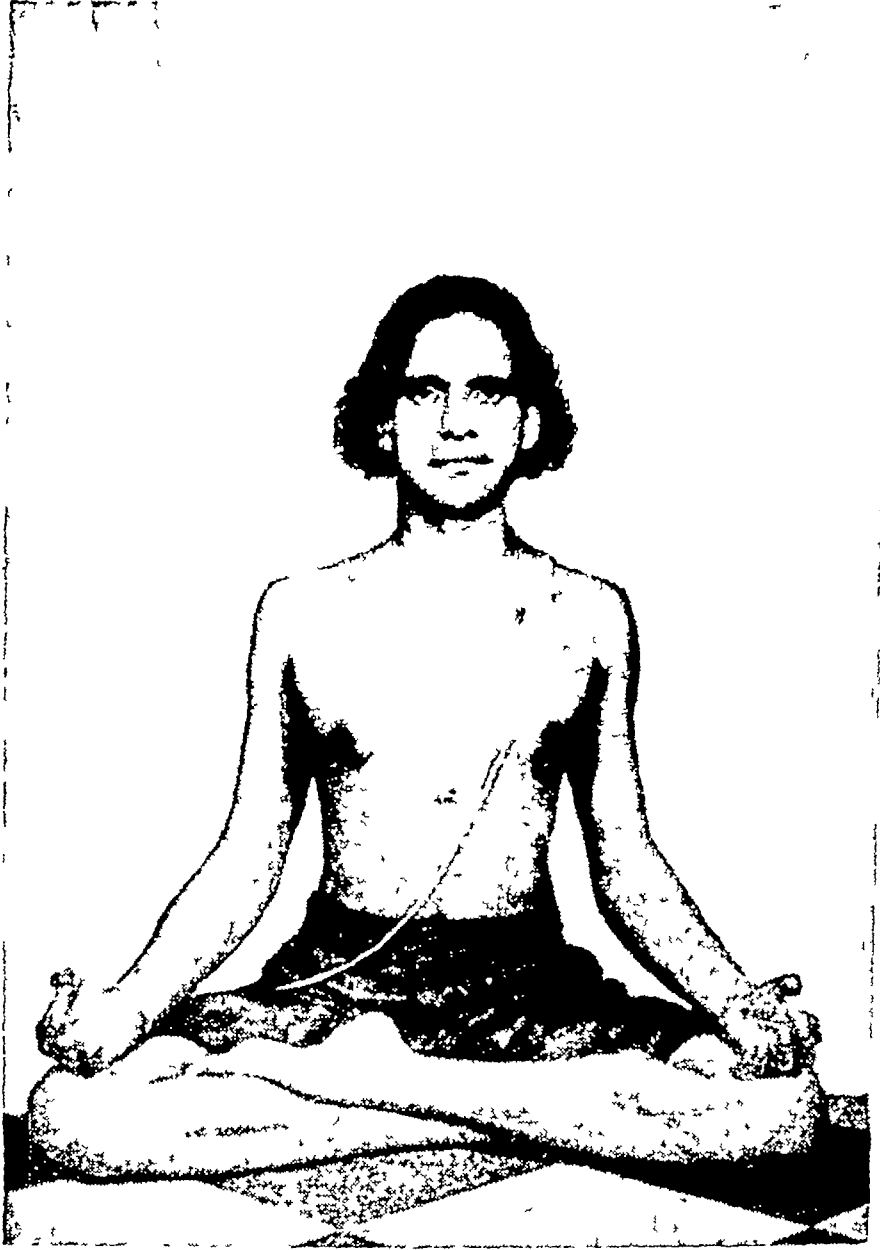
चित्र सं. २ (पूर्ण सं. १२) स्वस्तिकासन (सुखासन)
P No 2 (S No 12) Swastikasana (Sukhasana)
(Easy ose)

चित्र सं. ३ (पूर्ण सं. १३) शवासन

P No 3 (S. No 13) Shavasana (Dead Pose)
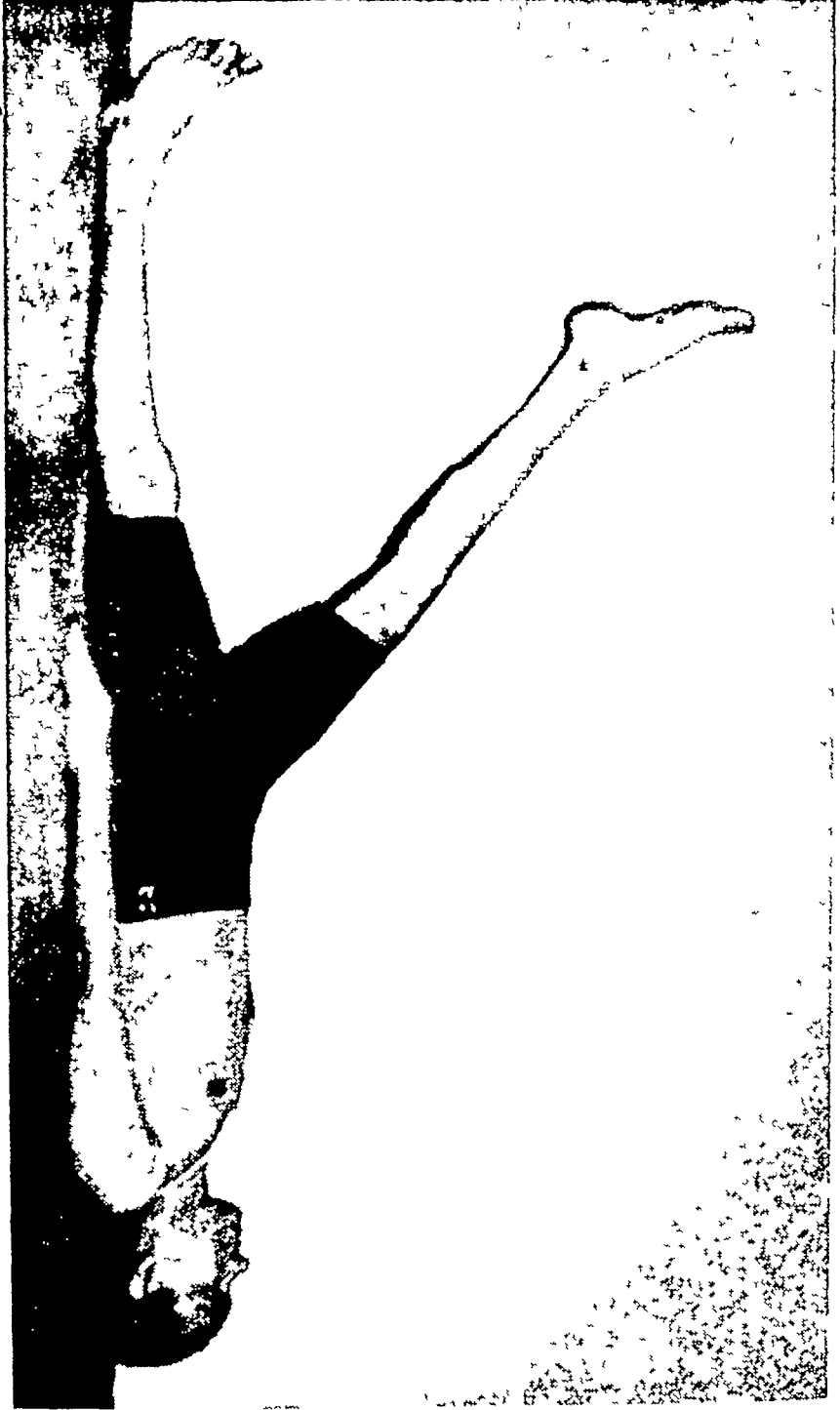
चित्र सं. ४ (पूर्ण सं. १४) एक पाद उत्थान पादासन
P No 4 (S. No 14) Eka Pada Utthan Padasana
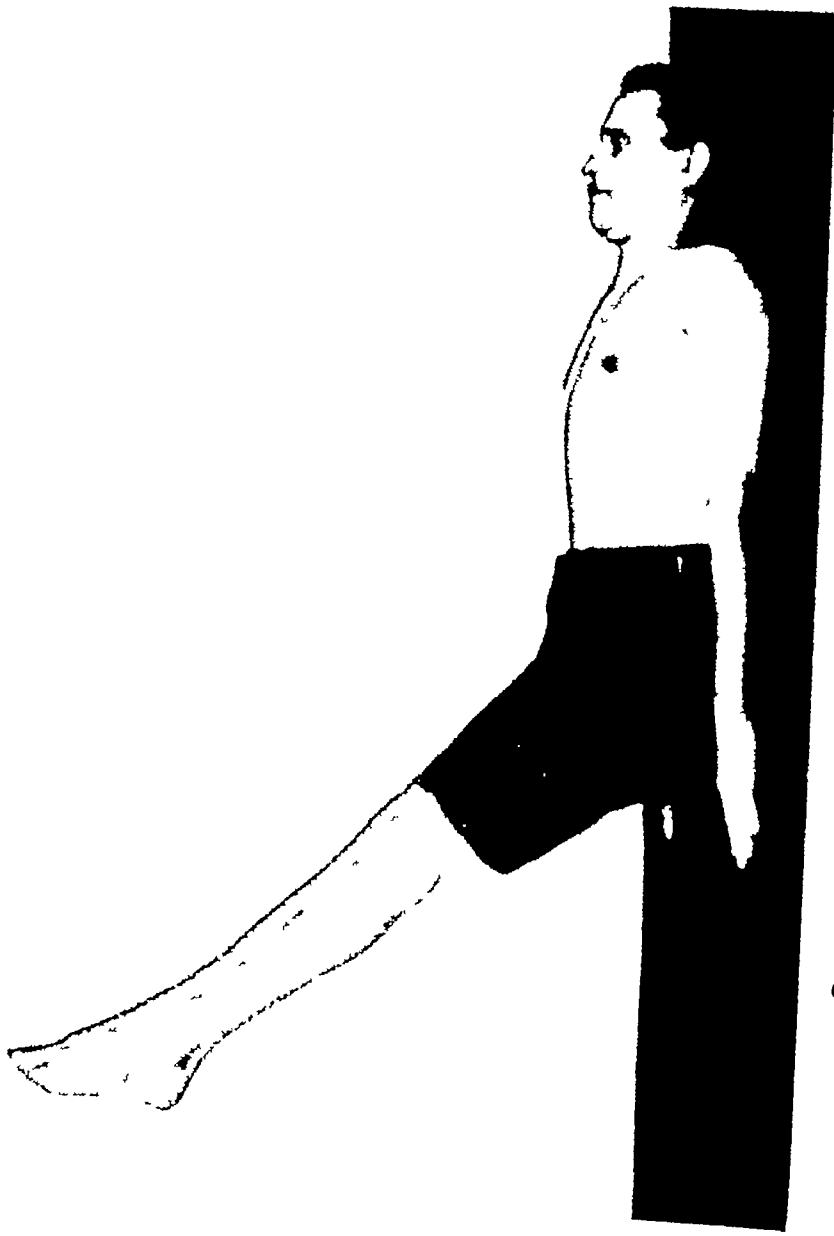
चित्र सं. ५ (पूर्ण सं. १५) द्वि पाद उत्थान पादासन
P No 5 (S No 15) Dwi Pada Utthan Padasana
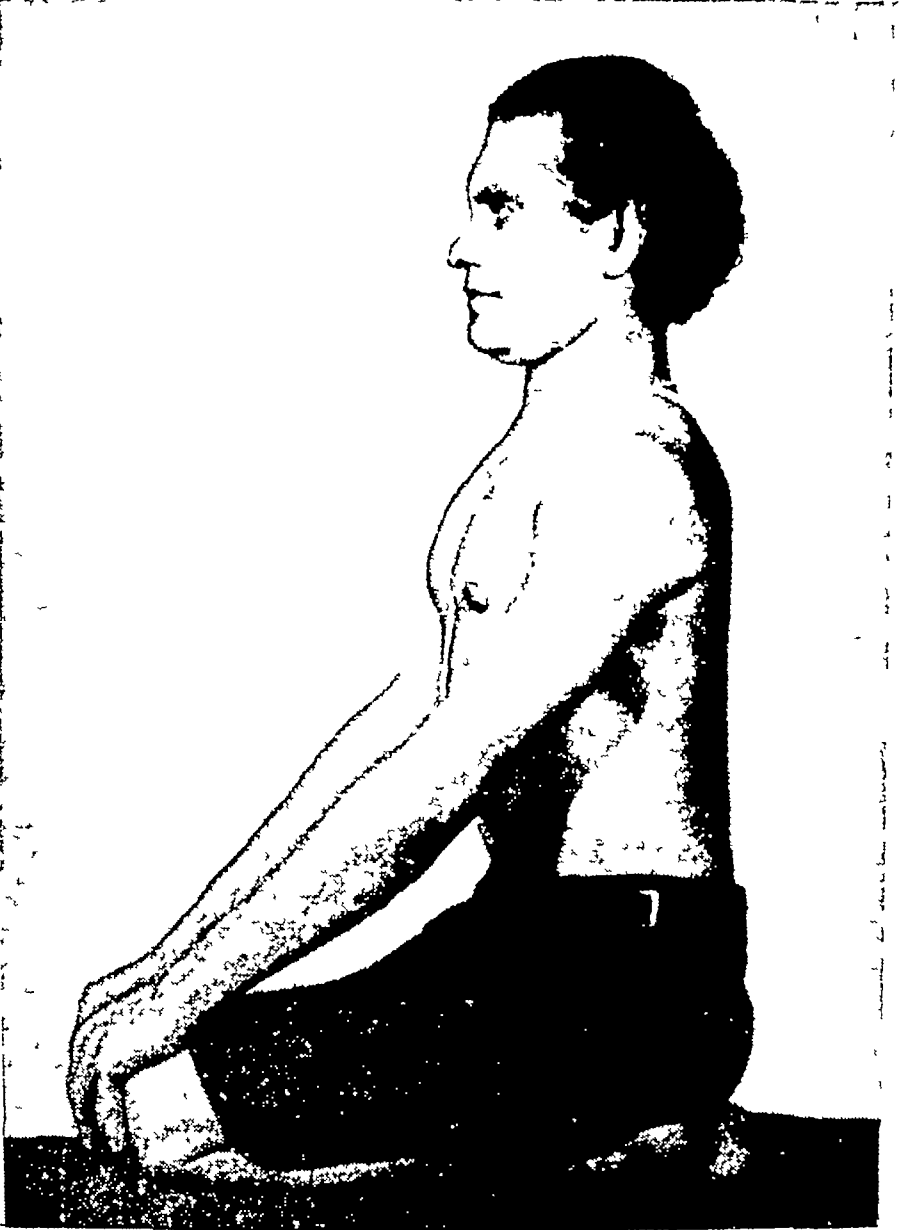
चित्र सं. ६ (पूर्ण सं. १६) वज्रासन (पहला प्रकार)
P No 6 (S. No 16) Vajrasana (First Part)
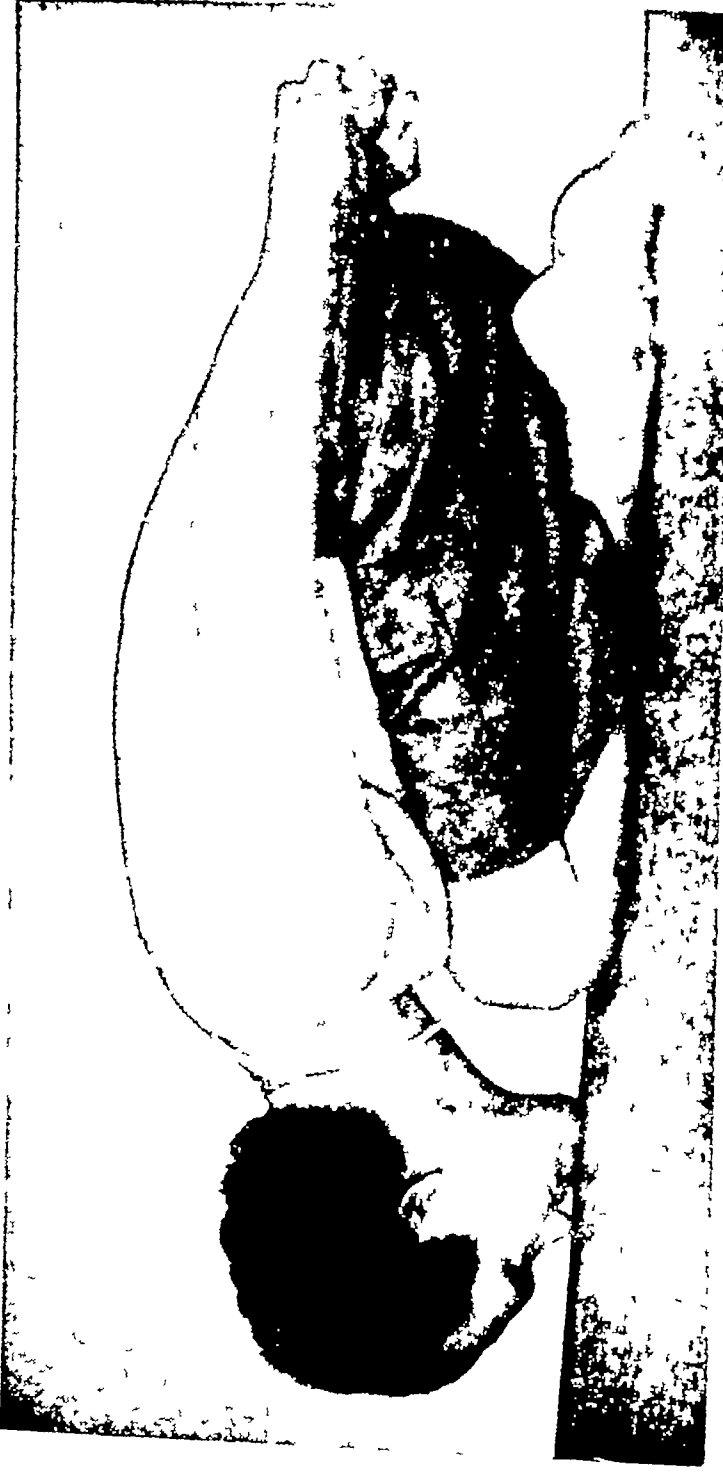
चित्र सं. ७ (पूर्ण·सं. १७) वज्रासन (दूसरा प्रकार)
P. No 7 (S No. 17) Vajrasana (Second Part)

चित्र सं. ८ (पूर्ण सं. १८) एक पाद पवन मुक्तासन
P No 8 (S No 18) Eka Pada Pavana Muktasana

चित्र सं. ९ (पूर्ण सं. १९) पवन मुक्तासन (द्विपाद)
P No 9 (S No 19) Pavana Muktasana (Dwi Pada)

चित्र सं. १० (पूर्ण सं. २०) वीरासन
P. No. 10 (S. No 20) Veerasana

चित्र सं. ११ (पूर्ण सं. २१) त्रिकोणासन
P No 11 (S. No 21) Trikonasana

चित्र सं. १२ (पूर्ण सं. २२) आकर्षण (आकर्ण) धनुरासन

P No 12 (S No 22) Akarshana (Akarna) Dhanurasana (Bow Pose)

श्रमसाध्य आसन विभाग—तृतीय विभाग
INTERMEDIATE COURSE—Third Section
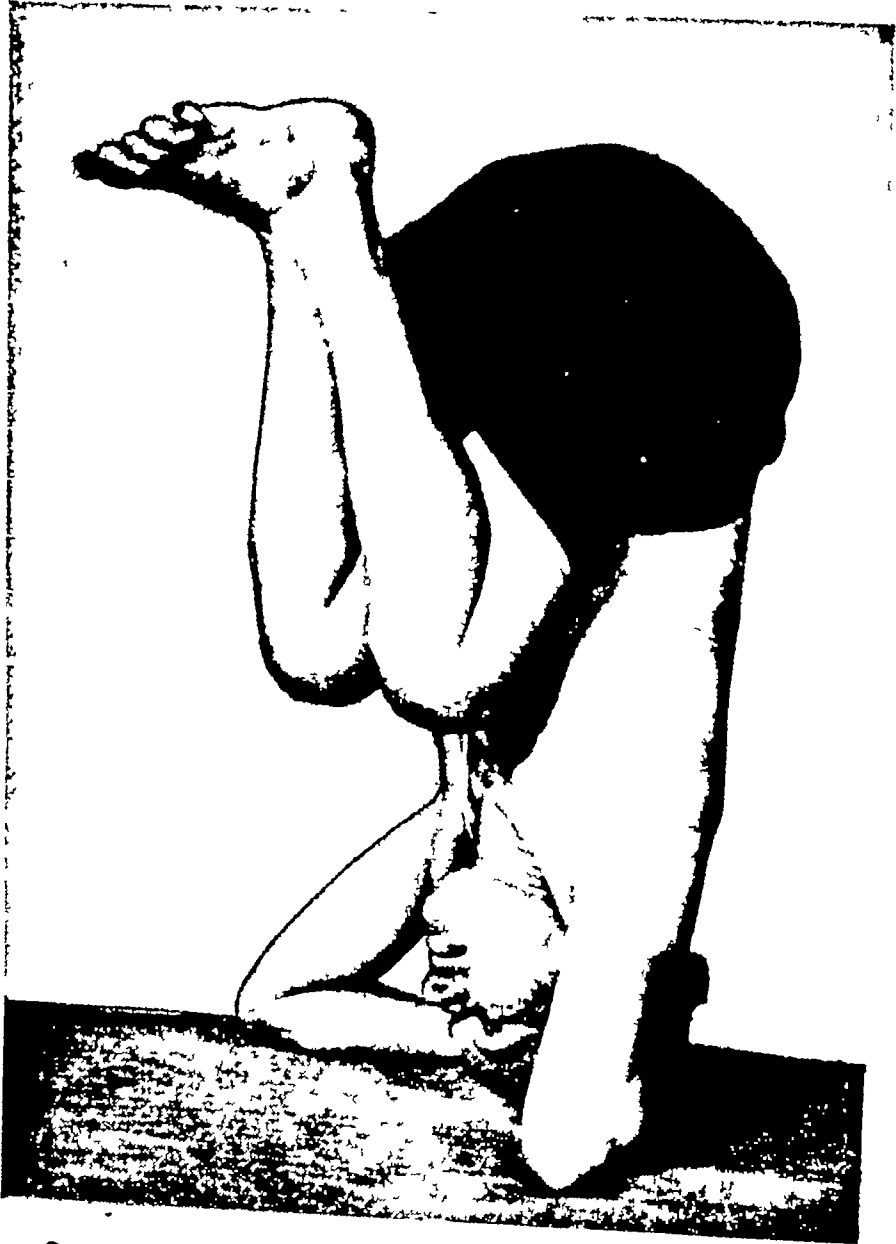
चित्र सं. १ (पूर्ण सं. २३) शीर्षासन (अपूर्ण–प्रथमरूप)
P. No 1 (S No 23) Sheershasana (Part One–First Phase)

चित्र सं. २ (पूर्ण सं. २४) शीर्षासन (अपूर्ण-द्वितीय रूप)

P No 2 (S No 24) Sheershasana (Part One–Second Phase)
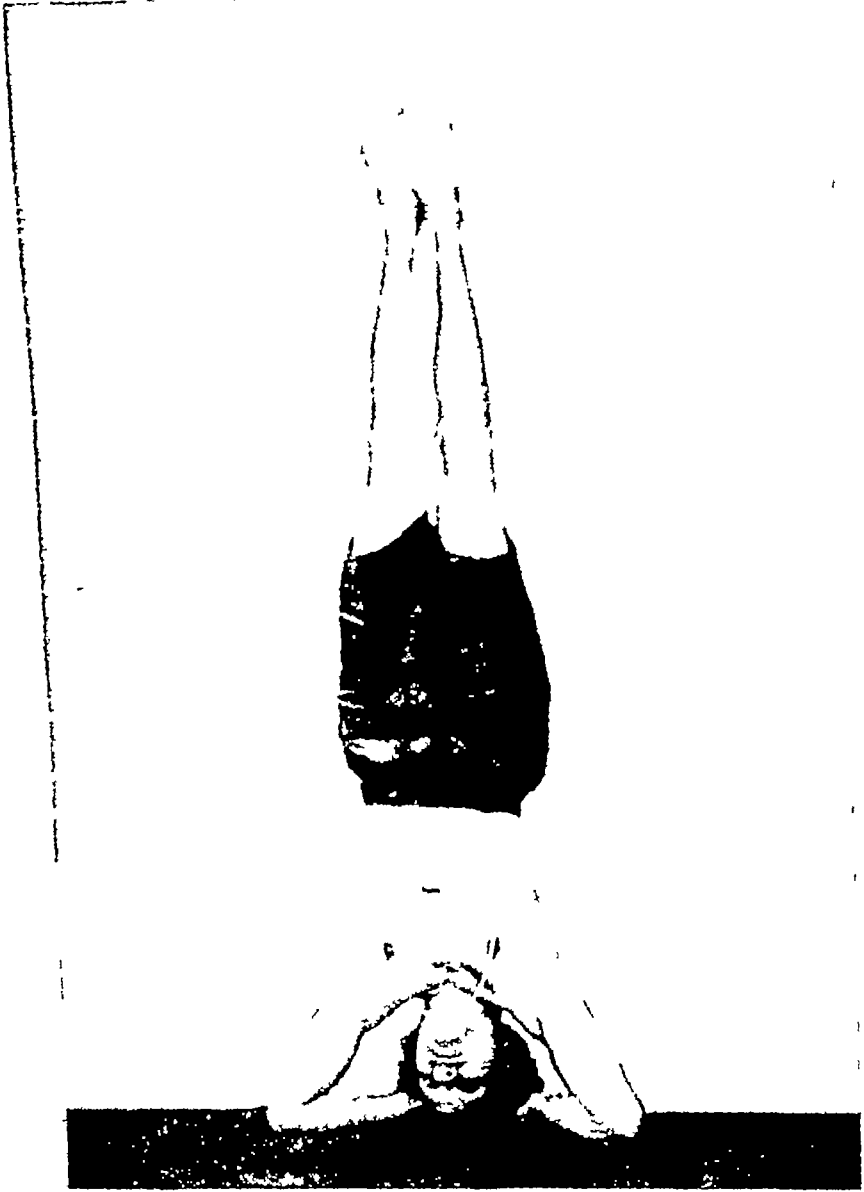
चित्र सं. ३ (पूर्ण सं. २५) शीर्षासन (सम्पूर्ण-प्रथम रूप)
P No 3 (S, No 25) Sheershasana (Part Two-First Phase)
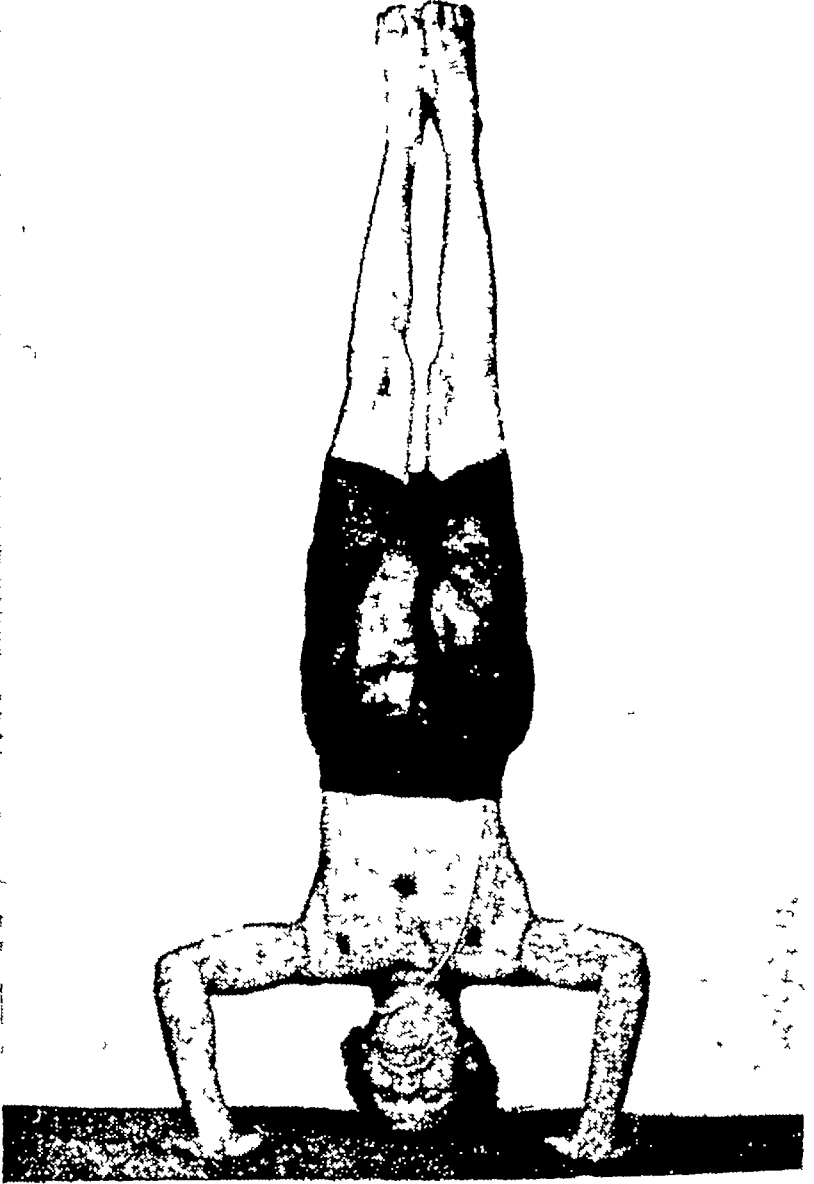
चित्र सं. ४ (पूर्ण सं. २६) शीर्षासन (सम्पूर्ण-द्वितीय रूप)
P No. 4 (S No 26) Sheershasana (Part Two-Second Phase)

चित्र सं. ५ (पूर्ण सं. २७) शीर्षासनस्थ पद्मासन
P. No 5 (S No 27) Padmasana in Shirshasana Pose

चित्र सं. ६ (पूर्ण सं. २८) पद्मासन
P No 6 (S N 28) Padmasana

चित्र सं. ७ (पूर्ण सं. २९) पूर्ण पद्मासन
(बद्धपद्मासन या योगमुद्राका पहला अपूर्ण प्रकार)
P. No. 7 (S No 29) Purna Padmasana
(Baddha Padmasana or Yoga Mudra—First Part)

चित्र सं. ८ (पूर्ण सं. ३०) बद्धपद्मासनका दूसरा प्रकार
P No 8 (S No 30) Baddha Padmasana — (Second Part)

चित्र सं. ९ (पूर्ण स. ३१) बद्धपद्मासनका तीसरा प्रकार
P. No 9, S No 31) Baddha Padmasana (Third Part)

चित्र सं. १० (पूर्ण सं. ३२) बद्ध पद्मासनका चौथा प्रकार
P No 10 (S No. 32) Baddha Padmasana—Fourth Part
(Lotus Pose)

चित्र सं. ११ (पूर्ण सं. ३३) बद्ध पद्मासनका पाँचवा प्रकार (सम्पूर्ण)
P No 11 (S No 33) Baddha Padmasana–Fifth Part (Final Phase)
(Lotus Pose)

चित्र सं. १२ (पूर्ण सं ३४) बद्ध पद्मासनका छठाँ प्रकार (सम्पूर्ण)
P. No 12 (S No. 35) Baddha Padmasana-Sixth Part (Final Phase)
(Lotus Pose)
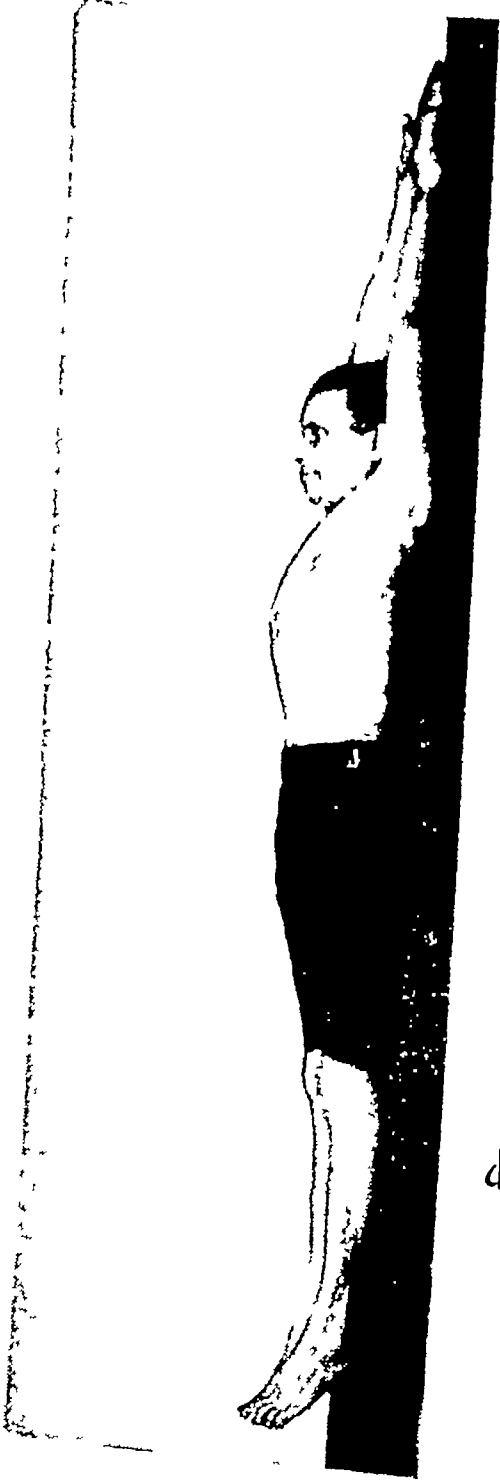
चित्र सं. १३ (पूर्ण सं. ३५) सुप्त ऊर्ध्व हस्तासन (पहला प्रकार)
P No 13 (S No 35) Supta Urdhwa Hastasana (First Part)
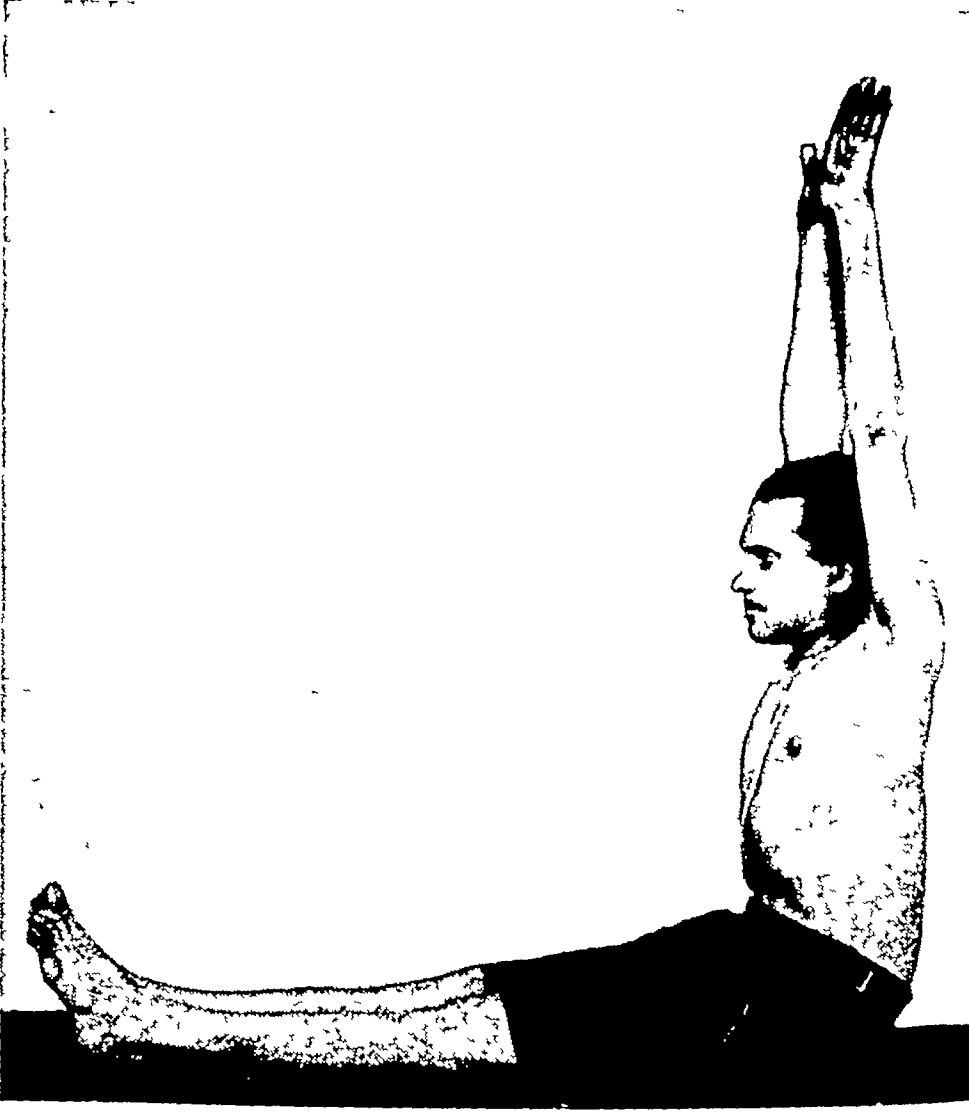
चित्र सं. १४ (पूर्ण स. ३६) सुप्त उर्ध्व हस्तासन (द्वितीय प्रकार)
P. No. 14 (S. No 36) Supta Urdhwa Hastasana (Second Part)

चित्र सं. १५ (पूर्ण सं. ३७) भुजंगासन (अपूर्ण रूप)
P No 15 (S. No 37) Bhujangasana (First Part)
(Cobra Pose)

चित्र सं. १६ (पूर्ण सं. ३८) भुजंगासन (सम्पूर्ण रूप)
P No 16 (S. No 38) Bhujangasana (Second Part)—Cobra Pose

चित्र सं. १७ (पूर्ण सं. ३९) मत्स्यासन
P No 17 (S. No 39) Matsyasana (Fish Pose)

चित्र सं. १८ (पूर्ण सं ४०) तोलांगुलासन (तुलासन)
P No 18 (S No 40) Tolangulasana (Tulasana)
(Balance Pose)
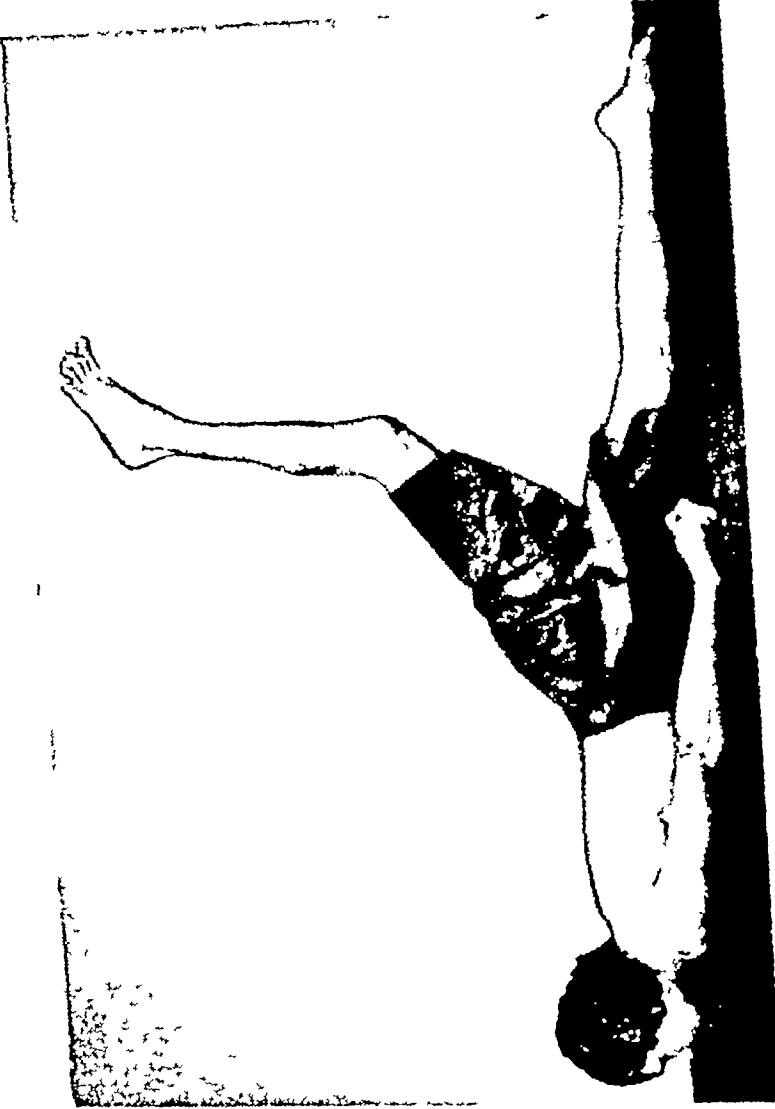
चित्र सं १९ (पूर्ण स ४१) एकपाद् शलभासन
P. No 19 (S. No 41) Eka Pada Shalabhasana
(Locust Pose)

चित्र सं. २० (पूर्ण सं. ४२) द्विपाद् शलभासन
P. No 20 (S No 42) Dwi Pada Shalabhasana (Locust Pose)

चित्र सं. २१ (पूर्ण सं. ४३) जानु शिरासन (पहला प्रकार)
P No 21 (S No 43) Janu Shirasana (First Part)

चित्र सं. २२ (पूर्ण सं. ४४) जानु शिरासन (दूसरा प्रकार)
P. No 22 (S No 44) Janu Shirasana (Second Part)

चित्र सं. २३ (पूर्ण सं. ४५) जानु शिरासन (तीसरा प्रकार)
P. No 23 (S No 45) Janu Shirasana (Third Part)

चित्र सं. २४ (पूर्ण स. ४६) गोमुखासन (पृष्ठभाग)
P. No 24 (S. No. 46) Gomukhasana (Back Pose)
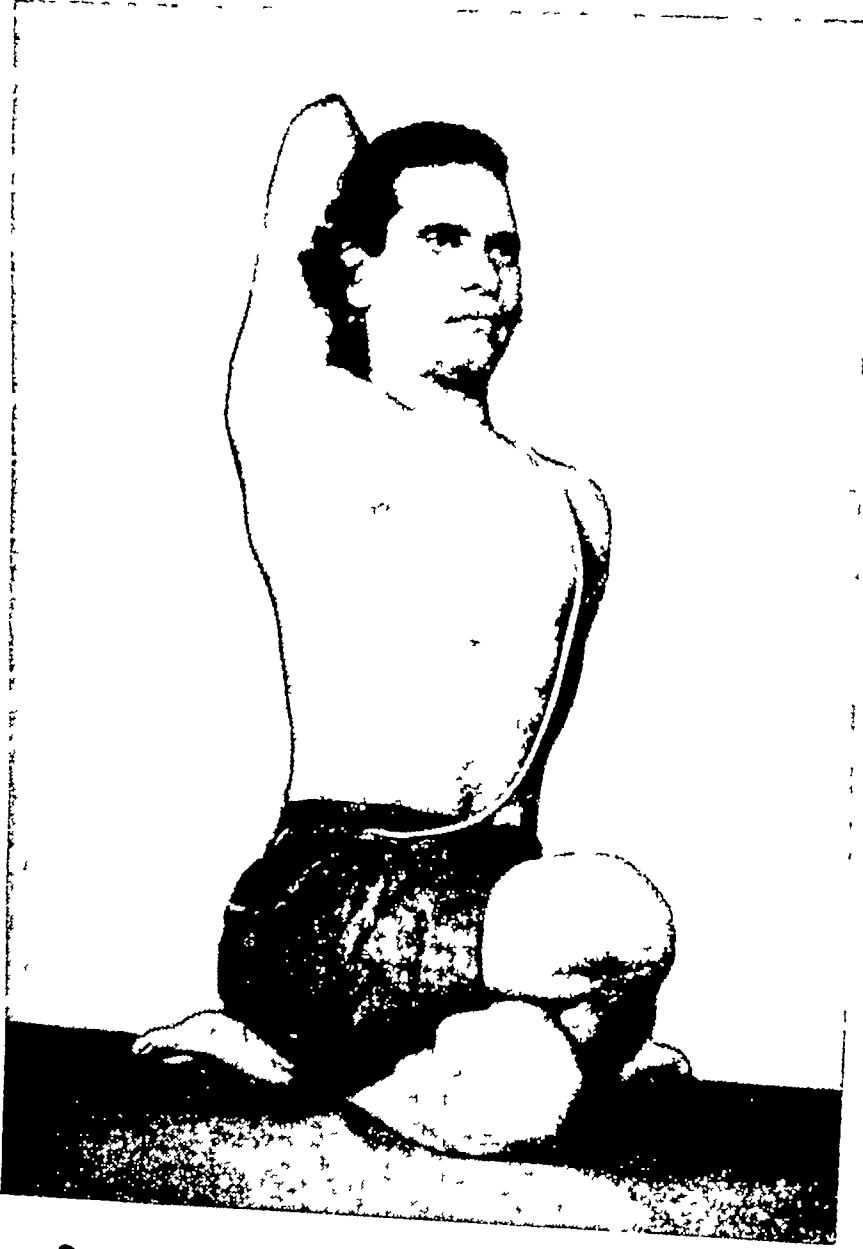
चित्र सं. २५ (पूर्ण सं. ४७) गोमुखासन (अग्रभाग)
P. No 25 (S No 47) Gomukhasana (Front Pose)
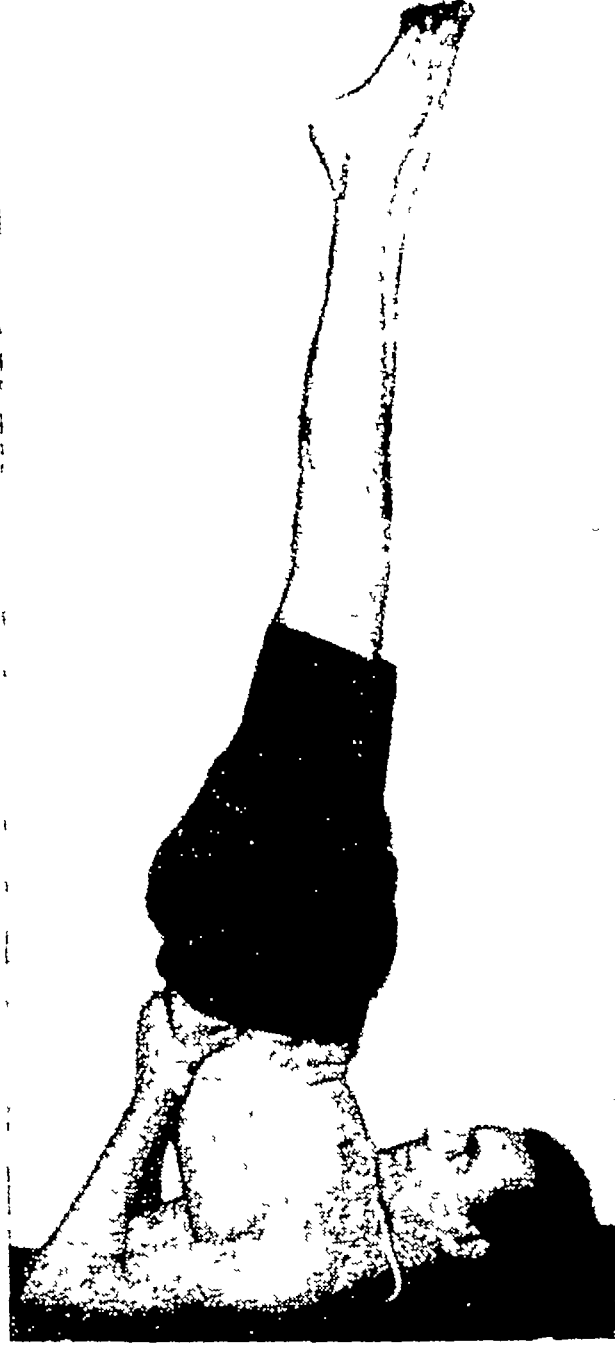
चित्र सं. २६ (पूर्ण सं. ४८) विपरीत करणी (उर्ध्व सर्वांगासन)—सम्पूर्ण.
P. No. 26 (S. No 48) Viparita Karani (Urdhwa Sarvangasana)

चित्र सं. २७ (पूर्ण सं. ४९) पद्मासन (विपरीत करणी अवस्थामें पहला प्रकार)

P No 27 (S No 49) Padmasana in Viparita Karani (First Phase)

चित्र सं. २८ (पूर्ण सं. ५०) पद्मासन (विपरीत करणी अवस्थामें दूसरा प्रकार)

P No 28 (S. No 50) Padmasana in Viparit Karani (Second Phase)
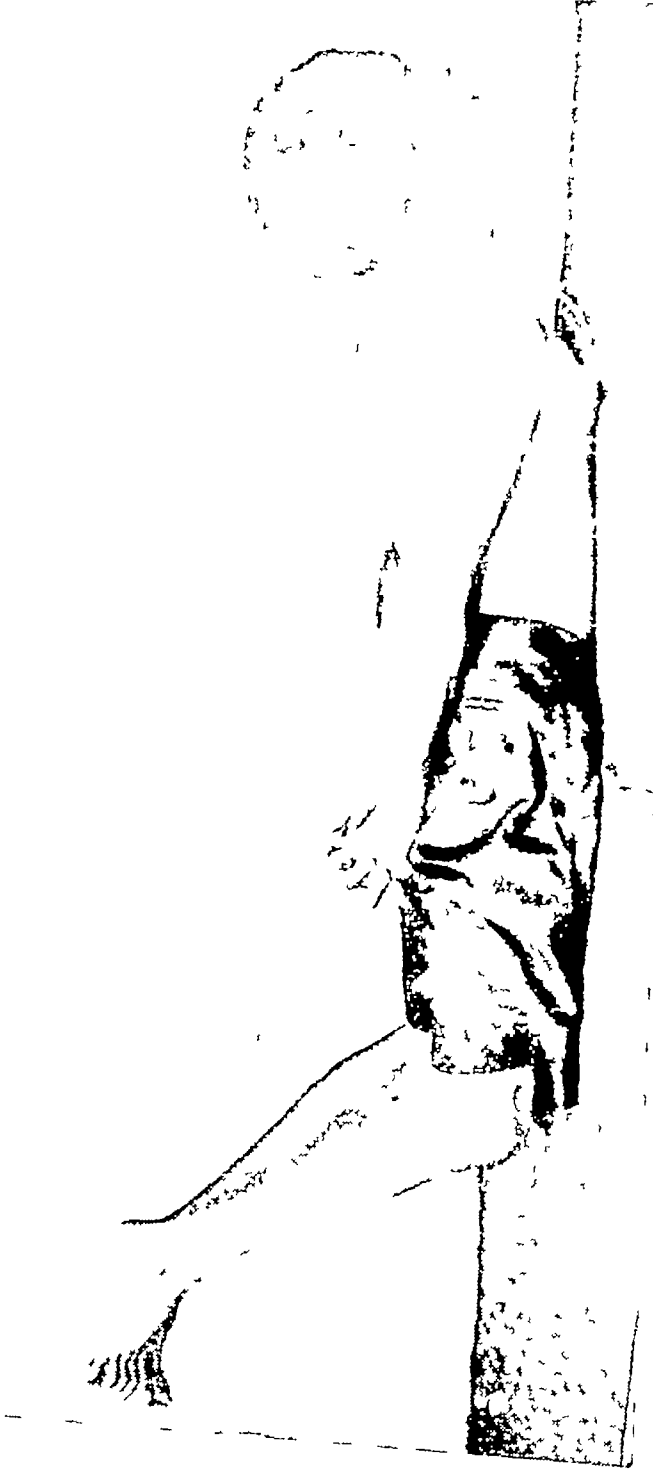
चित्र सं. २९ (पूर्ण सं. ५१) नौकासन (पहला प्रकार)
P No. 29 (S No. 51) Naukasana (First Part)
(Craft Pose)

चित्र सं. ३० (पूर्ण सं. ५२) नौकासन (दूसरा प्रकार)
P No 30 (S No 52) Naukasana (Second Part)
(Craft Pose)

चित्र सं. ३१ (पूर्ण सं. ५३) नौकासन (तीसरा प्रकार)
P No 31 (S No. 53) Naukasana – Third Part
(Craft Pose)

चित्र सं. ३२ (पूर्ण सं. ५४) अर्ध मत्स्येंद्रासन (पहला अपूर्ण प्रकार)

P No. 32 (S No 54) Ardha Matsyendrasana (First Part)
(Phase One)

चित्र सं. ३३ (पूर्ण सं. ५५) अर्ध मत्स्येंद्रासन (पहला सम्पूर्ण प्रकार)
P No 33 (S. No. 55)Ardha Matsyendrasana (First Part)
(Fhase Two)

चित्र सं. ३४ (पूर्ण सं. ५६) अर्ध मत्स्येन्द्रासन (दूसरा अपूर्ण प्रकार)

P No 34 (S. N 56) Ardha Matsyendrasana

(Second Part-Phase One)

चित्र सं. ३५ (पूर्ण सं. ५७) अर्ध मत्स्येंद्रासन (दूसरा सम्पूर्ण प्रकार)

P No 35 (S. No 57) Ardha Matsyendrasana
(Second Part–Phase Two)

चित्र सं. ३६ (पूर्ण सं. ५८) पूर्ण मत्स्येंद्रासन (बाये अंगका अभ्यास)
P No 36 (S No 58) Purna Matsyendrasana (Left Side)

चित्र सं. ३७ (पूर्ण स. ५९) पूर्ण मत्स्येन्द्रासन (दहिने अंगका अभ्यास)

P No 37 (S No 59) Purna Matsyendrasana (Right Side)

चित्र सं. ३८ (पूर्ण सं. ६०) लोलासन (पहला प्रकार)
P No 38 (S No 60) Lolasana (First Part)
(Swing Pose)
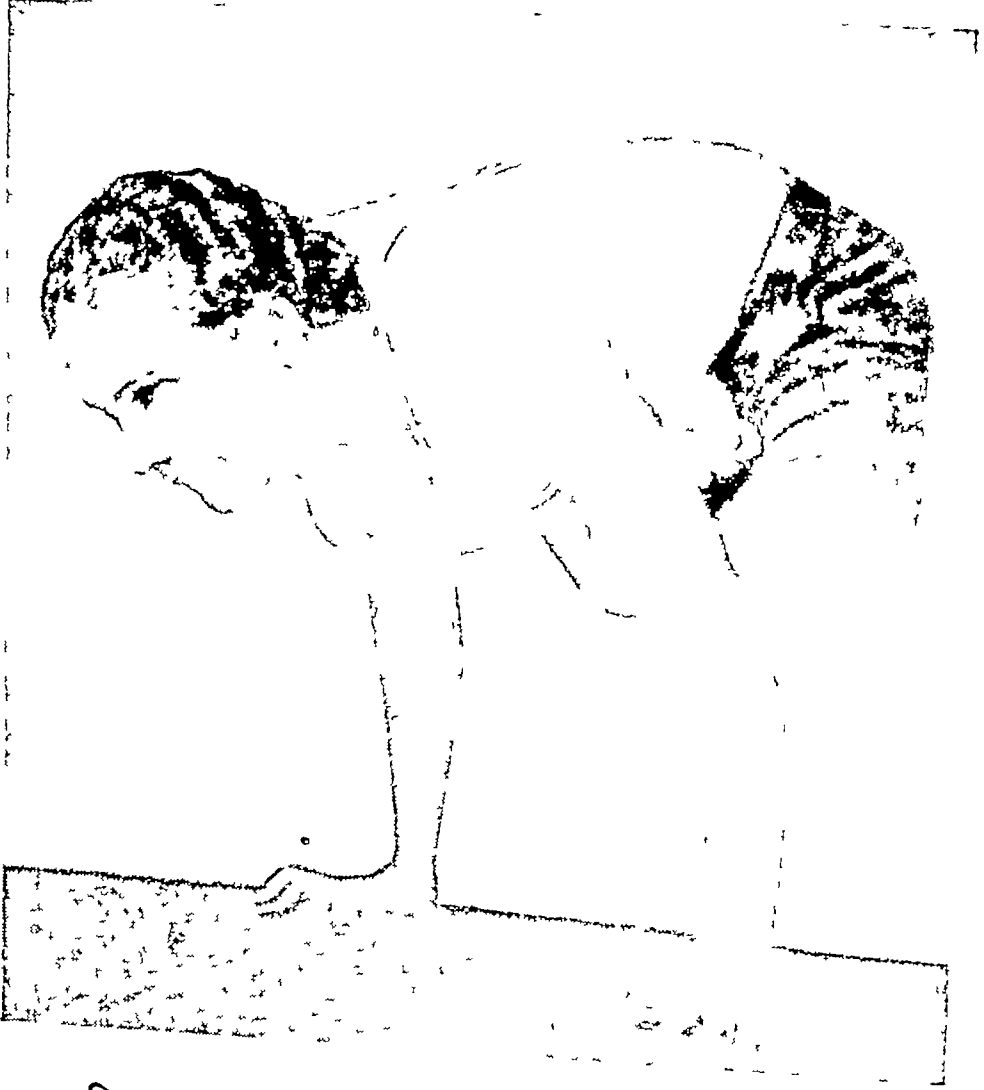
चित्र सं ३९ (पूर्ण सं. ६१) लोलासन (तीसरा प्रकार)
P No 39 (S, No 61) Lolasana (Third Part)
(Swing Pose)

चित्र सं. ४० (पूर्ण सं. ६२) उत्कटासन

P No 40 (S. No. 62) Utkatasana

चित्र सं. ४१ (पूर्ण सं. ६३) गोरक्षासन (पहला अपूर्ण प्रकार)
P. No. 41 (S No 63) Gorakshasana (First Part–Phase One)
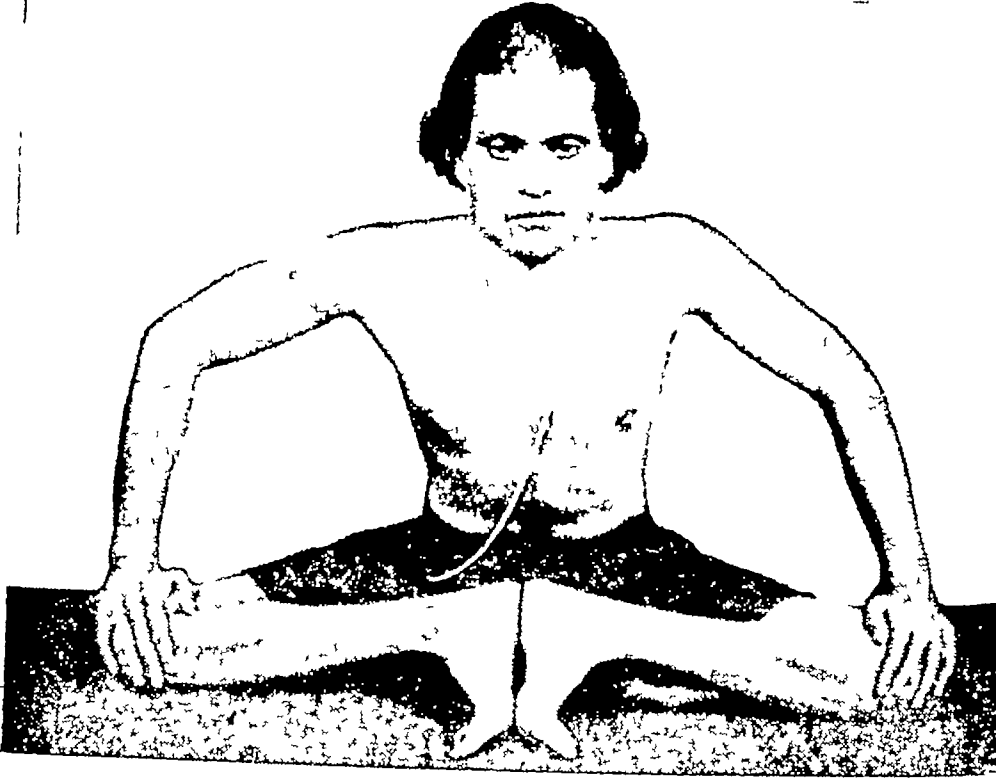
चित्र सं. ४२ (पूर्ण स. ६४) गोरक्षासन (दूसरा अपूर्ण प्रकार)
P. No 42 (S No 64) Gorakshasana (Second Part-Phase Two)

चित्र स. ४३ (पूर्ण स. ६५) गोरक्षासन (सम्पूर्ण अग्रभाग)
P No 43 (S No 65) Gorakshasana (Full–Front Pose)

चित्र स. ४४ (पूर्ण सं. ६६) गोरक्षासन (सम्पूर्ण–पृष्ठभाग)
P. No 44 (S. No. 66) Gorakshasana (Full–Back Pose)

चित्र सं. ४५ (पूर्ण सं. ६७) कूर्मासन
P No. 45 (S No. 67) Koormasana
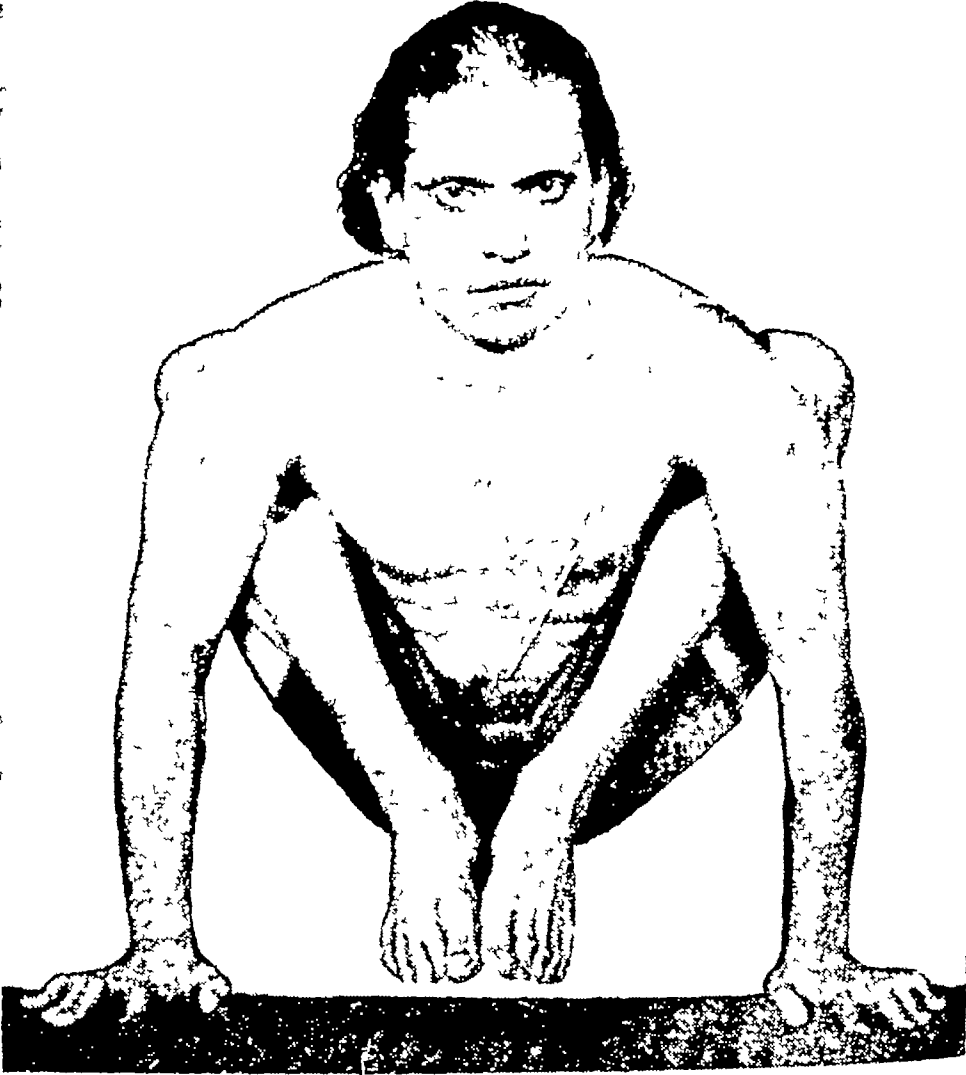
चित्र सं. ४६ (पूर्ण सं. ६८) वकासन
P No 46 (S No 68) Bakasana
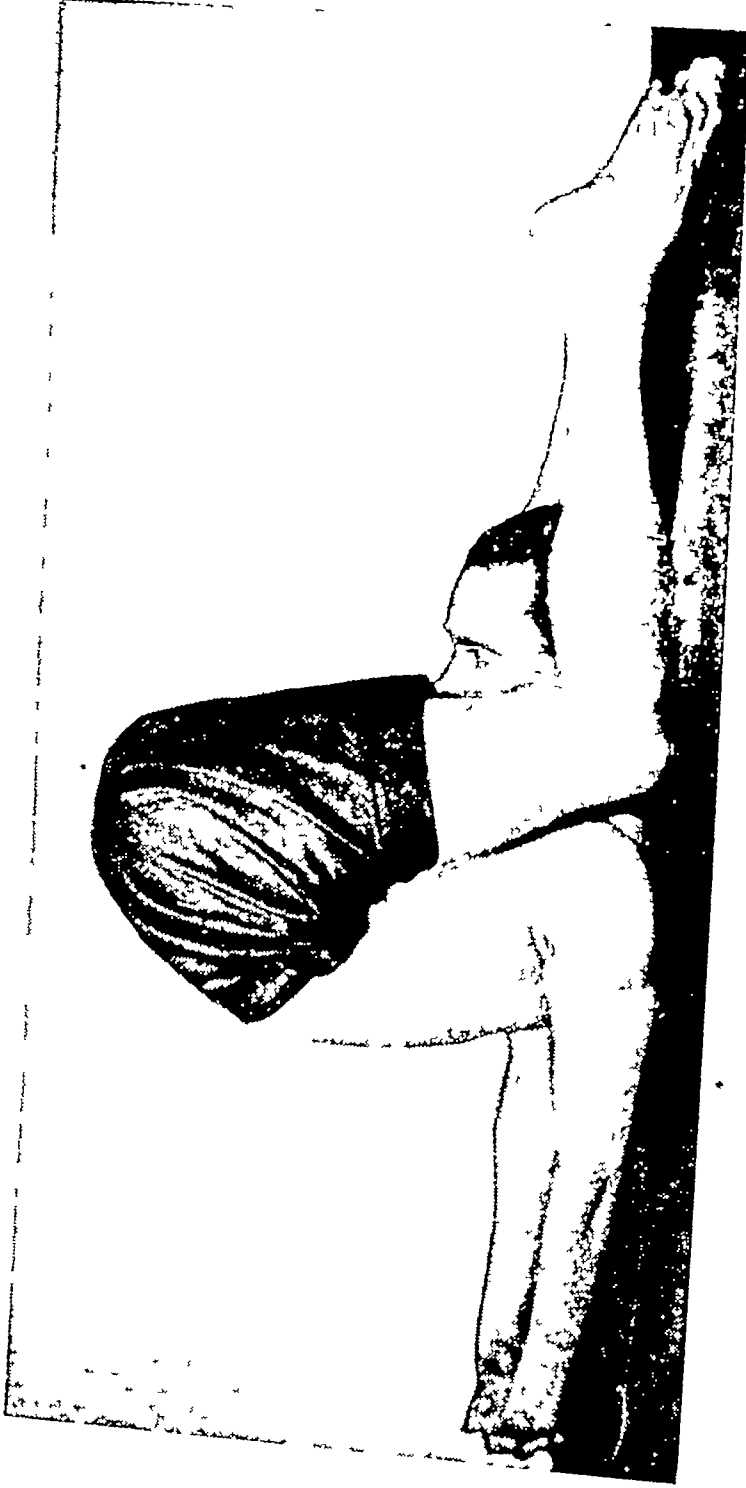
चित्र सं. ४७ (पूर्ण सं. ६९) कर्ण पीडनासन
P. No. 47 (S No 69) Karna Peedanasana

विशेष श्रमसाध्य विभाग—चतुर्थ विभाग

AN ADVANCED COURSE—Fourth Section

चित्र स. १ (पूर्ण सं. ७०) पश्चिमोत्तानासन

P No. I (S. No. 70) Paschimottanasana

चित्र सं. २ (पूर्ण सं ७१) सुप्त वज्रासन (पहला प्रकार)
P. No 2 (S No 71) Supta Vajrasana (First Part)

चित्र सं. ३ (पूर्ण सं. ७२) सुप्त वज्रासन (दूसरा प्रकार)
P No 3 (S No. 72) Supta Vajrasana (Second Part)

चित्र सं. ४ (पूर्ण सं ७३) उर्ध्व पाद शिरासन
P No 4 (S No 73) Urdhwa Pada Shirasana
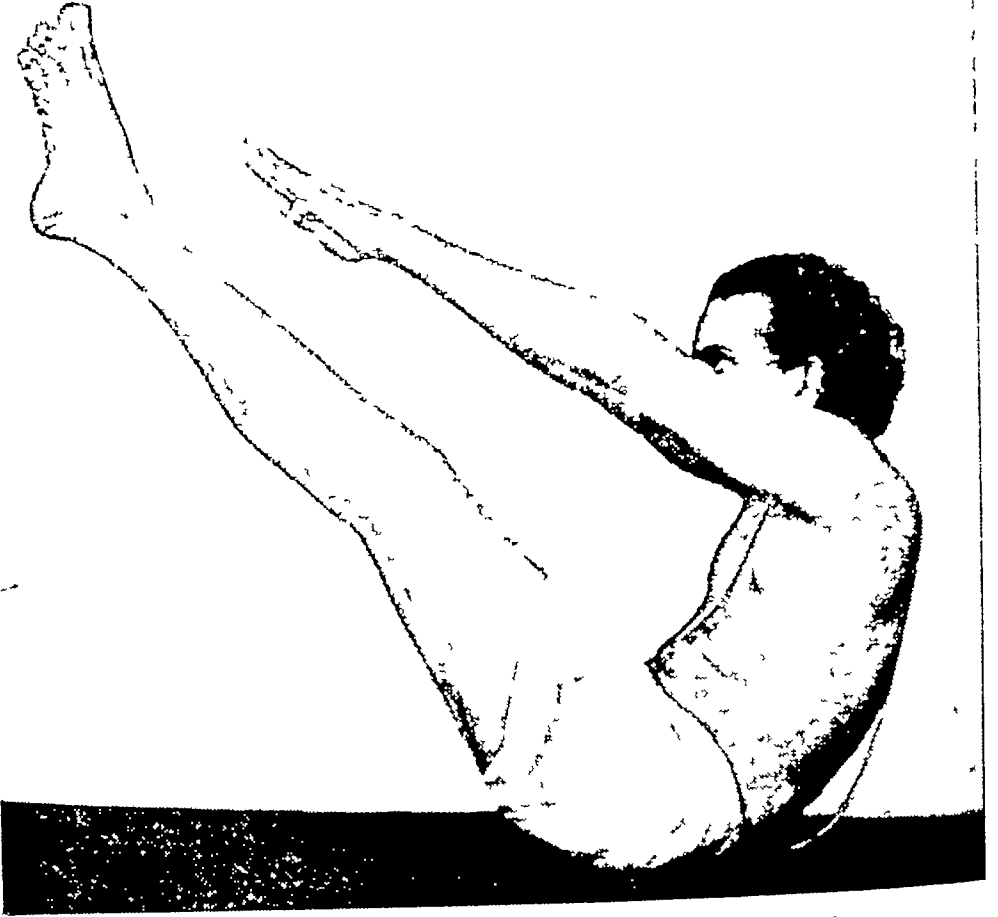
चित्र सं. ५ (पूर्ण सं. ७४) उर्ध्व पाद हस्तासन

P No. 5 (S. No 74) Urdhwa Pada Hastasana
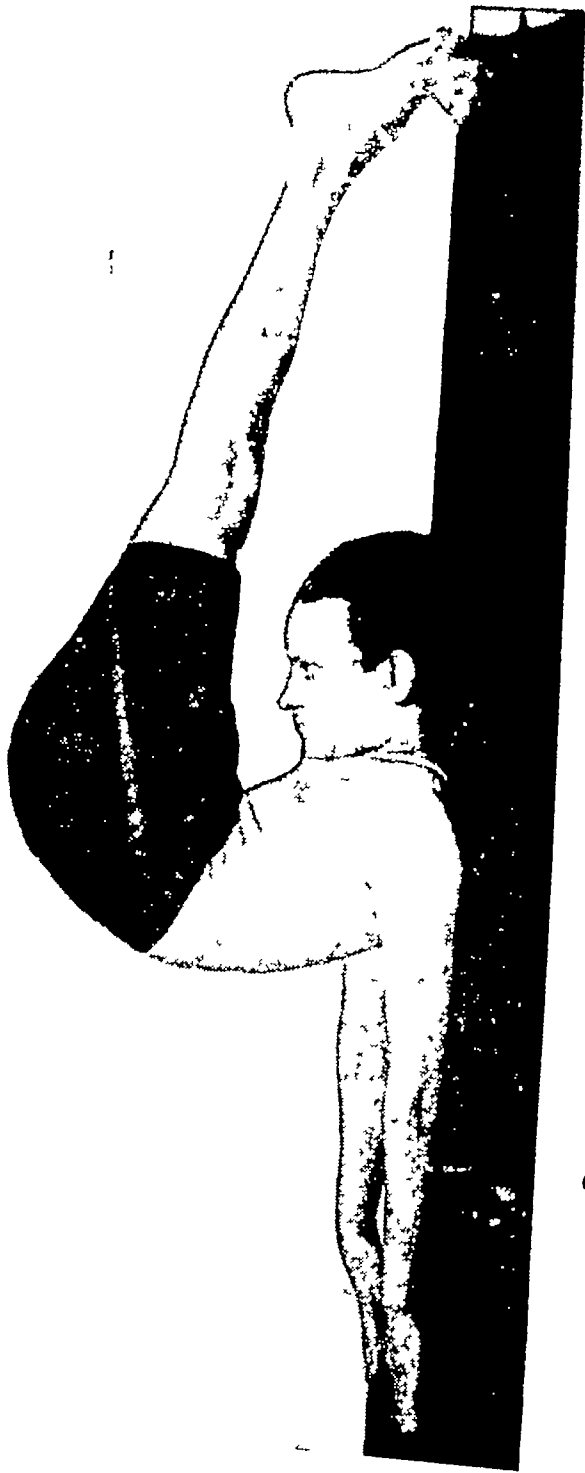
चित्र सं ६ (पूर्ण सं. ७५) सर्वांगासन (हलासन–पहला प्रकार)
P No 6 (S. No 75) Sarvangasana
(Halasana Plough Pose–First Part)

चित्र सं. ७ (पूर्ण सं ७६) सर्वांगासन (हलासन–दूसरा प्रकार)
P No 7 (S No 76) Sarvangasana (Halasana–Plough Pose)
(Second Part)

चित्र सं. ८ (पूर्ण सं. ७७) सर्वांगासन (हलासन–तीसरा प्रकार)
P No. 8 (S. No. 77) Sarvangasana (Halasana–Plough Pose)
(Third Part)
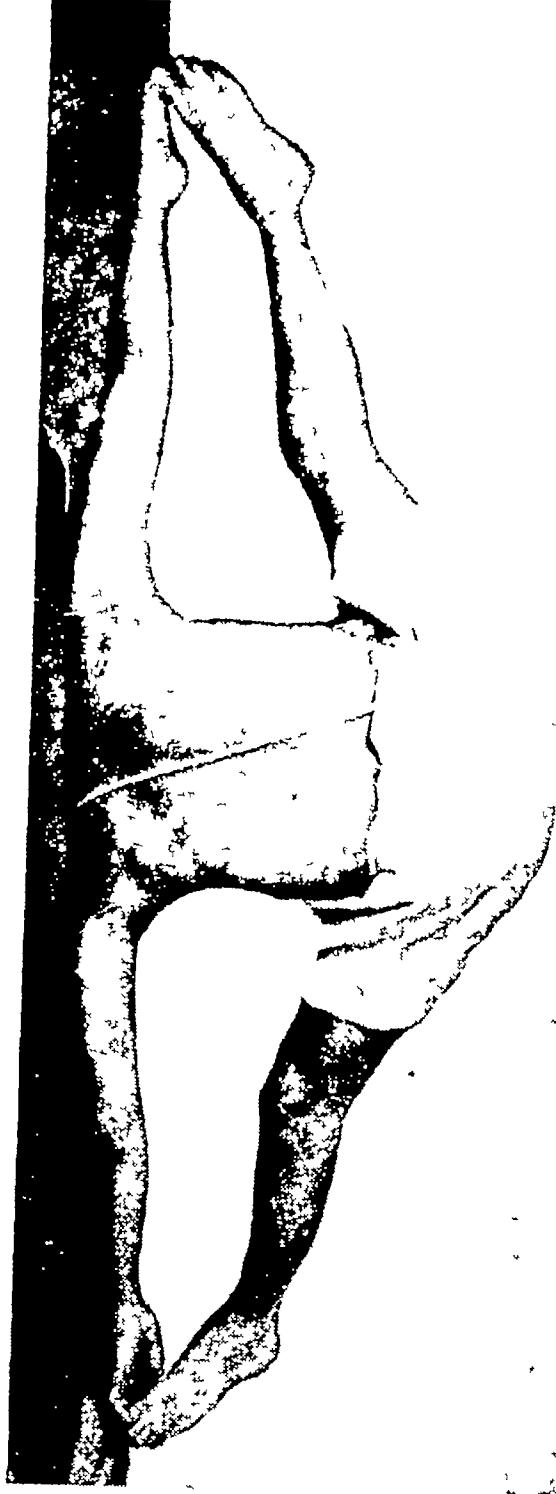
चित्र स. ९ (पूर्ण स. ७८) विस्तृतपाद सर्वांगासन (पृष्ठभाग)
P. No, 9 (S. No. 78) Vistruta Pada Sarvangasana (Back Pose)

चित्र सं. १० (पूर्ण स. ७९) विस्तृतपाद सर्वांगासन (अग्रभाग)
P. No 10 (S. No. 79) Vistruta Pada Sarvangasana (Front Pose)
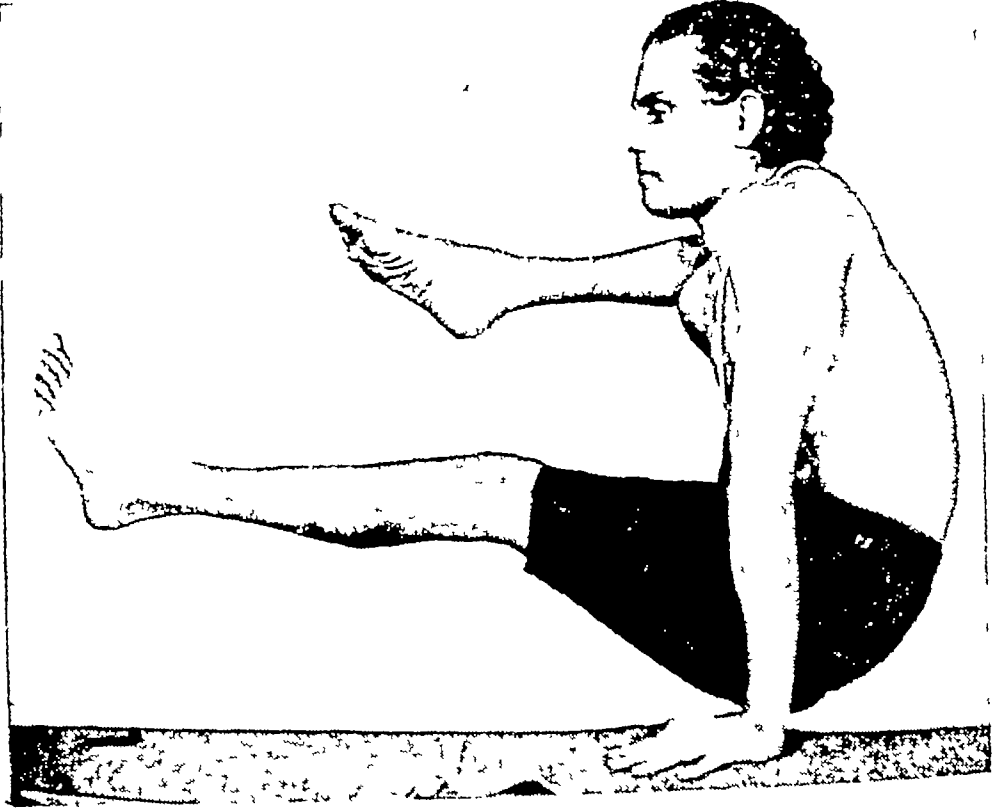
चित्र सं. ११ (पूर्ण स. ८०) एक पाद भुजासन
P No 11 (S No 80) Eka Pada Bhujasana

चित्र सं. १२ (पूर्ण सं. ८१) द्वि पाद भुजासन

P No 12 (S No 81) Dwi Pada Bhujasana

चित्र सं. १३ (पूर्ण सं. ८२) चक्रासन (पहला प्रकार–अपूर्ण)
P. No 13 (S No 82) Chakrasana (First Part)
(Wheel Pose)
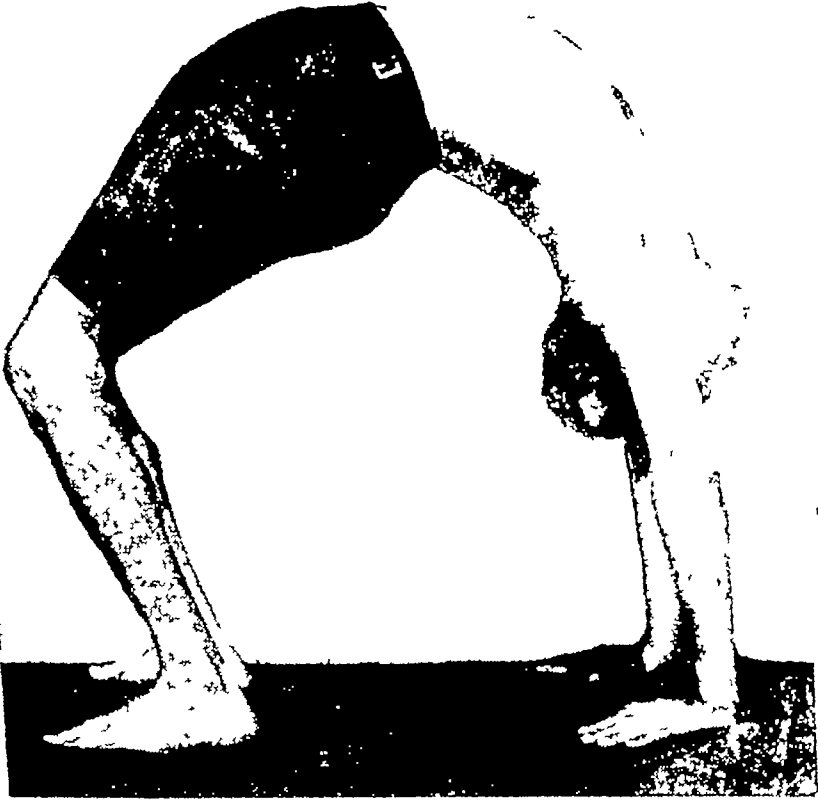
चित्र सं. १४ (पूर्ण सं. ८३) चक्रासन (दूसरा प्रकार–सम्पूर्ण)

P No 14 (S. No 83) Chakrasana (Second Part)
(Wheel Pose)
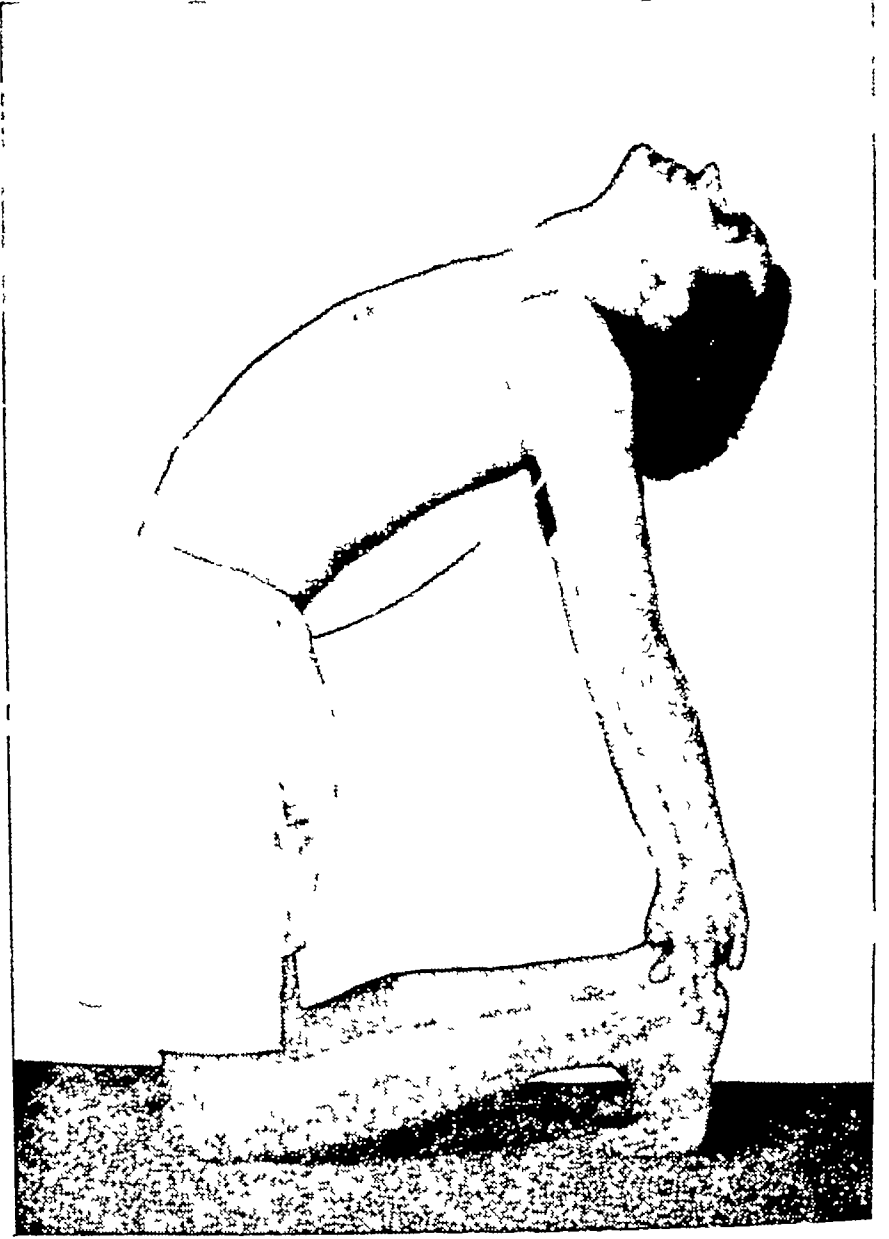
चित्र सं. १५ (पूर्ण सं. ८४) उष्ट्रासन
P No 15 (S No 84) Ushtrasana

चित्र सं. १६ (पूर्ण सं. ८५) हंसासन (अपूर्ण)
P. No. 16 (S No 85) Hansasana (First Part)
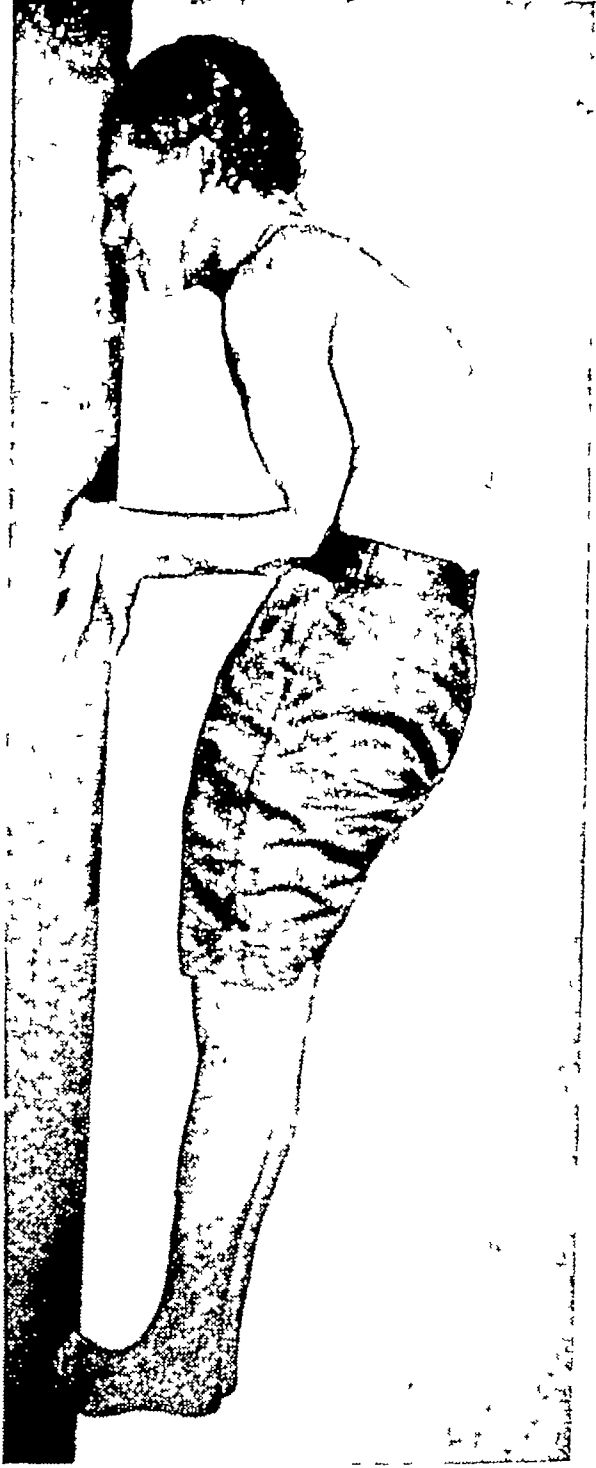
चित्र सं. १७ (पूर्ण सं. ८६) हंसासन (सम्पूर्ण)
P No. 17 (S. No. 86) Hansasana (Second Part)
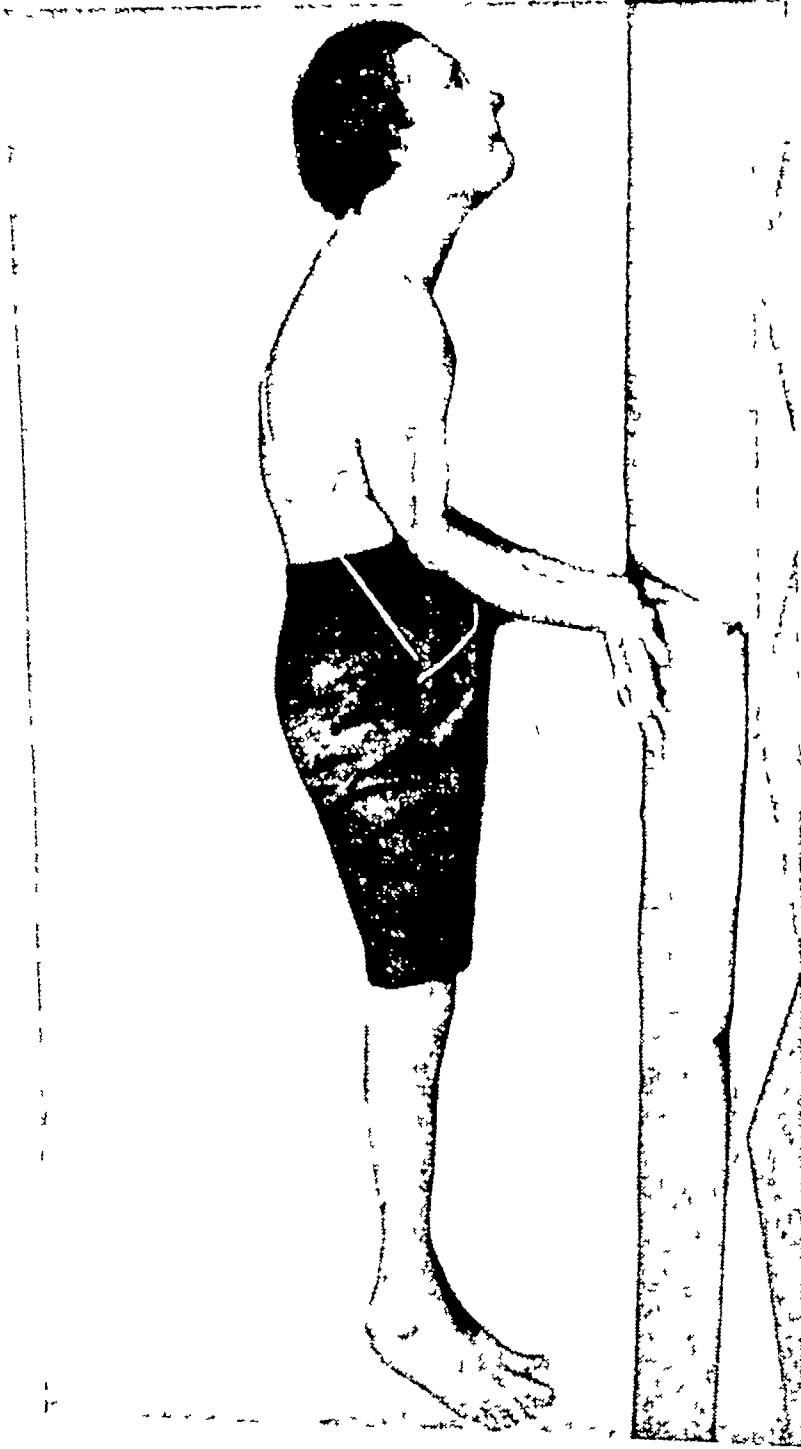
चित्र सं. १८ (पूर्ण सं. ८७) मयूरासन
P. No. 18 (S. No. 87) Mayoorasana (Peacock Pose)
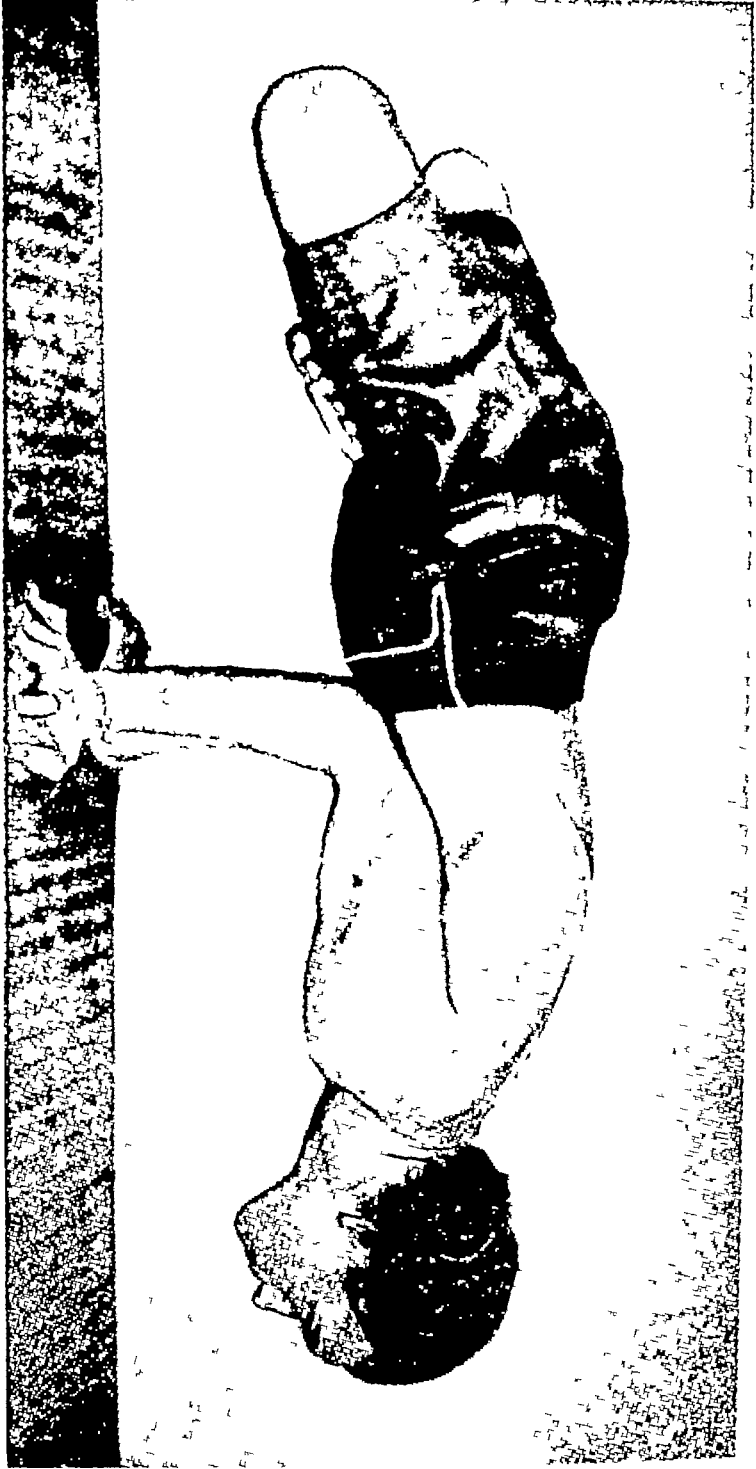
चित्र सं. १९ (पूर्ण सं ८८) मयूरी आसन

P No 19 (S No. 88) Mayoori Asana
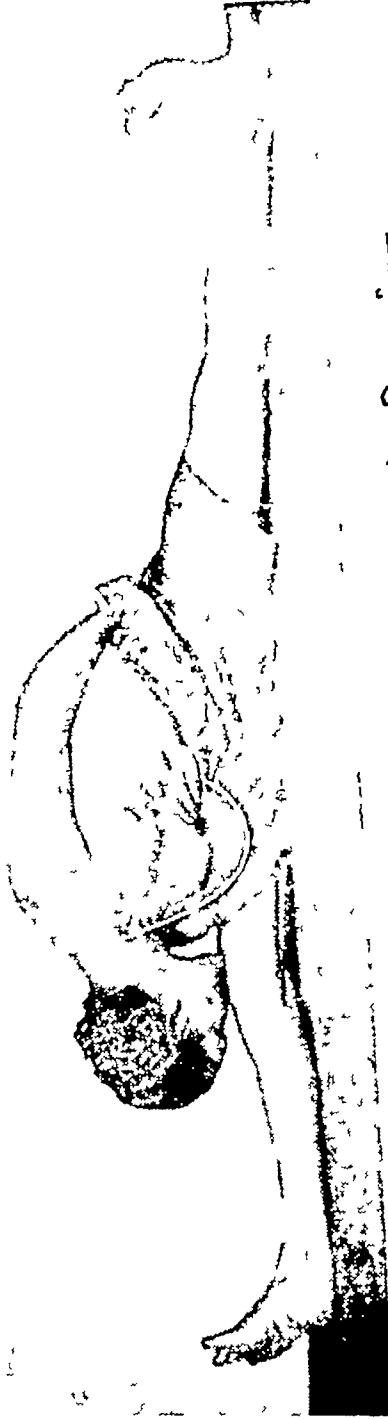
चित्र सं. २० (पूर्ण सं. ८९) विस्तृत पाद वक्ष (छाती) भूमि स्पर्शासन
(पहला प्रकार)

P No 20 (S. No 89) Vistruta Pada Vaksha Bhumi Sparshasana
(First Part)
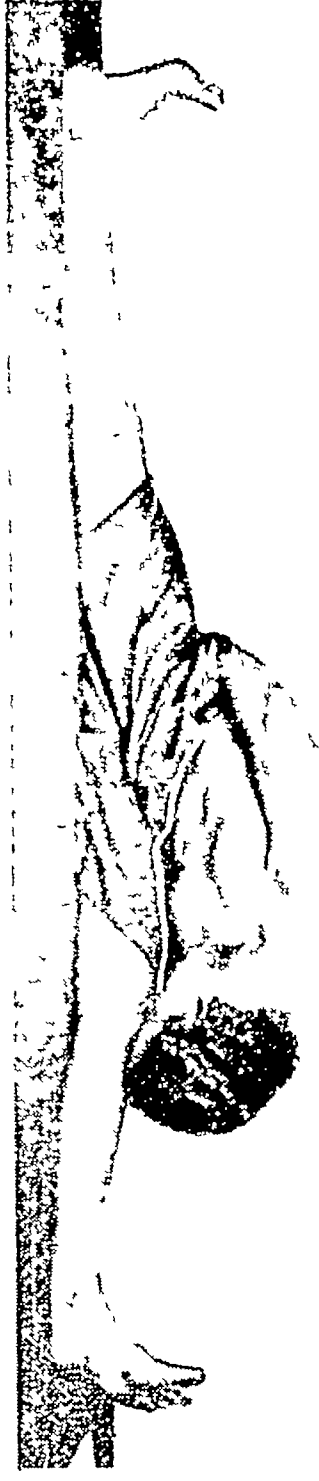
चित्र सं. २१ (पूर्ण स. ९०) विस्तृतपाद वक्ष (छाती) भूमि स्पर्शासन
(दूसरा प्रकार)

P. No. 21 (S No 90) Vistruta Pada Vaksha Bhumi Sparshasana
(Second Part)

चित्र सं. २२ (पृ० सं ९१) विस्तृतपाद वक्र (तृतीय) भूमि स्पर्शासन
(सम्पूर्ण)

P No. 22 (S No. 91) Vistrita Pada Vakra Bhumi Sparshasana
(Third Part)

चित्र सं. २३ (पूर्ण सं. ९२) सिंहासन
P No 23 (S No 92) Sinhasana (Lion Pose)

चित्र सं. २४ (पूर्ण सं. ९३) गरुडासन

P No. 24 (S No 93) Garudasana (Eagle Pose)

चित्र स. २५ (पूर्ण सं ९४) पादांगुष्ठासन
P No 25 (S No 94) Padangushthasana

चित्र सं. २६ (पूर्ण सं. ९५) एक पाद शिरासन
P. No. 26 (S No. 95) Eka Pada Shirasana
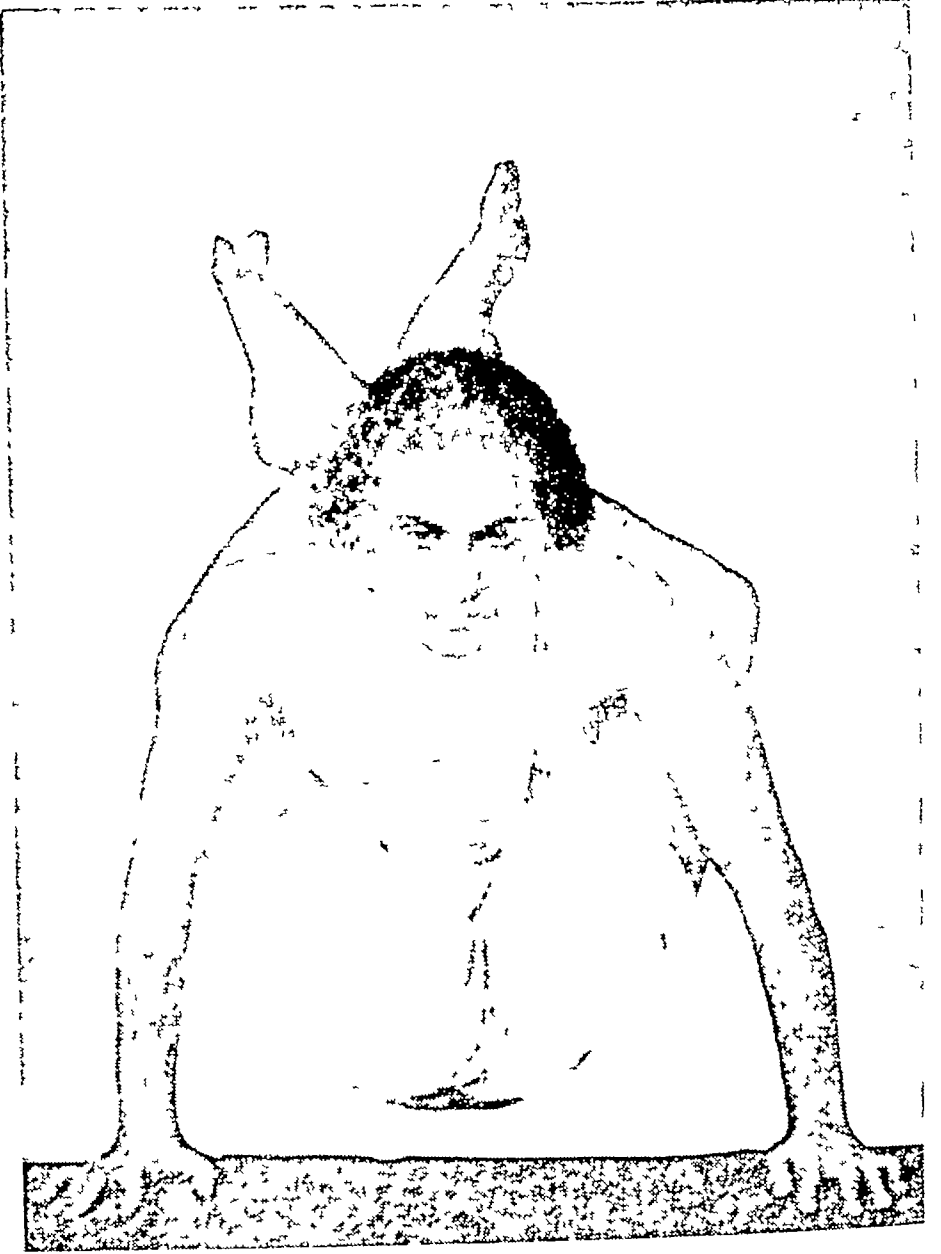
चित्र सं. २७ (पूर्ण सं. ९६) द्विपाद शिरासन (अग्रभाग)

P No 27 (S No. 96) Dwi Pada Shirasana (Front Pose)
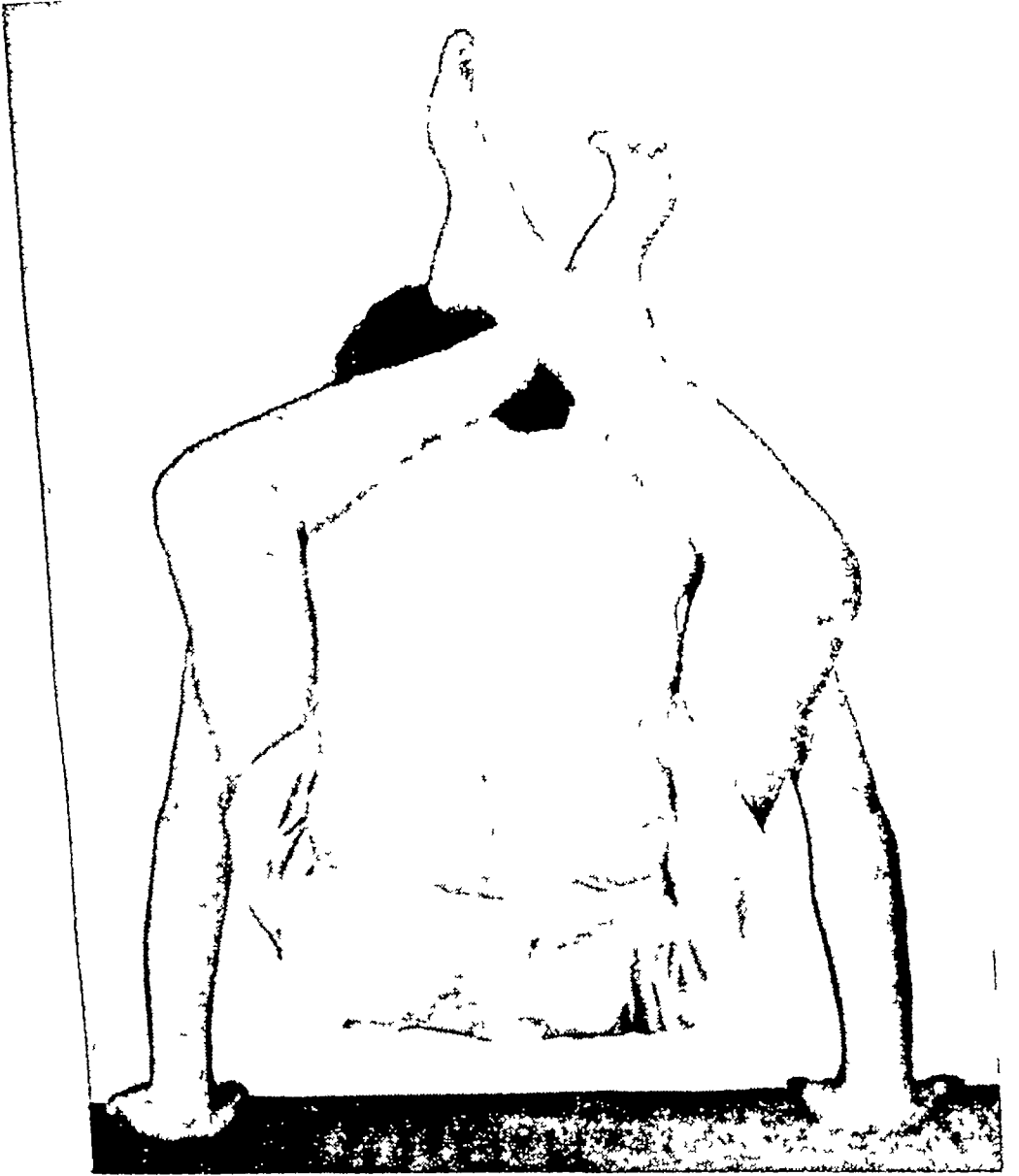
चित्र सं. २८ (पूर्ण सं. ९७) द्विपाद शिरासन (पृष्ठभाग)
P No 28 (S. No 97) Dwi Pada Shirasana
(Back Pose)

चित्र सं. २९ (पूर्ण सं. ९८) सुप्त द्विपाद शिरासन
P No 29 (S. No 98) Supta Dwi Pada Shirasana
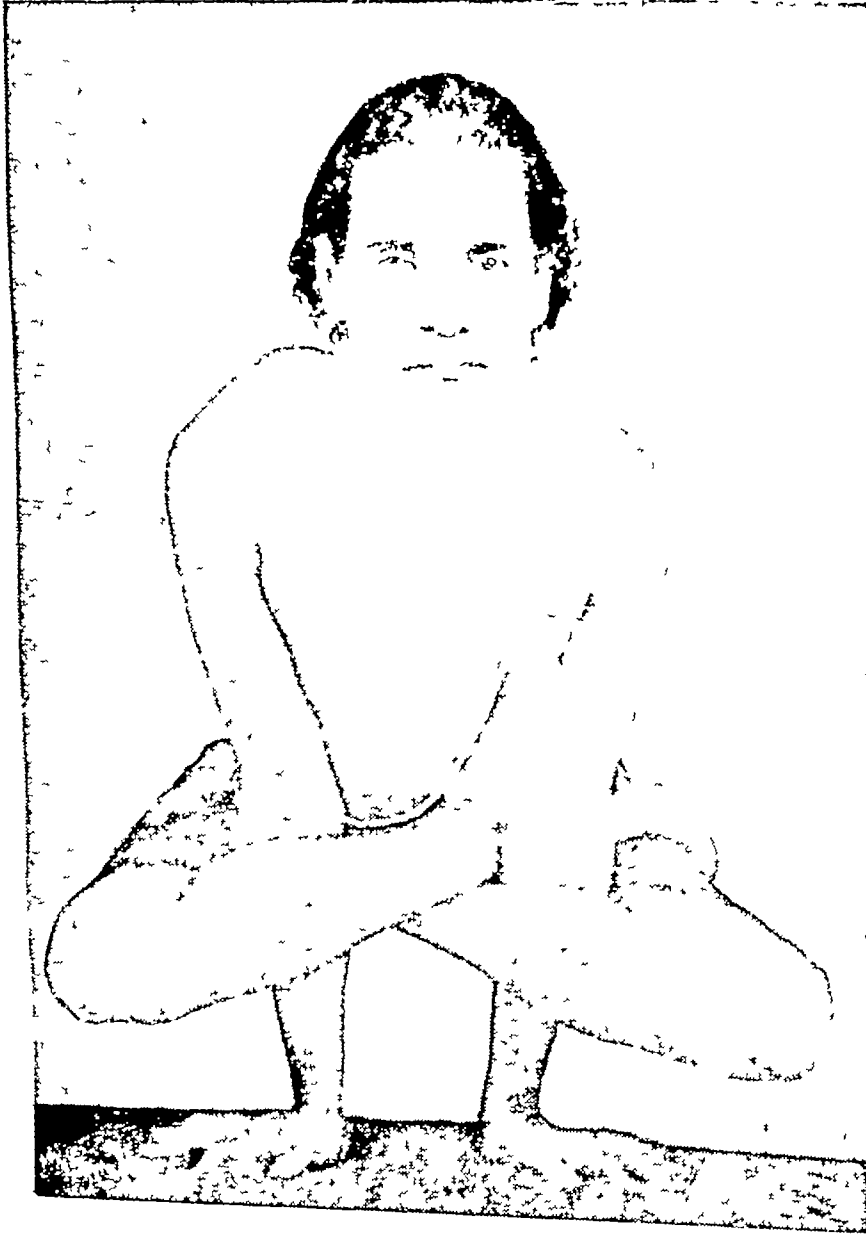
चित्र सं. ३० (पूर्ण सं. ९९) कुक्कुटासन

P. No 30 (S No 99) Kukkutasana

चित्र सं. ३१ (पूर्ण सं. १००) गर्भासन

P No 31 (S. No. 100) Garbhasana (Womb Pose)
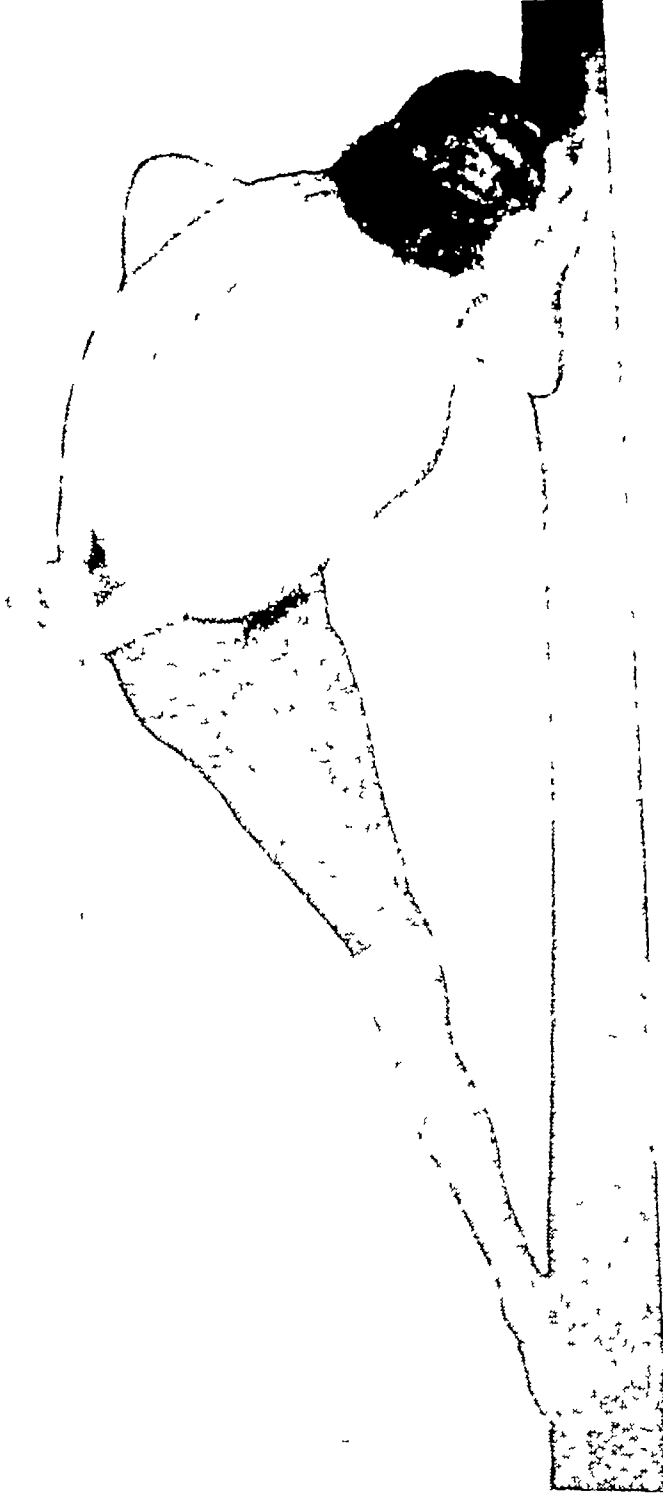
चित्र सं. ३२ (पूर्ण सं. १०१) वीर्यस्तम्भनासन

P No. 32 (S. No. 101) Veerya Stambhanasana

चित्र सं. ३३ (पूर्ण सं. १०२) सुप्त धनुरासन
P No. 33 (S No. 102) Supta Dhanurasana
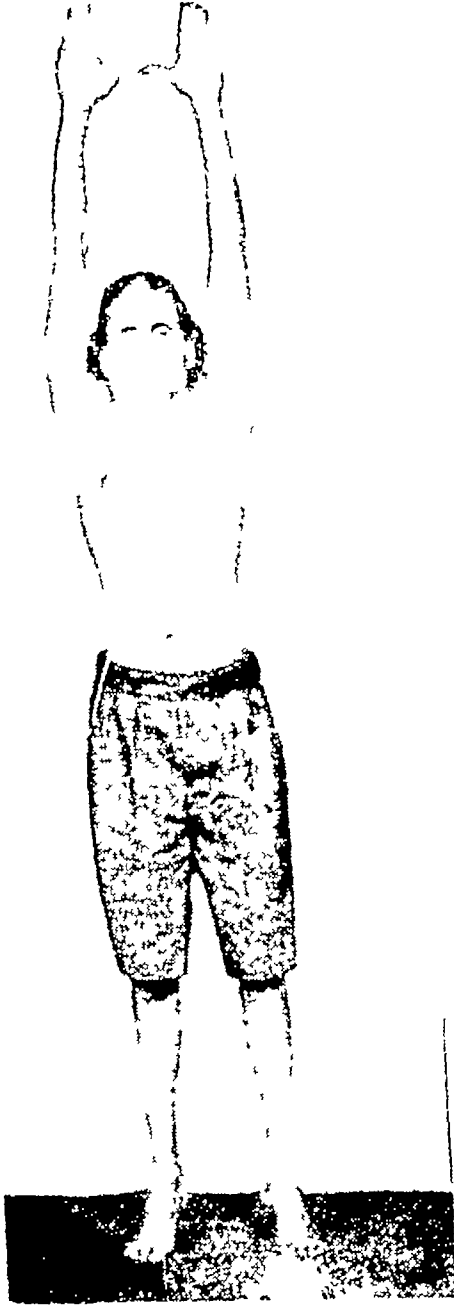
चित्र सं. ३४ (पूर्ण सं. ०२) वृक्षासन

P No. 34 (S. No 103) Vrikshasana
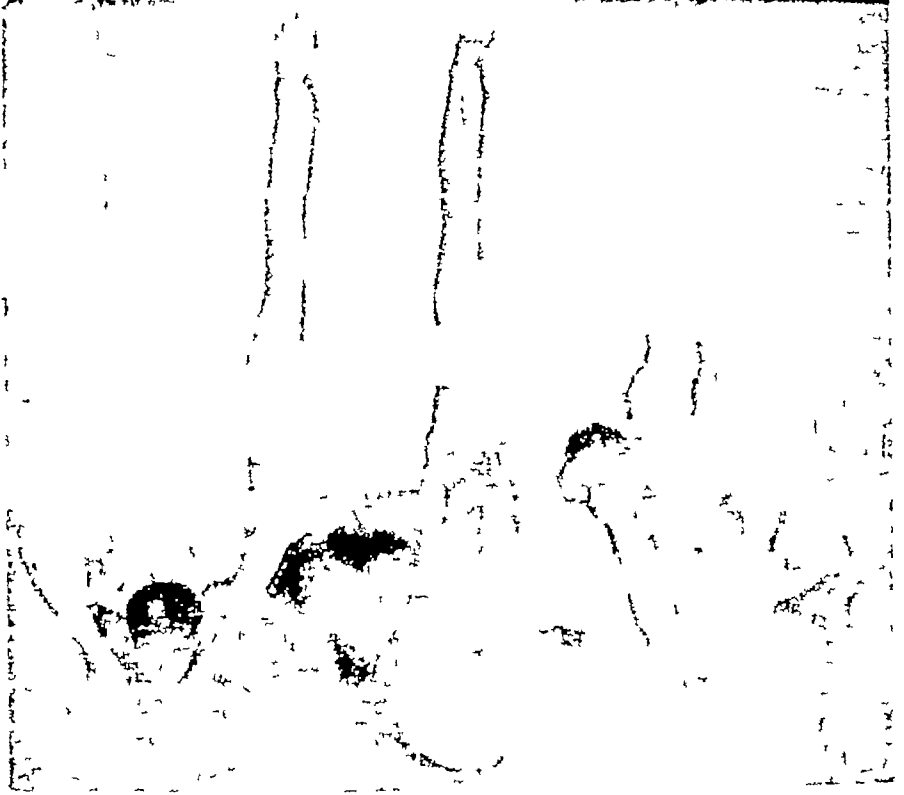
योगसाधना—श्री रामतीर्थ योगाश्रममें
Yogic Class—Shri Ramtirth Yogashram

योगसाधना वर्गका दृष्य—श्री रामतीर्थ योगाश्रम
Yogic Class—Shri Ramtirth Yogashram
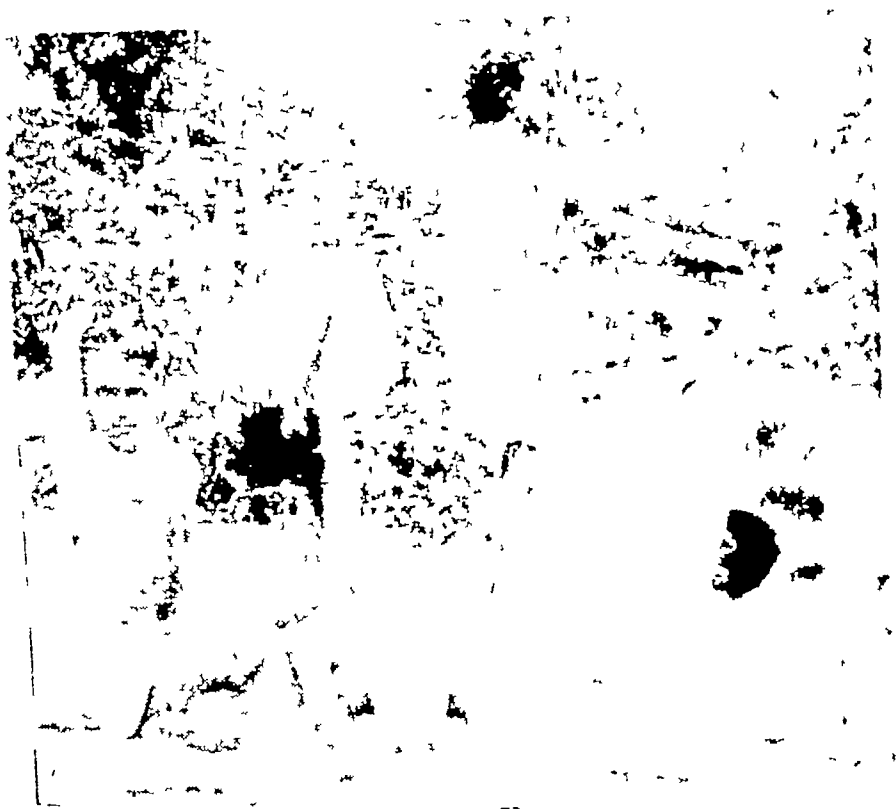
योगसाधना — खुले मैदान और बगीचेमे
Open Space Yogic Class
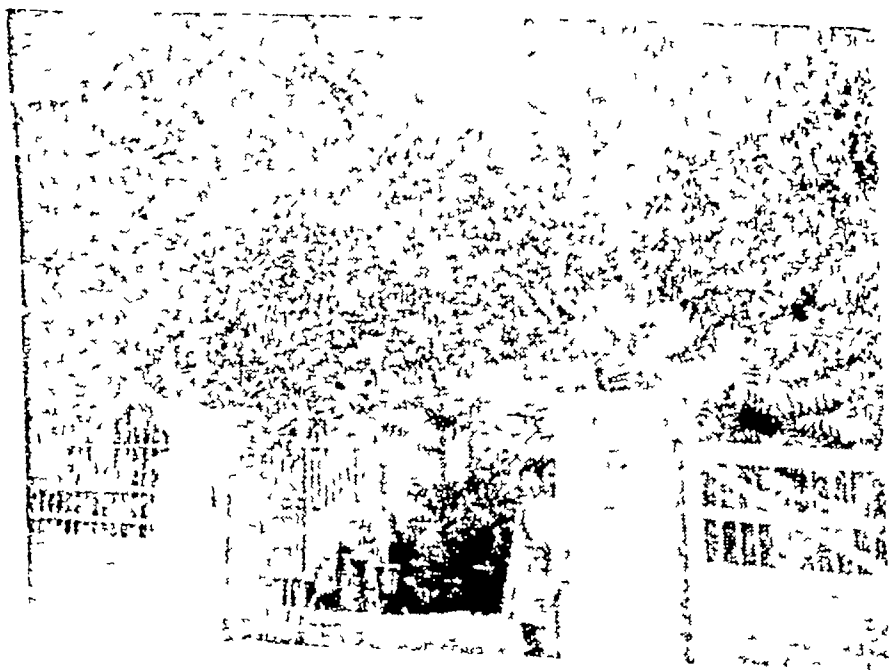
श्री रामतीर्थ योगाश्रम प्रवेशद्वार
Shri Ramtirth Yogashram – Entrance

श्री योगीराज उमेशचंद्रजी, श्री रामतीर्थ योगाश्रम कार्यालयमें

Shri Yogiraj Umeshchandraji–Busy at Shri Ramtirth Yogashram Office

श्री रामतीर्थ योगाश्रम बिल्डींग

Shri Ramtirth Yogashram Building

श्री योगीराज उमेशचंद्रजी—कुटुंबीयोंके साथ
Shri Yogiraj Umeshchandraji with Family Members
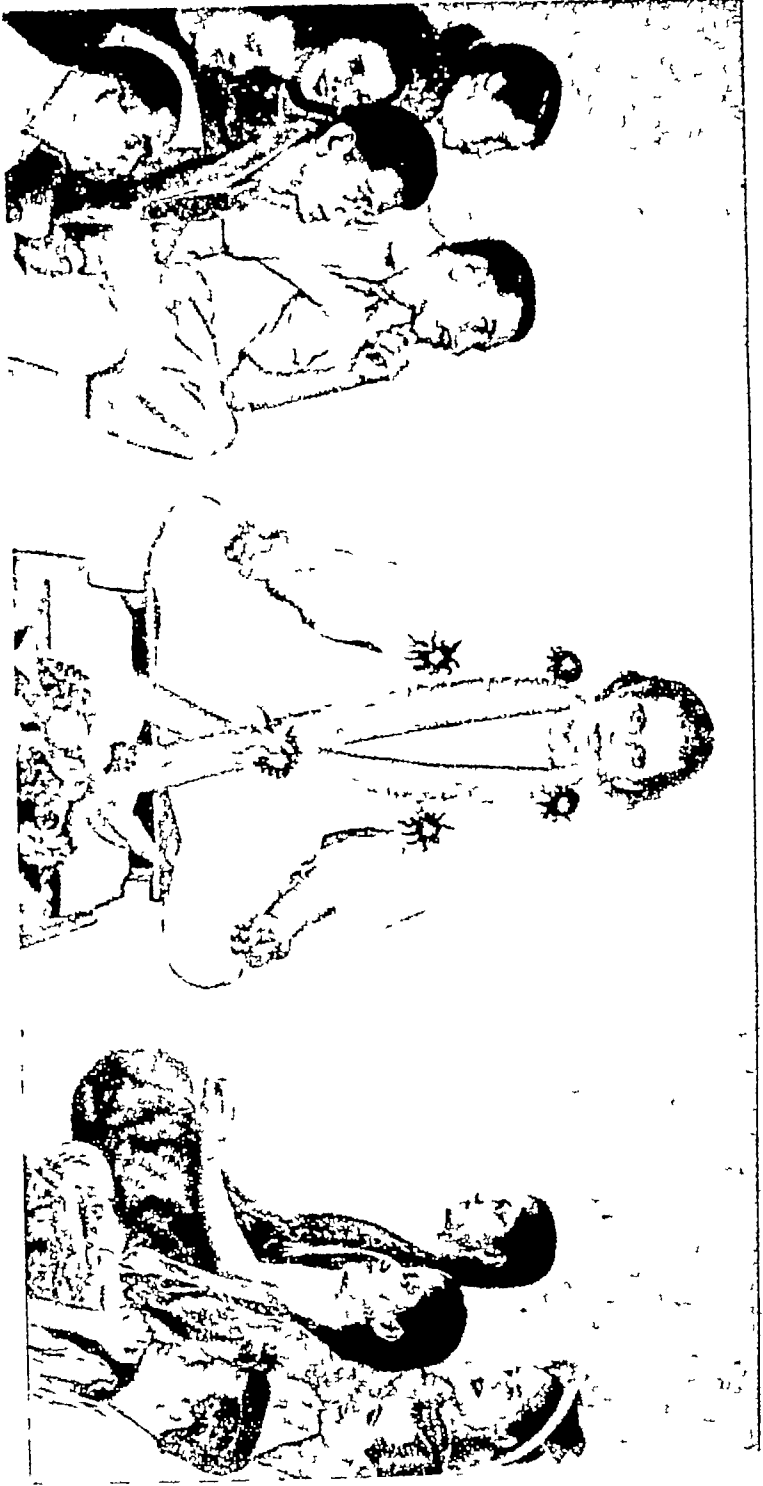
योगीराज श्री उमेशचंद्रजी श्री रामतीर्थ योगाश्रम सभागृहमें व्याख्यानके समय

Yogiraj Shri Umeshchandraji at the time of lecture at
Shri Ramtirth Yogashram Hall
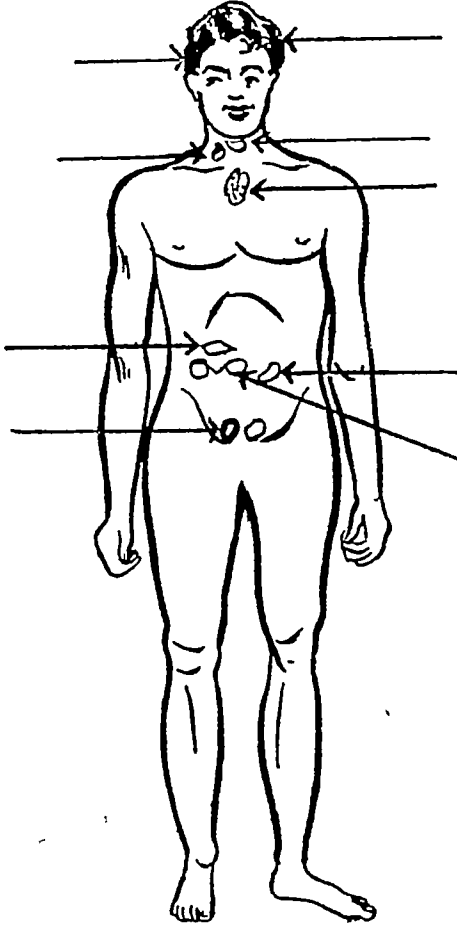
अंतस्त्रावी ग्रंथी
Internal Harmones
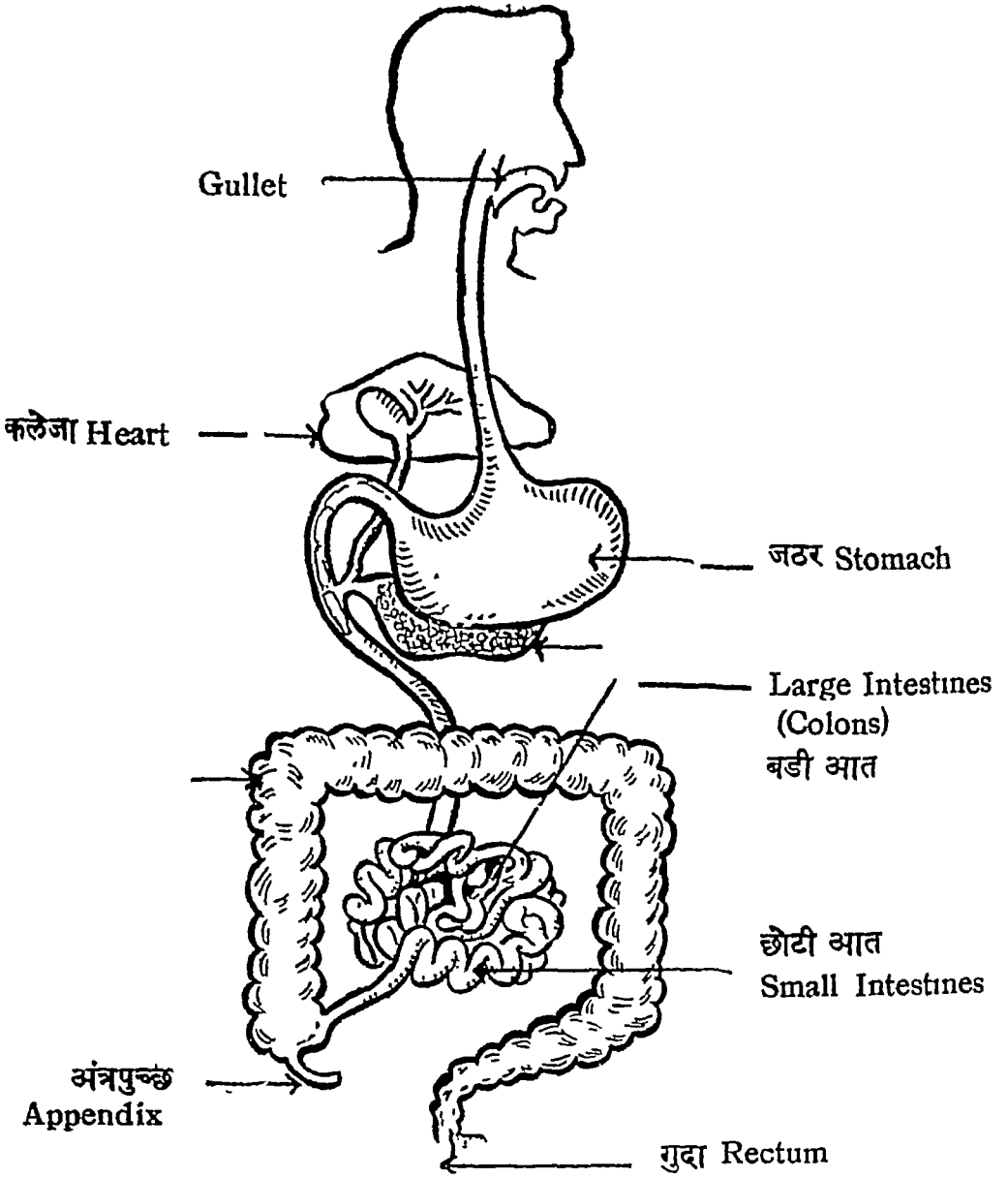
पचन अवयव
Digestive Organs.
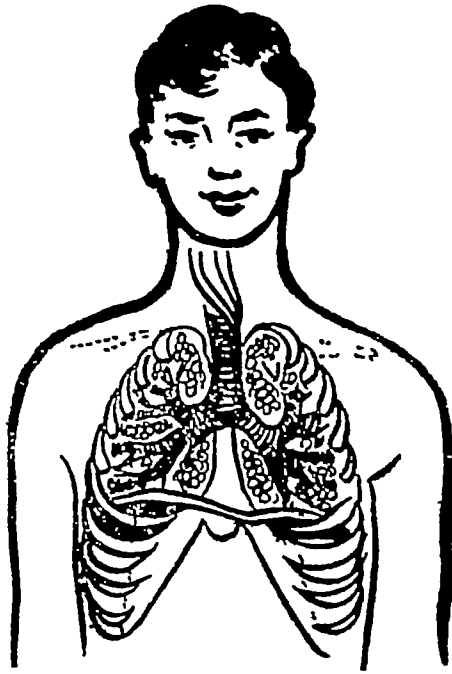
फेंफड़े
Lungs

Urinary System
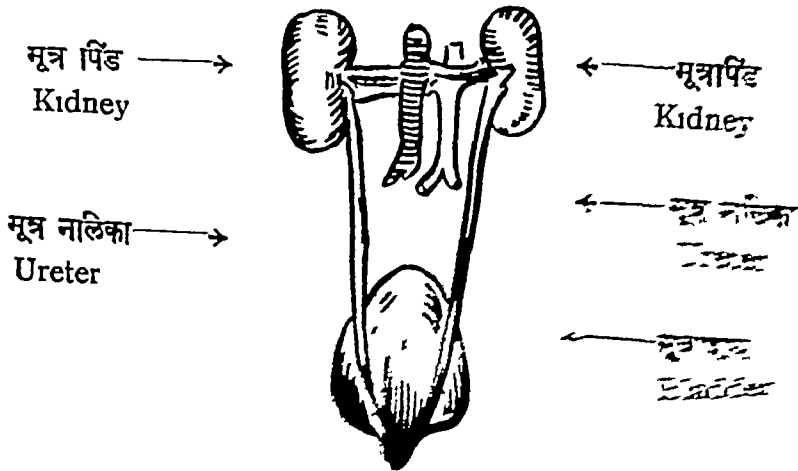
Vertebral Canal and Spinal Cord
करोड रज्जू

Brain मेंदू [मगज]

Sulcos Cinguli
Pineal Body
Parieto-occipital sulcu's
Rectus
Optic Chiasina
Pons
Spinal Cord
Ventricle
Cerebellaum
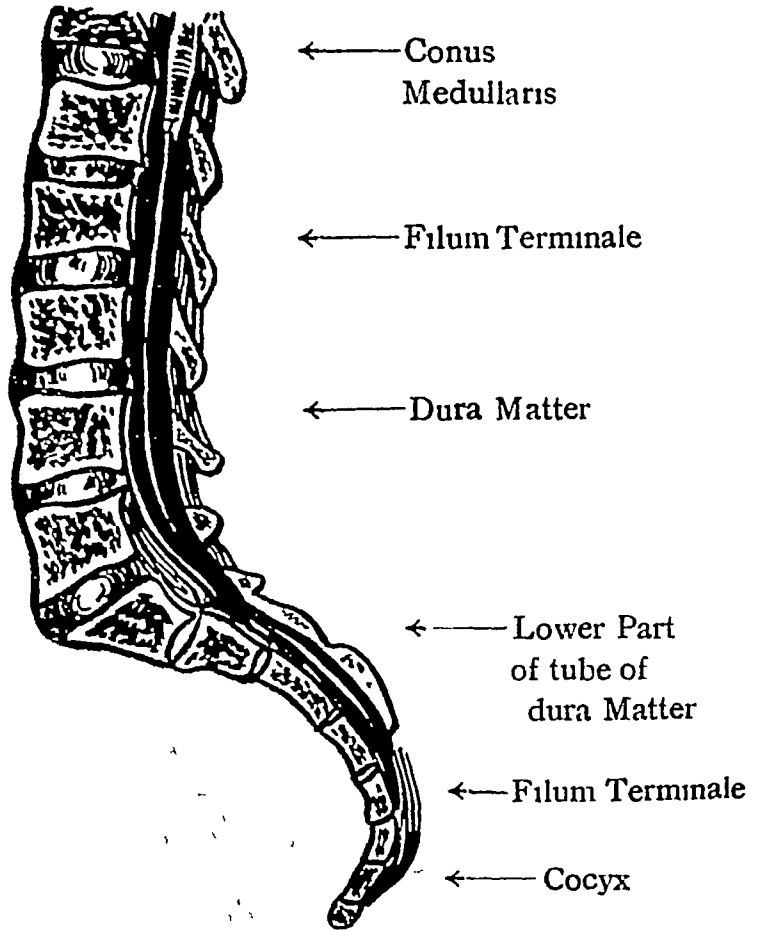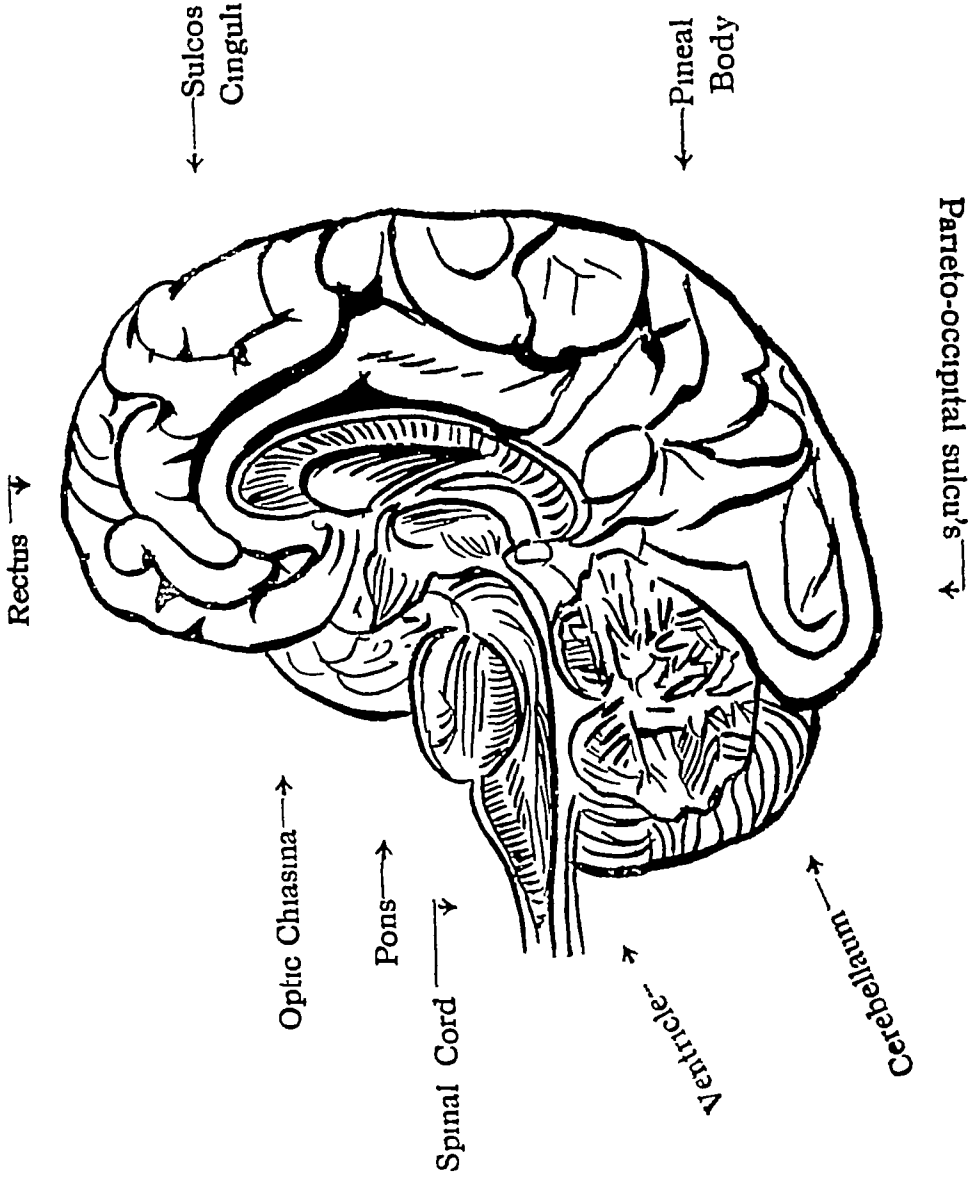
Pro-Pharyngeal Isthmus as seen through widley opened Mouth

मुख अथवा मुँह खोलनेके पश्चात उपजिव्हाँ
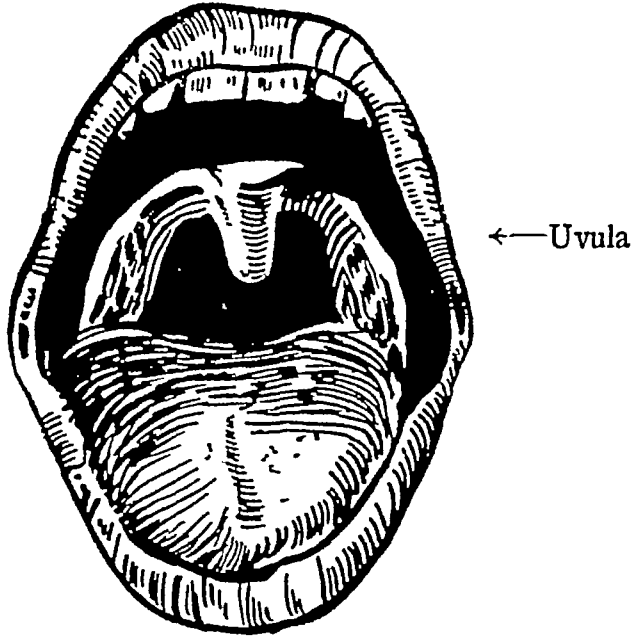
Lower Surface of the Tongue

जिव्हाँ का निचेका भागका दृश्य

Human Eye

चक्षू (आँख) का दृश्य

The Auricle

Nose [नाक]
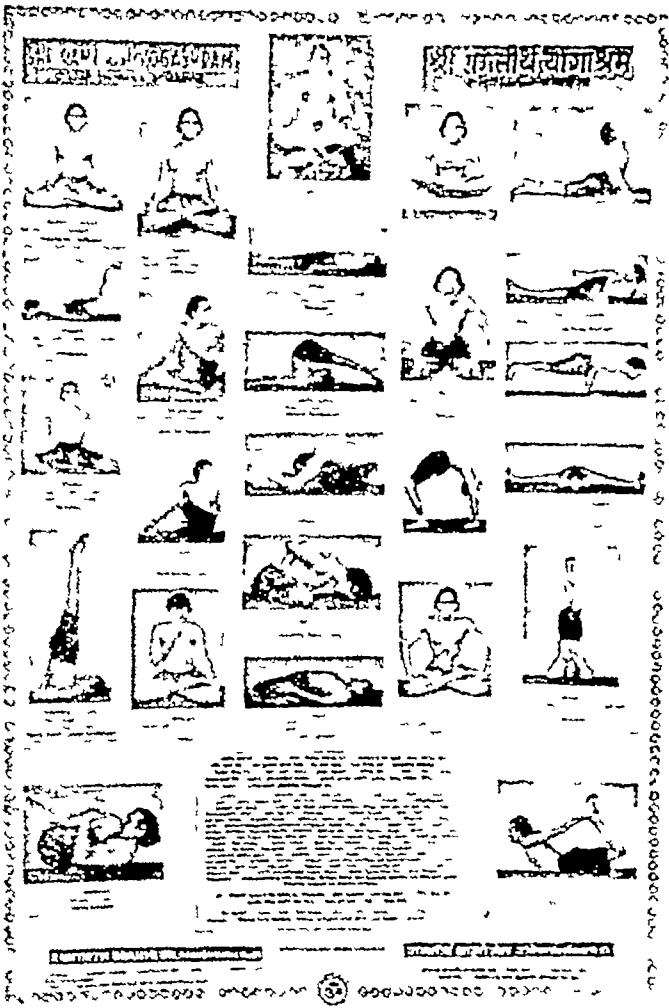
प्रारंभिक भूमिका

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और स्त्री–सबको योगका अधिकार है। जवान हो या वृद्ध हो अथवा अतिवृद्ध हो, व्याधिसे पीडित हो या दुर्बलेंद्रिय हो, सबको योग का अधिकार है और उनको अध्ययन और साधनासे योगसिद्धि हो सकती है। उनके मनको शांति या उनको मुक्ति देनेवाला योग जैसा कोई अन्य बडा साधन उपलब्ध नही है। यही हठयोग प्रदीपिकाका संदेश है।

जो स्त्री–पुरुष सांसारिक व्यवहार–कार्य–सम्पादनमें लगे हों अथवा अन्य किसी आश्रमका कर्तव्य–पालन कर रहे हों; वे षड्वैरियोंसे निस्सन्देह परे रहें; अर्थात् व्यावहारिक कामकाज करते समय किसी विशेष कारणवशात् यदि काम–क्रोधादि विकार अनिवार्य रूप से आक्रमण करें तो अपने मनोबलसे उनका प्रतिरोधकर आत्मा को द्रष्टा बनाये रखें। अर्थात् बाहर देखनेवालोंको आप व्यवहारकुशल प्रतीत हों। गांजा, भांग, खाने–पीने और सूंघने की तम्बाकू, चाय, शराब आदि व्यसनोंसे पूर्णतया दूर रहें। सत्संग, सत्शास्त्रों (वेद, उपनिषद्, रामायण, योगवासिष्ठ, श्रीमद्भगवद्गीता, अष्टावक्र गीता, अवधूतगीता, महाभारत, श्रीमद्-भागवत, पतजल योगदर्शन, घेरण्डसंहिता, शिवसंहिता, महात्माओंके जीवनचरित्र आदि) का पठन–पाठन, शुद्ध, सात्विक भोजन, पवित्र स्थानमें निवास, माता–पिता, गुरु आदिके वचनोका पालन आदि नैतिक कर्तव्योंका पालन प्रत्येक साधक के लिये आवश्यक है। जनसमाज आज आधि–व्याधि और औषधियोंसे पीडित है। ऐसे लोगोंको यथासुलभ उपायों से वास्तविक सुखकी ओर ले जाना अष्टाग योग का उद्देश्य है।

प्रयोजन

जिन की बुद्धि अस्थिर है, मन चचल है और जो किसी न किसी शरीरगत रोगसे पीडित रहते है, डाक्टर, वैद्य, हकीम, ज्योतिषी और तन्त्र–मन्त्रादि विविध उपायों का आश्रय लेनेपर भी जिन्हें व्याधियोंसे मुक्ति नहीं मिल पाती, उन्हें योग-शास्त्रके लाभों और सामर्थ्यसे परिचित कराना ही हमारा प्रमुख उद्देश्य है। **व्याधानीम् च परिमोक्षः।** फिर भी छाती ठोककर हम निश्चयपूर्वक यह दावा कर सकते हैं कि नीरोग अवस्थामें जो लोग श्रद्धा–विश्वासके साथ योगाभ्यासको अपनायेंगे, उनके भाग्यमें रोगी होने का समय जीवन में कभी नहीं आ सकेगा। **स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम्।**

अर्थात् निरन्तर योगाभ्यास करते रहनेसे शरीर नीरोग तथा सुदृढ़ बनता है और मन पवित्र तथा शक्तिशाली बनकर आत्मज्ञानकी ओर प्रवृत्त होता है।

सम्बन्ध

जैसे बाल्यावस्था, कुमारावस्था, युवावस्था, प्रौढावस्था, वृद्धावस्था, जर्जरावस्था आदिमें शरीर की स्थिति बदलती रहती है और जाग्रदवस्था, स्वप्नावस्था, तन्द्रावस्था, सुषुप्ति अवस्था और तुरीयावस्था क्रमानुसार बदलती रहती हैं तथैव जीव अज्ञानावस्था में प्रत्येक स्थिति में अपने को परवश, अपूर्ण, चिन्ताग्रस्त और दुःखी समझता है। जिस दिन मनुष्य को स्पष्ट रूपसे भान हो जायेगा कि कल्पलतिका के समान सर्वार्थसाधिका योगविद्या में अभिरुचि रखने और उसका व्यावहारिक साधन करनेसे निश्चय हमारा उद्धार होगा, उसी दिन से दु.ख की सम्पूर्ण निवृत्ति होगी और सुख के साथ शाश्वत सम्बन्ध स्थापित होगा।

भारतका अग्रस्थान

योगविद्या—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—के उपासक समस्त जगत् में—विशेषकर भारतमें—भूतकालमें हो गये हैं; वर्तमान कालमें भी उनका अस्तित्व विद्यमान है और भविष्य में भी उनका अवतरण निस्सन्देह होगा। परन्तु हमारे भूतकालीन योगवेत्ता ऋषि—महर्षियो और सर्वसाधारणने यौगिक जीवनके आधारको केवल आत्मकल्याणतक ही स्वीकार किया है, शरीरको नीरोग, बलवान् तथा मनको विशुद्ध और पवित्र बनानेकी दिशामे उनकी प्रवृत्ति बहुत कम जान पड़ती है। हा, यह हो सकता है कि उस समय ऋषि—मुनियोंके नियमानुसार प्राकृतिक जीवन ही दैनिक निजी जीवनका क्रम रहा हो, अर्थात् जगलोंमें, खेतोंमें पुष्पवाटिकाओंमें, मधु—कुजोंमें और गोबरसे लेपायमान घरोंमें वास करना, नदी—कूपादि के प्राणवायुयुक्त शुद्ध जलका सेवन, शुद्ध खादी—वस्त्रके परिधान का धारण, दूध—फल—अन्नादिका समुचित उपयोग, सत्सगमें विशेष अनुराग, सूर्य—नमस्कारके द्वारा सूर्य—किरणों और विशुद्ध प्राणप्रद वायुसे विटामिन (जीवनसत्त्व) को ग्रहण कर शरीरमें पहुँचाना आदि सब तरहसे प्राकृतिक नैसर्गिक (कुदरती) जीवन होनेसे शारीरिक

तथा मानसिक आरोग्य आसानीसे प्राप्त होता रहता था। वर्तमान स्थिति सर्वथा विपरीत है। आज के स्त्री-पुरुषोंकी जीवन-चर्या उपर्युक्त नियमोंके साथ मेल नहीं खाती। आजकल उद्योग-धन्धेसे अवकाश मिलते ही लोग सिनेमा, नाटक, तमाशा, राग-रग आदि देखनेके लिये सपरिवार जाते हैं। जाना ही चाहिये, न जायें तो इष्टमित्र सगे-सम्बन्धी और पास-पडोसके लोग नित्य नई-नई बातें सुनाते है कि नागरिक जीवनमें रहकर भी पशु-जीवन व्यतीत करते हैं। वे सलाह देते हैं कि जीवनके सुख, आनन्द और समाधानके लिये ही सिनेमा, तमाशा आदि मनोरंजनके साधन बनाये गये हैं, वहा जाना ही चाहिये। सिगरेट आदि भी पीना चाहिये। ऐसे लोग मानव को अनेक प्रकारके हानिकर व्यसनोंसे जकड़ देते हैं। फलस्वरूप शरीरमे अनेक प्रकारके रोग लग जाते हैं और मन भी व्याधिग्रस्त हो जाता है। इस स्थितिमें धनका अपव्यय अनिवार्य है। अन्तमें व्यापार-धन्धे में हानि उठानी पडती है अथवा उससे बिलकुल निवृत्ति लेनी पड़ती है; फलतः जीवन नरकमय बन जाता है। वर्तमान नागरिक जीवनमें व्यस्त और रचे-पचे लोगोंकी यह स्थिति स्पष्ट देखी जा सकती है, शायद ही कोई अपवाद रूपमें इस भयकर अभिशापसे मुक्त हो। आत्माके इस पवित्र मन्दिरको रोग-विकारोंसे मलिन और जर्जरित रखना अक्षम्य अपराध है।

क्या शरीर और मनकी ओर ध्यान देना आवश्यक है?

हां, यह अत्यावश्यक है। व्यवहार और परमार्थ के मार्गमे शरीर और मन मुख्य साधन हैं। इन्हीं के द्वारा अभीष्ट वस्तु की उपलब्धि सम्भव है। शुद्ध नाड़िया, विशुद्ध रक्त, सुपुष्ट मास, बलवान् मज्जातन्तु, सशक्त क्रियातन्तु तथा ज्ञानतन्तु, विशुद्ध वीर्य-यह सब मानव-शरीरमें यथोचित परिमाण में होंगे, तभी व्यवहार और परमार्थ-साधन में यथेच्छ सफलता मिल सकती है। हा, यह सत्य है कि वर्तमान युगमें अधिकाश पढे-लिखे, शिक्षित, सभ्य कहलानेवाले स्त्री-पुरुष रंग-बिरंगे वस्त्र-परिधानसे सुसज्जित होकर और स्नो, पाउडर, लिपस्टिक तथा आकर्षक आभूषणोंसे अपने बाह्य सौन्दर्य-सवर्धनका जो आयोजन करते रहते हैं, वह कदापि उचित नहीं। सौन्दर्य के ये बाह्य प्रसाधन नितान्त हानिप्रद और अवाछनीय हैं। हमारे लिये हितकर यही होगा कि जिस प्रकार भगवान् की मूर्ति और मन्दिरको सुन्दर, सुरम्य, सुदृढ़ और स्वच्छ रखना आवश्यक है; वही स्थिति शरीरपर भी लागू होती है। शरीर भी आत्मा-परमात्मा-का मन्दिर है।

मैंने अनुभवसे क्या देखा और सुना है?

मैंने अनेक प्रान्तोंका भ्रमण किया है। इस अवसरपर अनेक साधु-सन्त ध्यानी-ज्ञानी, योगी-विरागी, पंडित, गद्दीपति, मठाधीश और महन्तों के दर्शनार्थ मैं जाया करता था। उक्त महात्माओं के शरीर अपवादरूपमें नीरोग और सशक्त दिखाई दिये। मैंने उन महात्माओंसे पूछा कि आप लोग जनकल्याण, परोपकार और सत्-चित्-आनन्द के लिये प्रयत्नशील हैं सही, परन्तु उसके प्रमुख साधन शरीर और मन जितने अनुकूल होने चाहिये, उतने दिखाई दे नहीं रहे हैं। जुकाम, अशक्ति, मलबद्धता, शिरोवेदना, मेदवृद्धि, कमजोरी, वीर्यक्षीणता, अपचन, ध्यानावस्थामें तन्द्रावस्था अथवा निद्रावस्था का आक्रमण होता रहता है और इस प्रकार कोई न कोई व्याधिमूलक कारण आपके पीछे लगा हुआ है। यह स्थिति परमार्थ और जन-कल्याण के मार्ग में विघ्नरूप है। उक्त महात्माओं की ओरसे तुरन्त उत्तर मिला कि शरीर और मन नश्वर, क्षणभगुर और विकारवान् हैं; अतः इनके प्रति मोह, ममता, माया और अनुरक्ति बिलकुल नहीं रखनी चाहिये। जबतक भगवान् की कृपा रहेगी, तबतक शरीरका अस्तित्व रहेगा, इसलिये शरीर के प्रति त्याग, विरागकी भावना रखनी चाहिये। मात्र जनकल्याण, धर्मका प्रचार और आत्मोन्नति करना ही हमारे जीवनका परम लक्ष्य और कर्तव्य है।

शंका-समाधान

निस्सन्देह मैं महात्माओं की उपर्युक्त बातों को स्वीकार करता हूँ और उन्हें जीवन में उतारने के प्रयास भी करता रहता हूँ, किन्तु मुख्य ज्ञातव्य विषय यही है कि जनकल्याण और आत्मकल्याण के लिये हम जो भी प्रयास करते हैं, वह शरीर और मन के द्वारा ही करते हैं। ऐसी दशा में मोह, ममता को त्यागकर अपने कर्तव्यकार्य की पूर्ति के लिये जबतक हमें इस जगत् में रहना है, तबतक शरीर और मन को पूर्णतया स्वस्थ और निर्विकार रखना पडेगा। ऐसा न करने से न तो अपना कल्याण उचित रूप से हो सकेगा और न जनसमाजका। हरिद्वार, हृषीकेश, काशी आदि अनेक पुण्य-क्षेत्रों में बसनेवाले अनेक महात्माओं को देखकर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उचित रूप में साधनसम्पन्न होने पर भी शरीर और मन अस्वस्थ होने के कारण वे आगे बढने में असमर्थ हैं। जब वे अपना ही भला करने में समर्थ नहीं; तब दूसरों का भला कैसे कर सकेंगे? शरीर भगवान् का मन्दिर है।

तथा मानसिक आरोग्य आसानीसे प्राप्त होता रहता था। वर्तमान स्थिति सर्वथा विपरीत है। आज के स्त्री–पुरुषोंकी जीवन–चर्या उपर्युक्त नियमोंके साथ मेल नहीं खाती। आजकल उद्योग–धन्धेसे अवकाश मिलते ही लोग सिनेमा, नाटक, तमाशा, राग–रग आदि देखनेके लिये सपरिवार जाते है। जाना ही चाहिये, न जायें तो इष्टमित्र सगे–सम्बन्धी और पास–पडोसके लोग नित्य नई–नई बातें सुनाते हैं कि नागरिक जीवनमें रहकर भी पशु–जीवन व्यतीत करते हैं। वे सलाह देते हैं कि जीवनके सुख, आनन्द और समाधानके लिये ही सिनेमा, तमाशा आदि मनोरंजनके साधन बनाये गये हैं, वहा जाना ही चाहिये। सिगरेट आदि भी पीना चाहिये। ऐसे लोग मानव को अनेक प्रकारके हानिकर व्यसनोंसे जकड़ देते है। फलस्वरूप शरीरमें अनेक प्रकारके रोग लग जाते हैं और मन भी व्याधिग्रस्त हो जाता है। इस स्थितिमें धनका अपव्यय अनिवार्य है। अन्तमें व्यापार–धन्धे में हानि उठानी पडती है अथवा उससे बिलकुल निवृत्ति लेनी पड़ती है; फलतः जीवन नरकमय बन जाता है। वर्तमान नागरिक जीवनमें व्यस्त और रचे-पचे लोगोंकी यह स्थिति स्पष्ट देखी जा सकती है, शायद ही कोई अपवाद रूपमें इस भयकर अभिशापसे मुक्त हो। आत्माके इस पवित्र मन्दिरको रोग–विकारोंसे मलिन और जर्जरित रखना अक्षम्य अपराध है।

क्या शरीर और मनकी ओर ध्यान देना आवश्यक है?

हां, यह अत्यावश्यक है। व्यवहार और परमार्थ के मार्गमें शरीर और मन मुख्य साधन हैं। इन्ही के द्वारा अभीष्ट वस्तु की उपलब्धि सम्भव है। शुद्ध नाडिया, विशुद्ध रक्त, सुपुष्ट मास, बलवान् मज्जातन्तु, सशक्त क्रियातन्तु तथा ज्ञानतन्तु, विशुद्ध वीर्य–यह सब मानव–शरीरमें यथोचित परिमाण में होंगे, तभी व्यवहार और परमार्थ-साधन में यथेच्छ सफलता मिल सकती है। हां, यह सत्य है कि वर्तमान युगमें अधिकांश पढे–लिखे, शिक्षित, सभ्य कहलानेवाले स्त्री–पुरुष रंग-बिरगे वस्त्र–परिधानसे सुसज्जित होकर और स्नो, पाउडर, लिपस्टिक तथा आकर्षक आभूषणोंसे अपने बाह्य सौन्दर्य–सवर्धनका जो आयोजन करते रहते हैं; वह कदापि उचित नहीं। सौन्दर्य के ये बाह्य प्रसाधन नितान्त हानिप्रद और अवाछनीय हैं। हमारे लिये हितकर यही होगा कि जिस प्रकार भगवान् की मूर्ति और मन्दिरको सुन्दर, सुरम्य, सुदृढ़ और स्वच्छ रखना आवश्यक है; वही स्थिति शरीरपर भी लागू होती है। शरीर भी आत्मा–परमात्मा–का मन्दिर है।

मैंने अनुभवसे क्या देखा और सुना है?

मैंने अनेक प्रान्तोंका भ्रमण किया है। इस अवसरपर अनेक साधु-सन्त ध्यानी-ज्ञानी, योगी-विरागी, पंडित, गद्दीपति, मठाधीश और महन्तों के दर्शनार्थ मैं जाया करता था। उक्त महात्माओं के शरीर अपवादरूपमें नीरोग और सशक्त दिखाई दिये। मैंने उन महात्माओंसे पूछा कि आप लोग जनकल्याण, परोपकार और सत्-चित्-आनन्द के लिये प्रयत्नशील हैं सही; परन्तु उसके प्रमुख साधन शरीर और मन जितने अनुकूल होने चाहिये, उतने दिखाई दे नहीं रहे हैं। जुकाम, अशक्ति, मलबद्धता, शिरोवेदना, मेदवृद्धि, कमजोरी, वीर्यक्षीणता, अपचन, ध्यानावस्थामें तन्द्रावस्था अथवा निद्रावस्था का आक्रमण होता रहता है और इस प्रकार कोई न कोई व्याधिमूलक कारण आपके पीछे लगा हुआ है। यह स्थिति परमार्थ और जन-कल्याण के मार्ग में विघ्नरूप है। उक्त महात्माओं की ओरसे तुरन्त उत्तर मिला कि शरीर और मन नश्वर, क्षणभगुर और विकारवान् हैं, अतः इनके प्रति मोह, ममता, माया और अनुरक्ति बिलकुल नहीं रखनी चाहिये। जबतक भगवान् की कृपा रहेगी, तबतक शरीरका अस्तित्व रहेगा, इसलिये शरीर के प्रति त्याग, विरागकी भावना रखनी चाहिये। मात्र जनकल्याण, धर्मका प्रचार और आत्मोन्नति करना ही हमारे जीवनका परम लक्ष्य और कर्तव्य है।

शंका-समाधान

निस्सन्देह मैं महात्माओं की उपर्युक्त बातों को स्वीकार करता हूँ और उन्हें जीवन में उतारने के प्रयास भी करता रहता हूँ; किन्तु मुख्य ज्ञातव्य विषय यही है कि जनकल्याण और आत्मकल्याण के लिये हम जो भी प्रयास करते हैं; वह शरीर और मन के द्वारा ही करते हैं। ऐसी दशा में मोह, ममता को त्यागकर अपने कर्तव्यकार्य की पूर्ति के लिये जबतक हमें इस जगत् में रहना है, तबतक शरीर और मन को पूर्णतया स्वस्थ और निर्विकार रखना पडेगा। ऐसा न करने से न तो अपना कल्याण उचित रूप से हो सकेगा और न जनसमाजका। हरिद्वार, हृषीकेश, काशी आदि अनेक पुण्य-क्षेत्रों में बसनेवाले अनेक महात्माओं को देखकर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उचित रूप में साधनसम्पन्न होने पर भी शरीर और मन अस्वस्थ होने के कारण वे आगे बढने में असमर्थ हैं। जब वे अपना ही भला करने में समर्थ नहीं; तब दूसरों का भला कैसे कर सकेंगे? शरीर भगवान् का मन्दिर है।

"देहो देवालयो प्रोक्तो देही देवो निरंजनः।
अर्चितं सर्वभावेन स्वानुभूत्या विराजते॥"

यह श्लोक भगवान् आदि शंकराचार्यविरचित "**सदासार स्तोत्र**" के अन्तर्गत है। इसका अर्थ यह है कि उचित रूपमें परमार्थ साधन किया जाये तो स्वशरीरमें ही भगवान् निरंजन के दर्शन हो सकते हैं। जिस प्रकार स्वच्छ मलरहित दर्पण (आरसी) में शरीर का प्रतिबिम्ब स्पष्ट झलक उठता है, उसी प्रकार शरीर और मनको शुद्ध निर्मल (मोह–ममतारहित) रखनेसे आत्मकल्याण का साधन करते हुए जगत् के अनेक व्यावहारिक और पारमार्थिक भावापन्न लोगोंका उद्धार किया जा सकता है।

दीर्घकालीन अनुभवका फल

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम गत २५ वर्षोंसे जनता–जनार्दन की सेवा कर रहा है। किन्तु मेरे स्वानुभव उससे आगे हैं। इस ग्रन्थमें जो कुछ लिखा गया है, वह सब स्वानुभव और आश्रमकी सेवाओंसे लाभ उठानेवाले अनेक भाई–बहनोंके आधारपर लिखा गया है।

अनेक व्यक्तियोंमें विशेषतः यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि केवल ग्रथावलोकनके आधारपर वे पुस्तकें लिख डालते हैं, किन्तु इस लेखनमें अनुभवका अंश बहुत कम होता है या बिलकुल नहीं होता। इसका फल यह होता है कि जनता को जितना लाभ मिलना चाहिये, उतना मिल नहीं पाता; फलतः लोग सन्देहवश होकर इस साधनसे ही मुख मोड़ बैठते हैं। अतः मैं आत्मश्लाघा तो नहीं करता; हां, पाठकों और जिज्ञासुओंके समाधानके लिये मुझे कहना पड़ रहा है कि सप्ताहमें कमसे कम एकबार अष्टांग योग, वेदान्त, उपनिषद्, भक्ति, प्राकृतिक चिकित्सा आदि अनेक विषयोंमेंसे किसी एक विषयपर सर्वसाधारण जनता के समक्ष श्रीरामतीर्थ योगाश्रममें अथवा अन्य स्थानोंपर मैं व्याख्यान देता हूँ; प्रतिदिन साधकों के साथ आसन–प्राणायामादि का अभ्यास करता हूँ तथा साधकोंको तद्विषयक शिक्षा देता हूं; आसनादि सिखाता हू। अतः इस ग्रन्थके निर्माणमें तथा आसन करनेकी विधियां और लाभ बताने में ग्रन्थावलोकनकी अपेक्षा स्वानुभवका ही विशेष आधार मुझे लेना पड़ा है। फलतः इस ग्रन्थमें व्यक्तिगत रूपसे किसी आसनका वर्णन नहीं किया गया है। जिस साधकने

लिये जो आसन अनुकूल हो; वह उसका अभ्यास करे और यथोचित लाभ उठाये। '**उमेश योगदर्शन**' ग्रन्थ में सब प्रकार के मल-शोधन-कार्य तथा आसनोंके छाया-चित्र (फोटो) मेरे ही दिये गये हैं। यद्यपि आरम्भसे अबतक श्रीरामतीर्थ योगाश्रममें शिक्षाप्राप्त सहस्रों योगसाधकों के अत्यन्त सुन्दर छायाचित्र लिये जा सकते थे, किन्तु ऐसा न करके मेरे ही चित्र दिये गये हैं। इसका विशेष कारण यह है कि पाठकोंको प्रत्यक्ष प्रमाण रूपसे पता चले कि इस ग्रन्थ का प्रणयन केवल पाण्डित्य के आधारपर नहीं किया गया, अपितु स्वानुभव के आधारपर किया गया है। इस ग्रन्थमें अनेक महत्त्वपूर्ण आसनों का वर्णन किया गया है।

रोगियोंके लिये

किस आसनसे कौन-सा रोग मिटता है; इस ग्रन्थमें इसी बातका उल्लेख किया गया है; परन्तु पाठकों और साधक स्त्री-पुरुषोंको इतना जान लेना आवश्यक है कि जैसे किसी वृक्षका बीज कितना ही परिपक्व हो और कितने ही उत्कृष्ट वृक्ष को उत्पन्न करनेमें समर्थ हो, किन्तु यदि उर्वर क्षेत्र, सूर्य-प्रकाश, शुद्ध वायु, जल और आकाश आदिकी उचित व्यवस्था न होगी तो उत्कृष्ट बीजसे भी कोई लाभ न होगा, उसी तरह यदि आप केवल आसनोंका अभ्यास करके ही सब तरहसे लाभ उठाना चाहते हैं तो ऐसा सम्भव न होगा; बल्कि (आसनोंका यथोचित लाभ पानेके लिये) शुद्ध वायु, सात्त्विक भोजन और जिन जीवन-तत्त्वोंके अभावमें शरीरमें रोगकी उत्पत्ति हुई है, उन जीवन-तत्त्वों का यथोचित सेवन, शुद्ध जल, प्रकाशमय और स्वच्छ स्थान और आशामय विचारोंसे जीवन को ओतप्रोत रखना ही होगा। निर्व्यसन रहना भी अत्यावश्यक है। सीनेमा, नाटक, शराब, गांजा, तम्बाकू, चाय, भांग आदि दुर्व्यसनोंको छोड़ना पड़ेगा। अश्लील साहित्य और अन्य अनीतिमूलक कुकर्म भी छोड़ने पड़ेंगे। हां, यदि ये दुर्व्यसन और कुकर्म दीर्घकालसे पीछे लगे हों और उन्हें एकाएक एक साथ ही तुरन्त छोड देना सम्भव न हो तो चिन्ता करने का कोई कारण नहीं। इन सब दुर्व्यसनोंसे पीछा छुडाने की बलवती भावना मन में पैदा करें और छः प्रकार के मलशोधन-कार्य और अल्पश्रमसाध्य आसनोंका अभ्यास प्रारम्भ कर दें। शरीरमें आरोग्य और मनमें पवित्रताका सचार करनेवाले ग्रन्थों का अवलोकन करें, सत्सग करें तथा मनको उन्नत बनानेवाले व्याख्यान सुनें

ऐसा करनेसे कुछ ही दिनों अथवा कुछ ही महीनोंमें उपर्युक्त सभी व्यसनों के प्रति शनैः-शनैः घृणा उत्पन्न होने लगेगी और एक दिन उनसे पूर्णतया छुटकारा मिल जायेगा। स्मरण रखें कि व्यसन ही रोगके मूल कारण हैं; सादा और सरल जीवन तथा उच्च विचार व्यावहारिक और पारमार्थिक लक्ष्य-सिद्धिपर पहुँचानेवाले राजपथ हैं।

योगाभ्यासका व्यापक प्रचार आवश्यक

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम गत २५ वर्षोंसे जनसाधारण की सेवा कर रहा है। रोगी-नीरोगी, मानसिक अशान्तिसे ग्रस्त, आत्मकल्याणाकाक्षी, शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सामर्थ्य का लाभ उठाने के लिये आश्रममे आते हैं तथा विविध साधनों, व्याख्यानों एवं तत्सम्बन्धी उच्च साहित्यके द्वारा अबतक लाखों स्त्री-पुरुष लाभ उठाकर अभीष्ट सिद्ध कर चुके हैं। व्यक्तिगत रूपसे योगाभ्यासका मेरा अनुभव अनुमानतः ३५ वर्षों का है।

इस पुस्तकमें जो कुछ मैंने लिखा है, वह सब अनुभवसिद्ध है। कुछ तो आश्रममें आकर साधना करनेवाले स्त्री-पुरुषोंको उपलब्ध लाभ के आधारपर और बहुत कुछ स्वानुभवके आधारपर निश्चित रूपसे विचार-चिन्तनकर लिखा गया है। पाठकगण अवश्य ही इस पुस्तकमें निदर्शित आसनोंका स्वय अभ्यास करें और तत्पश्चात् अपने अनुभव हमे बतानेकी कृपा करें तो हम उनके बहुत उपकृत होंगे। प्रत्येक घर में योगाभ्यासका प्रचार हो, भारत तथा विदेश का समग्र नर-नारी-समाज योगाभ्यासका पवित्र मार्ग अपनाये और उससे यथेष्ट लाभ उठाये, यही मेरी हार्दिक इच्छा है। योगाभ्यासविषयक अनेक ग्रन्थ मैंने पढ़े हैं। उनमें आसनोंके यथावत् रूपको हृदयंगम करानेवाले चित्र नहीं होते और कदाचित् किसी ग्रन्थमें होते भी हैं तो अपवादरूपमें अल्पश्रमसाध्य होते हैं, विशेष श्रमसाध्य आसन बहुत न्यून सख्यामें रहते है अथवा कहीं-कहीं तो रहते भी नहीं।

इसके अनेक कारण हो सकते हैं; परन्तु मेरे दृष्टिकोणमें प्रमुख कारण यह जान पडता है कि ऐसे ग्रन्थकर्ताओंका अध्ययन और साधन बहुत सीमित होते हैं। वे या तो किसी योग-साधक से ग्रन्थ-निर्माण में सहयोग लेते हैं अथवा ग्रन्थावलोकन से प्राप्त अपने सीमित ज्ञान के आधारपर लिखते हैं। समझ में नहीं आता कि उनके इस प्रकार के साहस का उद्देश्य क्या है ! वे संकुचित विचार अथवा

अहंकार के वशीभूत होकर अथवा स्वय साधन करने मे असमर्थ होने के कारण ऐसा करते होंगे।

आसनोंका क्रमबद्ध अभ्यास

उपर्युक्त स्थितियोंपर विचार करने के पश्चात् मैंने निश्चित किया कि आम जनता को भलीभाति विश्वास और उसके मनका समुचित समाधान होना तभी सम्भव है, जब मैं स्वय योगाभ्यास कर के जनसाधारण का श्रद्धाभाजन बनू। वैसे तो पाठकगण अवश्य ही समझ जायेंगे कि जो आश्रम गत २५ वर्षों से जनता के बीच कार्यरत है, उससे अबतक बहुसख्यक लोगों ने लाभ उठाया होगा। जनता की उपर्युक्त धारणा उचित ही है। निस्सन्देह श्रीरामतीर्थ-योगाश्रम में सीखनेवाले सहस्रों स्त्री-पुरुष हैं और वे उत्तम विधिसे योगाभ्यास कर अपने जीवनको कृतार्थ बना रहे हैं।

परन्तु मैं स्वयं भी प्रत्यक्ष रूपमें प्रतिदिन योगाभ्यास करता हूँ और व्याख्यान तथा साहित्य के प्रकाशन-प्रचार के द्वारा जनता को भी समझाता रहता हूँ। जनता को इसका विश्वास दिलानेके लिये इस ग्रन्थ के सभी आसन-चित्र मेरे ही दिये गये हैं।

इस ग्रन्थमें आसनोंको तीन भागोंमें विभाजित किया गया है:—(१) **अल्प श्रमसाध्य**। यह ऐसे आसन हैं, जिनके साधन में शरीरके अंग-प्रत्यगों को बहुत कम कष्ट और श्रम उठाना पडता है। यह आसन उन स्त्री-पुरुषोंके लिये है, जिन्होंने कभी योगाभ्यास नहीं किया। ऐसे लोग अभ्यासके आरम्भ में सरलतासे इन आसनोंको कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त जो लोग योगाभ्यास और उसके लाभोंके सम्बन्धमें सशंकित हैं, वे भी सरलता और उत्साह के साथ अल्पश्रमसाध्य (सरल) आसनोंका अभ्यास कर यथोचित लाभ उठा सकेंगे। इन अल्पश्रमसाध्य आसनों का समुचित अभ्यास हो जानेके पश्चात्—(२) **श्रमसाध्य (कुछ कठिन)** आसन भी साधकोंको सरल हो जायेंगे और वे आनन्दके साथ उनका अभ्यास करने लगेंगे। तदुपरान्त प्रयत्नपूर्वक (३) **विशेष श्रमसाध्य—(अति कठिन)** आसनों का अभ्यास करे।

क्या योगाभ्यास व्यसन है?

बहुतेरे भाई-बहन हमसे पूछते हैं कि योगाभ्यास सीख लेने के पश्चात् उसको छोड देने से शरीर के अशक्त और रोगी हो जानेकी आशंका है, तो योगाभ्यास भी एक प्रकारका व्यसन ही जान पडता है। ऐसी दशामें योगाभ्यास क्यों किया जाये।

इसका समाधानात्मक उत्तर यही है कि पेशाब करना, मल विसर्जन करना, भोजन करना, निद्रा लेना, जल पीना आदि शरीर–निर्वाहके सभी कार्य एक प्रकारके व्यसन ही है। परन्तु हम उन्हें व्यसन नहीं कहते। यह सब कार्य यथासमय करने के लिये हम अनिवार्य रूपसे बाध्य है। अस्तु, योगाभ्यासको व्यसन मानना अनुचित है, बल्कि शारीरिक और मानसिक शान्ति तथा आत्मकल्याण के लिये योगाभ्यास जीवनका एक अनिवार्य अंग है–कर्तव्य है। २४ घण्टोंमें कमसे कम आध घण्टा योगसाधनमें व्यतीत करना कोई बड़ी बात नहीं है। वैसे देखा जाये तो भोग-विलास मौज–शौक और अधोगतिके गर्तमें धकेल देनेवाले अनेक व्यसन–जैसे तपकीर सूंघना, गांजा–भांग, मद्य, बीड़ी–सिगरेट–तम्बाकू आदि–अल्प या अधिक परिमाण में अधिकांश लोगोंके पीछे लगे हुए हैं। अपवादरूपमे शायद ही कोई स्त्री–पुरुष इन व्यसनोंमें न पड़ा होगा। परन्तु बम्बई आदि नगरोंके ९५ प्रतिशत निवासी अवश्य ही ऐसे होंगे, जो चाय–काफी आदि दुर्व्यसनोंके जटिल जालमें इच्छा या अनिच्छापूर्वक फँसे हुए हैं। यह सभी व्यसन तन–मन–धन को हानि पहुँचाते हैं, परन्तु योगाभ्यासका व्यसन–यदि वह सचमुच व्यसन है–परमोत्तम और लाभकर भी है। यदि कोई योगसाधनको व्यसन मानता हो तो भी इससे किसी प्रकारकी हानि की आशका नहीं; क्योंकि निन्द्य दुर्व्यसनोंकी तुलनामें योगाभ्यास का सद्व्यसन सर्वश्रेष्ठ फलदायक है। लज्जा–शर्म के कारण, समय और स्थान के अभावके कारण, अधिक आयु और ऋतुके कारण अथवा इसी प्रकारके अन्य कारणोंका बहाना लेकर यदि आप योगाभ्यास के परमोत्कर्षकारी आशीर्वादोंसे वंचित रहेंगे तो आपका बहुमूल्य शरीर विविध रोगोंका अपना निजी घर बन जायेगा, मन चिन्ता, भय, क्रोध आदि व्याधियोंसे घिरा रहेगा और आप जगत्‌जीवनके वास्तविक सुखसे सर्वथा वंचित रहेंगे। केवल यथाशक्ति धन–ऐश्वर्य अर्जित करते रहना जीवनका मुख्य उद्देश्य नहीं है। यदि शरीर रोगी और विकारमय है तो अत्यन्त कष्ट से कमाया हुआ यह धन वैद्य–डाक्टरों की दवा, ज्योतिषी, तंत्र–मन्त्र तथा भूत–पिशाचों के निवारण–प्रयोगों में व्यय होगा। क्या धन का इस प्रकार का अपव्यय किसी को अभीष्ट होगा? सर्वसाधारण जनता को इस प्रश्नपर ठण्डे दिलसे गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये।

औषधियों से यथासम्भव बचें

सर्वसाधारण रूप से यह देखा जाता है कि शरीर में रोगों की अभिवृद्धि होने के पश्चात् रोग–मुक्त होने के लिये अनेक प्रकार के अप्राकृतिक उपायों (अवाञ्छनीय उपचारों)

का आधार लेना पडता है। इससे रोग शरीरसे बाहर नहीं जाते हैं; बल्कि कुछ दिनों, महीनों अथवा वर्षोंके लिये दब जाते हैं और वही दबे हुए रोग कोई अन्य उग्र स्वरूप धारण कर जब प्रकट होते हैं; तब उनका नाम बदल जाता है। अन्तमें जीवनसे हताश होनेकी स्थिति आ पहुंचती है। ऐसी दशामें उचित यह है कि शरीरमें किसी प्रकारका रोग उत्पन्न होनेपर योगाभ्यास या प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा उसे शरीरसे बाहर निकालनेका प्रयोग-परीक्षण किया जाये। इस प्रयोगकी सफलता अनिवार्य है और कदाचित् असफल हो जाये या साधककी त्रुटिसे उचित लाभ न मिले; तो भी इससे हानि की आशंका तो की ही नहीं जा सकती। योगाभ्यास हमारा नित्य-कर्तव्य होना चाहिये।

दवाओंसे रोगकी जड़ नहीं जाती

किसीके पास कितनी ही बड़ी सत्ता क्यों न हो; समाजमें बड़े से बड़ा सम्मान और प्रतिष्ठा हो, डिग्रियों (उपाधियों) से कोई कितना ही उच्च माना जाता हो; सौन्दर्य, सुख, गाडी, वाड़ी आदि अनेक प्रकारके ऐश्वर्य भले ही किसी के चरणोंपर लोटते हों; किन्तु यदि प्राकृतिक जीवन-धारण की वास्तविक विद्या (कला) से आप अनभिज्ञ हैं तो उसके लाभ आपको कैसे मिल सकेंगे? बल्कि उपरिनिर्दिष्ट दवाओं और मलिन विद्याओंके प्रयोगसे सामाजिक स्वास्थ्यदानका ठेका ले रखनेवाले विभिन्न वर्गों के लोग आपकी कमजोरियोंसे अनुचित लाभ उठाये बिना कैसे रह सकते हैं! इस प्रकार विशाल मात्रामें तन-मन-धन-सर्वस्व अर्पण कर देनेके पश्चात् आपका रोग कुछ दिनोंके लिये दब भी सकता है और आप ऐसा अनुभव कर सकते हैं कि रोगकी जड़ पूर्णतया कट गई। किन्तु वस्तुतः ऐसा होता नहीं। रोगके मूल कारण शरीरमें विद्यमान रहते हैं और अवसर पाकर वे पूर्वरूपमें अथवा अन्य किसी रूपमें उभर कर आप को चिन्ता, भय और आपत्तियोंमें डाल देंगे। आप पूर्ववत् रोगी बनकर डाक्टरों और केमिस्टों की दूकानोंपर भटकने लगेंगे।

योगाभ्यासका वरदान

अतः मेरे आत्मस्वरूप परमादरणीय भाइयो ! माताओ ! और बहनो ! मैं आपसे हार्दिक विनम्र अनुरोध करता हूँ कि अब आप इस सम्बन्धमें किसी प्रकारके बहाने और कारणको आगे न करें; प्रत्युत् ऐसे बाधक कारण यदि सचमुच हों, तो भी उनकी उपेक्षा कर–उन्हें अपने अनुकूल बना कर तुरन्त ही आजसे–अभीसे प्रेमपूर्वक योगाभ्यासका अवश्यमेव शुभ–समारम्भ कर दे, **शुभस्य शीघ्रम्**। कुछ ही समय के पश्चात् आपको इस साधन के अत्यन्त चमत्कारपूर्ण लाभोंका स्वयमेव अनुभव होगा, खोई हुई शक्तिका आपके शरीर और मनमें पुनः सचार होगा, आपका शुष्क मन एव शरीर नवयौवनकी सरस हरियालीसे लहलहा उठेगा। जीवनमें नई शक्ति, नया सामर्थ्य, नवीन स्फूर्ति और नवीन तेज–ओजका आविर्भाव होगा और आपका निराशामय विकल अस्त-व्यस्त जीवन नवीन आशाओंसे पुलकित और प्रसन्न हो उठेगा; जीवनमें एक सुव्यवस्था स्थापित होगी। मेरे अनुरोधको स्वीकार कर यदि आप अपने जीवनमें इस प्रकारका शुभ परिवर्तन सघटित करेंगे, तो मुझे दृढ़ विश्वास है कि आप पतझडके बाद जीवनमें समागत वसन्त की बहारको देखकर आनन्द–विमुग्ध हो उठेंगे। यदि आपको पुत्र–सन्तान नहीं है तो योगसाधनके प्रसादसे आपका गृह–प्रांगण पुत्र–सन्तानके कलरवसे मुखरित और उल्लसित हो उठेगा। यदि पुत्र–सन्तानकी इच्छा नहीं है तो योगबलसे ब्रह्मचर्यका साधन तो होगा ही, सन्तति–निरोध भी अनायास हो जायेगा। आपकी वर्तमान स्थिति कैसी भी क्यों न हो, परन्तु योग–साधन का श्रीगणेश करने के पश्चात् आप उत्तरोत्तर उच्च स्थिति (शरीरमें सामर्थ्य और आरोग्य का सचार, मनमें शान्ति, ऐश्वर्य, और दैवी गुणोंका उत्कर्ष) में प्रवेश करेंगे। योगाभ्यास में गुप्त, अचिन्त्य एव अगाध शक्ति भरी हुई है, इस बात को हमेशा स्मरण रखियेगा।

रोगी होनेके दुष्परिणाम

आप अन्य लोगोंसे अपनी सेवा कराने की इच्छा कभी न रखें, बल्कि आपके हृदयमें यह इच्छा निरन्तर रहनी चाहिये कि दूसरोंकी सेवा मैं किस प्रकार कर सकता हूँ। इसका अर्थ यह है कि इच्छा न होनेपर भी आप यदि एकाएक किसी रोग की चपेटमें आ जायेंगे तो आपको स्वय तो शारीरिक और मानसिक कष्ट उठाना ही पडेगा, विवश

होकर अपने उद्योग-धन्धे और नौकरीसे भी अलग रहना पड़ेगा। माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री, इष्टमित्र और अन्य सुहृद्-सम्बन्धी जनों को आपकी सेवामें दिन-रात लगे रहना पडेगा। फलतः आपका जीवन क्लेशमय और क्षतिग्रस्त तो होगा ही; साथ ही शुभचिन्तक सम्बन्धि जन भी हैरान-परेशान होंगे। ऐसे लोग कुछ दिनतक भले ही स्नेहके नाते सहानुभूतिपूर्वक सेवा-सुश्रूषा करते रहेंगे, किन्तु तदनन्तर वे स्वभावतः उकता जायेंगे; घबरा उठेंगे। वे मुंहसे भले ही कुछ न कहेंगे; किन्तु मनमें अवश्य ही विचार करेंगे कि अभी और कितने दिनोंतक इस प्रकार की परेशानी उठानी पड़ेगी; अर्थात् शनैः-शनैः उनका मन ग्लानि और अशान्तिसे भरता जायेगा, जिसके फलस्वरूप अन्ततः अस्पताल की शरण लेनी पडेगी। इससे स्पष्ट है कि रोगी होना कितना बड़ा सामाजिक अपराध है।

योगाभ्यास की व्याप्ति

योगाभ्यास का प्रसार और प्रचार योगाश्रमोतक ही सीमित न रहना चाहिये; बल्कि इसका व्यापक प्रचार-प्रसार होना चाहिये; अर्थात् मठ-मन्दिरों, धर्मस्थानों (हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिख, मुसलमान, क्रिश्चियन यहूदी आदि विभिन्न धर्मावलम्बियों के धर्मस्थानों) में, स्कूल, हाई स्कूल और कालेजों में, समाजसेवा-कार्यों के स्थानों में, कहां तक गिनायें-अनाथालयों से लेकर राजमहलों तक में योगाभ्यास का प्रचार होना चाहिये। इस सम्बन्ध में सकुचित दृष्टिकोण नहीं रखना चाहिये। विश्वशान्ति और मानवमात्र की शान्ति के लिये योगाभ्यास अन्य अनेक अगों में एक अत्यावश्यक और अनिवार्य अग है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

धनका सदुपयोग

आम जनता से एक विनम्र और अत्यन्त वाञ्छनीय निवेदन है। वह यह कि वर्तमान काल में लोगोंकी यह बलवती प्रवृत्ति पाई जाती है कि सर्वत्र हमारी प्रतिष्ठा बढे, प्रशसा प्राप्त हो; अर्जित धनका सदुपयोग हो। दीन-दुखी लोगोंका कल्याण हो। इसी दृष्टिकोणको सामने रखकर दानवीर धनी-मानीवर्ग सिनेमा-नाटक के लिये, बृहत् सभा-भवनका निर्माण करने के लिये, अस्पताल, औषधालय और स्वास्थ्यगृह (सिनेटोरियम) के लिये, अन्नक्षेत्र, धर्मशाला, स्टेडियम, मठ-मन्दिर और तीर्थस्थानोके निर्माण और कार्य-सचालन के लिये धन-धान्य, जमीन-जायदाद, घर-बाड़ी, गाय-

भैंस, वस्त्रादि एक अथवा अनेक साधनोंसे सहायता पहुँचाकर अपना कर्तव्य पूरा करता है। किन्तु सिनेमाघर, अस्पताल, स्टेडियम आदिकी क्या आवश्यकता है ? क्योंकि सिनेमासे हलके प्रकारके संस्कार उत्पन्न होकर जीवनके विकृत हो जाने की सम्भावना अधिक रहती है। वर्तमान नागरिक जीवनमें जो अनेक निन्दनीय और धनके अपव्ययके कारण हैं, उनमें सिनेमा भी एक कारण है।

देशी-विदेशी खेल और योगाभ्यास

इसके अतिरिक्त वर्तमान समयमें देशमें प्रचलित विदेशी खेलों-जैसे कि टेनिस, क्रिकेट, बेडमिंटन, बिलीयार्ड, हाकी आदि—के साधनोंको एकत्र करनेमें विशेष धन-व्यय, विशाल स्थान, बहुतेरे मनुष्योंके सहयोग और बृहत् प्रबन्ध की आवश्यकता है। वैसे तो अनेक देशी खेल-जैसे कि अश्वारोहण, तैरना, साइकलकी सवारी, कुश्ती सिंगलबार, डबलबार आदि) भी उपयोगी हैं, किन्तु इनके उपयोग के लिये अन्य साथियों और विशेष व्ययसाध्य साधनोंकी आवश्यकता पड़ती है। देशी वा विदेशी खेलोंका मैं विरोध नहीं कर रहा हूं। यदि अनुकूल हों तो इन्हें भी सीख लेना चाहिये। किन्तु यह खेल दूसरोंको साथ लिये बिना नहीं खेले जा सकते और लाभ, स्थान तथा समय भी सबके लिये अनुकूल नहीं होता; ऐसे ही अन्य अनेकों कारणोंसे इन खेलोंको अन्ततः छोड़ ही देना पडता है। परन्तु योगासनों की साधना के लिये न तो किसी साधन-सामग्रीकी आवश्यकता है और न विशाल स्थान अथवा धनादि की ही सुविधा चाहिये। केवल कुछ दिनोंतक योगाभ्यास के तज्ञ (जानकार) का कुछ सहयोग लेना पडता है। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त सभी खेल रजोगुण और तमोगुणके जन्मदाता हैं, किन्तु योगाभ्यास शुद्ध सात्विक गुणोंका उत्पादन और सवर्धन करता है। इससे शरीर में रहा-सहा रोग भाग खडा होता है और शरीर में पुनः किसी रोग का प्रवेश हो नहीं पाता। योगाभ्यास आयुको बढ़ाता है और शरीर के छोटे-बडे सभी अवयवों को लचीला और कसीला बना देता है। शारीरिक इन्द्रिया सतेज और सशक्त बनती हैं। किन्तु अन्य व्यायामों में यह गुण नहीं पाया जाता और पाया भी जाता है तो अल्पपरिमाणमें। ये भारी और अतिशय कष्टसाध्य व्यायाम शरीरके अवयवों को अधिक कठोर बना देते हैं और समय से पहले ही वृद्धावस्था आ धमकती है। कभी-कभी मल्लयुद्ध या कुश्ती के समय, अश्वारोहण (घुड़सवारी) के समय, क्रिकेट आदि विविध खेलों के समय शरीर के किसी एक अवयव अथवा कई अवयवों को भारी चोट

लग जाती है, फलतः पर्याप्त कष्ट उठाना पड़ता है और कभी–कभी तो ऐसी साघातिक चोट लग जाती है कि उसके प्रभावसे समस्त जीवन ही पराधीन, दुखी और दुर्भर हो जाता है।

योगाश्रमोंका महत्त्व

इन सब बातोंपर विचार करते हुए दानदाताओंका कर्तव्य है कि वह सुयोग्य सचालकों की देखरेखमें चलनेवाले और जनताको समुचित सेवायें प्रदान करनेवाले योगाश्रमोंको ही अपना सहयोग यथाशक्ति प्रदान करें। योगाश्रमोंका महत्त्व अस्पतालोंसे भी अधिक है। क्योंकि आरोग्यके वास्तविक नियमोंसे अपरिचित होनेके कारण ही लोग रोग–विकारोंमें फॅस जाते हैं। औषधालयों एव अस्पतालोंमें जाकर इजेक्शनो तथा औषधियोंसे रोग–मुक्त बनने के प्रयास करते हैं, किन्तु इस प्रकारके प्रयास प्रायः निराशा मूलक ही होते हैं। अपवादरूप से एकबार रोगमुक्त हो जानेपर भी इस बातकी कोई गारण्टी नहीं—कोई प्रमाण नहीं कि रोग फिरसे उभर न आयेगा। इसका फल यह होता है कि कुछ अपवादोंको छोडकर सर्वसाधारण स्त्री–पुरुषोंको जीवन भर औषधियों और इजेक्शनों की परतन्त्रतामें जकडे रहना पडता है। श्रीरामतीर्थ–योगाश्रम में रोगनिवारणके लिये आनेवाले मधुप्रमेह, दमा, क्षय आदि अनेक साध्य और असाध्य रोगी स्त्री–पुरुषोंको मैंने प्रत्यक्ष रूपसे देखा है कि वे अपनी जेब में प्रतिदिन अथवा तीसरे दिन लेनेके लिये इजेक्शन रखे हुए हैं। इन सब स्थितियोंपर विचार करने के पश्चात् अन्तिम रूपसे इसी निष्कर्षपर पहुंचना पडता है और पहुचना चाहिये भी, कि शरीर के रोगाक्रान्त होनेसे पहले ही किसी प्रतिष्ठित योगाश्रम अथवा अन्य प्राकृतिक चिकित्सालयमें जनताको व्यावहारिक आरोग्य–शिक्षा (अभ्यास, नियम, भोजनका विधिविधान आदि) यथोचित रूपसे ग्रहण करनी चाहिये। क्योंकि जबतक हम योगाभ्यासकी ओर प्रवृत्त नही होंगे और प्राकृतिक जीवन द्वारा अपने तन–मनको स्वस्थ और आनन्दित नहीं बनायेंगे; तबतक विशाल धन–भण्डार, विपुल विद्या–वैभव, सुरम्य निवासस्थान, अपरिमित साधन, अनुभव, कला, समृद्ध साहित्य–प्रचार, शिक्षा–प्रसार आदि जीवनको सुखी और यशस्वी बनानेवाली विभूतियोंका आपके हाथसे किसी प्रकारका सदुपयोग हो न सकेगा, अतः मेरा अन्तिम विनम्र आर हार्दिक अनुरोध यही है कि धन-सम्पत्तिसे सम्पन्न लोग उदार हाथोंसे पवित्र प्रेमपूर्वक दान दें, सभी क्षेत्रोंके विद्वान् महानुभाव अपनी विद्वत्ता के प्रभाव का आदान–

प्रदान करें; अर्थात् संसारके कल्याण के लिये निःस्पृह भावसे अपने दिव्य ज्ञानकी पवित्र धारा सर्वत्र प्रवाहित करें। जिन लोगों के पास न अधिक धन है और न अधिक बुद्धि-प्रतिभा है; वे लोग तन और मनसे निर्विकार भावसे समाज-सेवा कर अपने को कृतकृत्य करें। ऐसा करनेसे मैं समझता हूं कि कुछ वर्षोंमें भारतवर्ष शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक शान्तिसे उद्दीप्त हो उठेगा और धन-धान्य और विद्या-ज्ञान से समृद्ध होकर स्वयं भी आत्मकल्याण के पथपर अग्रसर होगा और अन्य को भी इस आदर्श पथ का पथिक बनाकर "एक पंथ दो काज सिद्धि" की कहावतको चरितार्थ कर दिखायेगा। परम प्रभु हमारी इस महती उत्कण्ठा और सदाशाको सफल बनायें।

समयका सदुपयोग

मानवका स्वभाव और उसकी भावना कितनी विचित्र है! जब तक कोई रोग-विकार उसके शरीर में नहीं रहता; तबतक उसे यथासमय भोजनादि आवश्यक कार्योंका अवकाश नहीं रहता, सत्सग आदिके लिये वह समय निकाल नहीं पाता, आध्यात्मिक ग्रन्थों और योगाभ्यास-सम्बन्धी जीवनोद्धार करनेवाले और आरोग्यप्रदायक समृद्ध साहित्य पढनेकी ओर उसकी बिलकुल प्रवृत्ति नहीं होती, आठ घण्टेकी शान्त निद्रा लेने के लिये समय नहीं है। कुछ भाई-बहनोंको तो मल-मूत्र-त्यागके लिये भी समायाभाव रहता है। ऐसी दशा में योगाभ्यास की बातें करने का अवकाश ही कहा है? वास्तविक स्थिति यह है कि आज का मानव भौतिक सुख-साधनों के अर्जन में अहर्निश व्यस्त है; ऐसी दशा में उसके समक्ष समय का प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक है। किन्तु जब कोई रोग उत्पन्न होकर उग्र रूप धारण कर लेता है, तब डाक्टरी औषधालयों में बैठे रहने के लिये दो-दो घण्टे का समय मिल जाता है। इतना ही नहीं, घरमें भी महीनों शय्याशायी रहने या अस्पतालों की खाटों में लेटे रहने का भी अवकाश निकालना पडता है। इस के प्राय: दुष्परिणाम भी प्रकट होते है-कभी नौकरी से हाथ धो बैठना पड़ता है और कभी व्यापार-धन्धे मे हानि होकर वह हाथ से निकल जाता है। इन सब अनिष्टमूलक विघ्न-बाधाओंसे सुदूर और सुरक्षित रह कर यदि आप सुखी शान्त जीवन प्राप्त करने की महत्त्वाकाक्षा रखते है तो **'शुभस्य शीघ्रम्'**—प्रकृतिके इस आदेशका पालन करने के लिये आजसे-अभीसे योगाभ्यासका श्रीगणेश कर दें और प्रतिदिन कमसे कम आध घण्टेका समय (यथासम्भव प्रातःकाल; बाध्यतः सायकाल) योगाभ्यासके लिये निकालें।

यह साधना आप अपने घरमें भी कर सकते हैं और किसी योगाश्रम के पवित्र वातावरणमें भी कर सकते है। भोजन के तीन घण्टे के पश्चात् आसनोंका अभ्यास किया जा सकता है और आसनाभ्यासके २० मिनटके पश्चात् भोजन करनेमें कोई हानि नहीं।

'**उमेश–योगदर्शन**' ग्रंथका यह प्रथम खण्ड है। द्वितीय खण्डमे यथासम्भव चित्रोंके साथ प्राणायाम, मुद्रा, कुण्डलिनी शक्तिको जाग्रत करने की विधि और उसके लाभ, सयम (धारणा, ध्यान और समाधि) आदि अनेक महत्त्वपूर्ण और मानव-कल्याणके लिये आवश्यक विषयोंपर '**उमेश–योगदर्शन**' के इस द्वितीय खण्डका निर्माण किया जायेगा

अन्तमें आप सबसे मेरा यही विनम्र अनुरोध है कि आप लेखक हों; व्याख्याता हों, पण्डित हों; वेदान्ती हों, भक्तियोगमें प्रवीण हों, तन्त्र–मन्त्रके प्रयोक्ता हों, ज्योतिषी हों, कर्मयोगी हों, राजा–महाराजा या रानी–महारानी हों; मठके महन्त हों; अथवा मन्दिरके यजमान और पुजारी हो; गायिका हों अथवा गायक, डाक्टर हों, वैद्य हों अथवा हकीम हों; ध्यानयोगी हों अथवा साख्ययोगी, बौद्ध–धर्मावलम्बी हों अथवा जैन–धर्मावलम्बी, देवीके उपासक हों अथवा जगत्के किसी भी धर्मके पालक हों अथवा सचालक हों, किसी भी देशके वासी अथवा किसी भी भाषाके भाषी हों, व्यवहार में कुशल हों, परमार्थ में पारगत हों, स्त्री हों, पुरुष हों—आप कोई भी हों, कोई चिन्ता नहीं, परन्तु यदि आप वर्तमान काल मे योगाभ्यास कर रहे हों तो उसे निरन्तर जारी रखें और जिन सज्जनोंने अभीतक इस दिशा में उपेक्षा दिखाई है, वे अविलम्ब योगाभ्यासका श्रीगणेश कर दें और इसकी अमृत–वर्षा का जीवन–रस–पान कर उल्लसित हों, धन्य हों।

—×—

उमेश-योगदर्शन

—प्रथम खण्ड—

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।'

अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण शरीरके सयोगसे ही पारस्परिक व्यवहार और परमार्थ का साधन सम्भव है। इस शरीरको सशक्त, नीरोग और सर्वांग सुन्दर बनाये रखने के लिये पातंजल-योगदर्शन ग्रन्थमें अत्युत्तम और उपयोगी साधन बताये गये है। पातंजल योगदर्शन के साधनपादमें अष्टांग योगका विधान किया गया है। इस योगके आठ अग इस प्रकार हैं:—

'यम-नियमासन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयोऽष्टावङ्गानि।'

योगदर्शन, साधनपाद, सूत्र २९

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये योगके आठ अग हैं। इस साधनको लोग हठयोग अथवा अष्टांग योग कहते हैं।

आवश्यक निवेदन—शंका-समाधान

हमारे देश-भारतवर्ष के अधिकांश लोग यह मान बैठे हैं कि हठयोगकी साधना केवल उन्हीं लोगों के लिये है, जो त्यागी, विरागी, बाबा, ब्रह्मचारी और सन्यासी हैं तथा जो संसार को त्याग कर गुफाओं, जगलों और तीर्थस्थानोंमें निवास करते हैं और सासारिक कर्तव्यपालनसे विरत है, किन्तु यह धारणा नितान्त भ्रान्त है। कदाचित् कुछ साधु-सन्तों और पेटपूजक स्वार्थी मानवोंने सर्वसाधारण

जनताको योगके कल्याणकारी मार्ग से अलिप्त रखनेके लिये विचित्र ढंगसे ही इसका प्रचार किया होगा—आज भी वे ऐसा कर रहे होंगे। शारीरिक और बौद्धिक—दोनों प्रकारसे जनता को योगके लाभोंसे वञ्चित रखनेके लिये ही सम्भवतः उन्होंने यह भय उत्पन्न किया है।

कुछ मिथ्या प्रदर्शन

आजकल योगके ढोंगी प्रचारक आम जनताको शकाशील बनाये रखनेके लिये और योगाभ्यास के लाभोंसे वञ्चित रखनेके लिये योगके विचित्र प्रयोगोंका प्रदर्शन करते रहते हैं। उदाहरणार्थ, गेरुआ रगके जलमे 'वस्त्रधौति' को भिगोकर खा जाते हैं और उसके अग्रभागको मुहके अन्दर दबाये रखते हैं। ('वस्त्रधौति' का विशेष विवरण मलशोधन—क्रिया के अन्तर्गत 'धौतिकर्म' में पढ़िये।) प्रयोगकालमें आमजनता के सामने आकर वे उस 'धौति' को मुहसे बाहर निकालकर और जलमें धोकर पुनः निगल जाते हैं। तदुपरान्त वे जनता को समझाते हैं कि मैं अपनी इन आंतों को बाहर निकालकर धोने के पश्चात् पुनः पेटमें यथास्थान लगा लेता हूँ—फिट कर लेता हू। हमारे देश के अधिकांश और अन्धविश्वासी भोलेभाले लोग इस बात को सत्य मान बैठते हैं। किन्तु वस्तुतः ऐसा होता नहीं—हो ही नहीं सकता। शरीर—रचना की दृष्टिसे यह कार्य प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है। यह तो केवल जनता को अन्धकार में रखकर उसे धोखे में डालना है। इसका फल यह होता है कि हमारे देश के जनसाधारण योगसाधन के कार्य को असम्भव और विशेष कर दैवी शक्तिसम्पन्न मानवोंका कार्य मान बैठते हैं और योग—साधन की ओर उनकी प्रवृत्ति नहीं होती। वे उससे दूर भागते हैं। हमारे देश में एक समय वह था, जब कि योगाभ्यास सरल रीतिसे होता था और घर—घरमें सभी स्त्री—पुरुष आनन्द और रुचिके साथ यह दिव्य योग—साधना करते थे तथा आरोग्यमय शरीर, शान्तिपूर्ण मानस और आत्मकल्याण से पुरस्कृत होकर अपने जीवन को सुखमय बनाये रखते थे।

हठयोग क्या है?

हठयोग का अर्थ है 'ह' अर्थात् सूर्यनाड़ी और 'ठ' अर्थात् चन्द्रनाड़ी। सूर्य-नाड़ीसे उष्णता प्राप्त होती है और चन्द्रनाड़ीसे शीतलता। प्राणायाम के द्वारा सूर्य और चद्र नाडीके आधारपर आसन, प्राणायाम, मुद्रा आदि का अभ्यास किया जाता है। इसी का नाम हठयोग है। किन्तु हठपूर्वक दुराग्रहसे शारीरिक अवयवों को कष्टसाध्य

साधना द्वारा जो योगाभ्यास किया जाता है, उसे हठयोग मानना गलत है। ब्रह्मचारी, गृहस्थाश्रमी (संसारी), वानप्रस्थी एवं सन्यास आश्रमवाले तथा हिन्दु, जैन, बौद्ध, सिख, मुसलमान, क्रिश्चियन आदि सभी धर्मावलम्बी स्त्री-पुरुष योगाभ्यासके सम्पूर्ण अधिकारी हैं। दुर्व्यसन, दुराचार और भोगविलासमें फँसे हुए लोग भी यदि सुयोग्य विशेषज्ञ की देखरेखमें योगाभ्यास करें तो धीरे-धीरे उनके जीवनमें नया परिवर्तन आयेगा और एक दिन वे दुर्व्यसनादि व्याधियोंसे पूरी तरहसे छुटकारा पा जायेंगे। उनका जीवन स्वर्णमय बन जायेगा।

वचनामृत

बाल्यावस्था अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और ग्रहणशील अवस्था होती है। इस अवस्थामें अच्छे-बुरे जो भी सस्कार मानवके साथ लग जाते हैं, वे जीवनके अन्तिम समयतक जमे रहते हैं, उनसे मुक्ति मिलना सहजसाध्य नहीं। अतः बाल्यावस्थामें उत्तमोत्तम संस्कारोंसे जीवनको सुसस्कृत बनाने के प्रयास करने चाहिये। समस्त जीवन का आधार बाल्यावस्थाके शुभाशुभ संस्कारोंपर निर्भर करता है।

वचनामृत

पेड़, और गाय, बैल, भैंस आदि पशुओंका समग्र जीवन परोपकारमें ही व्यतीत होता है। पेड़ स्वय फल नहीं खातें, बल्कि अन्य प्राणी ही उन्हें ग्रहण करते है। इसी प्रकार गाय-बैल भी दूध, श्रमदान आदिसे इतर प्राणियों को ही लाभ पहुंचाते है। इतना ही नहीं पशुओं का चर्म, अस्थि भी उनकी मृत्युके पश्चात् काम आते हैं; किन्तु मानव-शरीर मृत्युके पश्चात् किसी काममें नहीं आता। अतः मानवको अपनी उपयोगिता सिद्ध करनेके लिये इसी जीवनमें दया, दान, सेवा, परोपकार आदि अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य करने चाहिये।

———

यमका निरूपण

अहिंसा-सत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रहा—यमाः।

—योगदर्शन, साधनपाद, सूत्र ३०

अष्टाग योगका प्रथम अंग यम है। यमके ५ प्रकार हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं क्षमा धृतिः।
दयार्जवं मिताहारः शौचं चैव यमा दश ॥ १ ॥

—याज्ञवल्क्य-संहिता

अर्थः— १ अहिंसा, २ सत्य, ३ अस्तेय, ४ ब्रह्मचर्य, ५ क्षमा, ६ धृति, ७ दया, ८ आर्जव, ९ मिताहार, १० शौच—यह यमके दस प्रकार हैं। पाठकोंकी जिज्ञासा-तृप्तिके लिये ही यहां याज्ञवल्क्य-संहिता का उल्लेख किया गया है; किन्तु मेरे मतानुसार 'पातजल योगदर्शन' का वर्णन विश्वसनीय है।

अहिंसा

कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा।
अक्लेशजननं प्रोक्तमहिंसात्वेन योगिभिः ॥ १ ॥

अहिंसाः—मन, वचन, कर्मसे दैनिक जीवनमें यथासाध्य हिंसासे विरत रहकर अहिंसाका आचरण करना जीवनमें अहिंसाको उतारना-अहिंसा कहलाती है।

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः।

—पातंजल योगदर्शन, साधनपाद, सूत्र-३५

सत्य

सत्यं भूतहितं प्रोक्तं नायथार्थाभिभाषणम् ॥

—या. स.

सत्य—मन-वचन-कर्म से यथाशक्ति सत्यका पालन करना और असत्यसे मुक्त रहना-इसीका नाम सत्य है।

अस्तेय

कर्मणा मनसा वाचा परद्रव्येषु निःस्पृहः ।
अस्तेयमिति संप्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।। १ ।।

अर्थात् चोरीसे मुक्त रहना। दूसरेके घरमें जाकर चोरी करने या डाका डालनेको ही चोरी नहीं कहा जाता; अपितु हमारे घर में जो वस्तुयें हैं, जो साधन-सामग्री और सम्पत्ति है, वह भगवान् की देन है; भगवान् का प्रसाद है; ऐसा समझकर जितना आवश्यक है, उतने का ही उपयोग अपने लिये करे और शेष सम्पत्तिको अधिकारी और सुपात्र को दान कर दे अर्थात् उसका दैवी सम्पत्ति के रूपमें विनियोग करे। घर की वस्तुका उपयोग करते समय घर में जो यजमान विद्यमान हों, उनको देवतुल्य समझकर उनकी सम्मति से सम्पत्ति का सदुपयोग करना चाहिये। इसी प्रकार समाज के साथ सम्बन्ध रखने योग्य समय में भी अनुमति लेने योग्य महानुभावों से अनुमति लेकर सम्पत्ति को यथोचित सर्वजनोपयोगी कार्य में लगाना चाहिये। इस प्रकार के शुभ कार्य को योग की भाषा में '**अस्तेय**' कहा जाता है।

अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ।

—पातंजल योगसूत्रम् साधनपाद, सूत्र ३७.

ब्रह्मचर्य

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ॥ १ ॥

—या. सं.

ब्रह्मचर्य :—मनसा-वाचा-कर्मणा यथाशक्ति चतुर्वर्णाश्रमानुसार ब्रह्मचर्य का समुचित रूपसे पालन करना अनिवार्य है। ब्रह्मचर्य के दो अर्थ हैं। इसका व्यावहारिक अर्थ है वीर्यरक्षा करके और उसे ओजसके रूपमें परिवर्तित करके आरोग्य, सशक्त इन्द्रिय एव ओजस्-तेजस् से भरपूर तथा मेधाशक्ति से सम्पन्न होकर १०० वर्षतक जीवन धारण करना। वीर्यके दो मार्ग हैं—उर्ध्व और अधो। उर्ध्वगामी वीर्य होनेसे उपर्युक्त लाभ तो मिलते ही हैं; साथ ही उसका सद्व्यय भी व्यवहार और परमार्थ में किया जा सकता है। गृहस्थाश्रमी जन शास्त्रीय नियमोंके अन्तर्गत उसी वीर्यका यथोचित परिमाणमें उपयोग कर सुदृढ़, सशक्त एव देदीप्यमान सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं। अधोगामी मार्गमें वीर्य का व्यय करनेसे विषयलोलुपता बढ़ जाती है, फलतः बुद्धिमन्दता, मानसिक दुर्बलता, इन्द्रियशिथिलता, अधैर्य, भय, चिन्ता, व्यग्रता,

अशान्ति, क्रोध आदि मनोविकार और प्रतिकूल संयोगोंके उत्पन्न हो जानेकी सम्भावना रहती है, इसलिये वीर्य का दुरुपयोग कभी न करे। इसी का नाम **व्यावहारिक ब्रह्मचर्य** है।

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।

—पातंजल योगदर्शन, साधनपाद, सूत्र ३८

ब्रह्मचर्यका पारमार्थिक अर्थ

जो सर्वत्र व्यापक, समग्र संसारका विधाता, जगन्नियन्ता, खेचर, भूचर, जलचर और चराचरमें व्याप्त है और जो साकार और निराकार रूपमें अवस्थित परब्रह्म है, उसके समीप पहुँचने की तैयारी करने और तदनुसार आचरण करनेका नाम **पारमार्थिक ब्रह्मचर्य** है।

अपरिग्रह

अपरिग्रह स्थैर्ये जन्मकथन्ता संबंधः॥

—पातंजल योगदर्शन, साधनपाद, सूत्र ३९

अपरिग्रह:—अपनी आवश्यकता से अधिक धन और भोग-सामग्रीका संचय न करने को अपरिग्रह कहा जाता है।

नियमका निरूपण

शौच-सन्तोष-तपः-स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि-नियमाः॥

—पातंजल योगदर्शन, साधनपाद, सूत्र ३२

अष्टांग योग के द्वितीय अंगको **नियम** कहते हैं। इस नियम के पांच प्रकार हैं— शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान।

तपः संतोषमास्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम्।
सिद्धांतश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च जपो हुतम्॥

—या. सं.

तप, सतोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वरपूजन, सिद्धांतश्रवण, ह्री, मति, जप और हुत—यह 'नियम' के संहिताके अनुसार १० प्रकार हैं। पाठकोंकी जिज्ञासा—तृप्ति के लिये ही यहां याज्ञवल्क्य—संहिता का उल्लेख किया गया है, किन्तु मेरे मतानुसार 'पातंजल योगदर्शन' का वर्णन अधिकाशमें विश्वसनीय है।

शौच

शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यंतरं तथा।
मृज्जलाभ्यां हि बाह्यं तु मनः शुद्धिस्तथांतरम् ॥ १ ॥

—या. सं.

शौच—शौच स्नान को कहते हैं। स्नान भी दो प्रकार के होते हैं—आन्तरिक और बाह्य। मिट्टी, जल, भस्म आदि से शरीर को स्वच्छ करना बाह्य स्नान कहलाता है। आन्तरिक स्नान दो प्रकार के हैं। इन दो प्रकार में एक प्रकार है नेति, धौति, बस्ति, नौलि, त्राटक, कपालभाति आदि छः प्रकार के मलशोधक कर्मों द्वारा शरीरका शुद्धीकरण करना। अंतःशौचका द्वितीय प्रकार है यथामति और यथाशक्ति षड्वैरियों—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर आदि—से अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहकार) को मुक्त रखना।

सन्तोष

यदृच्छा लाभतो नित्यं मनः पूतः सहेदिति
आर्षीस्तानृषयः प्राहुः संतोषं सुखलक्षणम् ॥ १ ॥

—या. स.

सन्तोष—जिस समय जो भी साधन—सामग्री उपलब्ध हो, उसीमें मनको मना लेना—मनका समाधान कर लेना—**सन्तोष** कहलाता है।

तप

विधीनोक्तेन मार्गेण कृच्छ्र चांद्रायणादिभिः।
शरीरशोषणं प्राहुस्तपसां तपउत्तमम् ॥ १ ॥

—या. सं.

तप—उष्ण—शीत, मानापमान, सुख—दुःख, हानि—लाभ, जय—पराजय आदिको सहिष्णुतापूर्वक समान समझना **तप** कहलाता है।

स्वाध्याय

व्यवहारकुशल बनने, उदरका भरण-पोषण करने और परोपकारके लिये आवश्यक व्यवहार-शास्त्रका पठन-पाठन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त वेद, उपनिषद्, योगवासिष्ठ, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, सत्पुरुषोंके जीवनचारित्र और उपदेशादिका पठन-पाठन और मनन आदि करने को **स्वाध्याय** कहा जाता है।

ईश्वरप्रणिधान

जो कुछ स्थावर-जंगम साधन-सम्पत्ति है, उसे परमात्माको समर्पित कर देने का नाम **ईश्वरप्रणिधान** है।

वचनामृत

संसारमें विविध प्रकारके दुःखों से पीडित स्त्री-पुरुषोंके लिये योगविद्या परम शान्ति और सान्त्वनादायक है। योगविद्याकी सुदृढ़ नौका में बैठकर इस विशाल संसार-सागरके उस पार सरलता से पहुचा जा सकता है। योगविद्या हमें शारीरिक आरोग्य और मानसिक शान्ति प्रदान करती है। योगाभ्यासी मानव जीवन के दैनिक कर्तव्योंके प्रति सम्पूर्ण जिम्मेदार बनता है। वह जिस कार्यको शुरू करता है, उसको अन्ततक पूरा करके ही शान्ति लेता है। योगाभ्यास सचमुच मानव-जीवनके लिये दैवी वरदान है। यह मनुष्यको आत्मपरिष्कार और आत्मबहिष्कार (निःस्पृहता) की ओर प्रवृत्त करता है। योगाभ्यास स्वर्गीय सुखका विधायक है। योगाभ्यासी कभी अकर्मण्य और आलसी नहीं रह सकता। योगाभ्यास अवश्य करें और इसकी दैवी शक्तियोंसे लाभ उठायें।

तप, संतोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वरपूजन, सिद्धांतश्रवण, ह्री, मति, जप और हुत–यह 'नियम' के संहिताके अनुसार १० प्रकार हैं। पाठकोंकी जिज्ञासा–तृप्ति के लिये ही यहां याज्ञवल्क्य–संहिता का उल्लेख किया गया है, किन्तु मेरे मतानुसार 'पातंजल योगदर्शन' का वर्णन अधिकाशमें विश्वसनीय है।

शौच

शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यंतरं तथा।
मृज्जलाभ्यां हि बाह्यं तु मनः शुद्धिस्तथांतरम् ॥ १ ॥

—या. सं.

शौच—शौच स्नान को कहते है। स्नान भी दो प्रकार के होते है–आन्तरिक और बाह्य। मिट्टी, जल, भस्म आदि से शरीर को स्वच्छ करना बाह्य स्नान कहलाता है। आन्तरिक स्नान दो प्रकार के हैं। इन दो प्रकार में एक प्रकार है नेति, धौति, बस्ति, नौलि, त्राटक, कपालभाति आदि छः प्रकार के मलशोधक कर्मों द्वारा शरीरका शुद्धीकरण करना। अंतःशौचका द्वितीय प्रकार है यथामति और यथाशक्ति षड्वैरियों–काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर आदि–से अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहकार) को मुक्त रखना।

सन्तोष

यदृच्छा लाभतो नित्यं मनः पूतः सद्देदिति
आर्धींस्तानृषयः प्राहुः संतोषं सुखलक्षणम् ॥ १ ॥

—या. स.

सन्तोष—जिस समय जो भी साधन–सामग्री उपलब्ध हो, उसीमें मनको मना लेना–मनका समाधान कर लेना–**सन्तोष** कहलाता है।

तप

विधीनोक्तेन मार्गेण कृच्छ्र चांद्रायणादिभिः।
शरीरशोषणं प्राहुस्तपसां तपउत्तमम् ॥ १ ॥

—या. सं.

तप—उष्ण–शीत, मानापमान, सुख–दुःख, हानि–लाभ, जय–पराजय आदिको सहिष्णुतापूर्वक समान समझना **तप** कहलाता है।

स्वाध्याय

व्यवहारकुशल बनने, उदरका भरण-पोषण करने और परोपकारके लिये आवश्यक व्यवहार-शास्त्रका पठन-पाठन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त वेद, उपनिषद्, योगवासिष्ठ, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, सत्पुरुषोंके जीवनचरित्र और उपदेशादिका पठन-पाठन और मनन आदि करने को **स्वाध्याय** कहा जाता है।

ईश्वरप्रणिधान

जो कुछ स्थावर-जंगम साधन-सम्पत्ति है, उसे परमात्माको समर्पित कर देने का नाम **ईश्वरप्रणिधान** है।

वचनामृत

संसारमें विविध प्रकारके दुःखों से पीड़ित स्त्री-पुरुषोंके लिये योगविद्या परम शान्ति और सान्त्वनादायक है। योगविद्याकी सुदृढ नौका में बैठकर इस विशाल संसार-सागरके उस पार सरलता से पहुचा जा सकता है। योगविद्या हमें शारीरिक आरोग्य और मानसिक शान्ति प्रदान करती है। योगाभ्यासी मानव जीवन के दैनिक कर्तव्योंके प्रति सम्पूर्ण जिम्मेदार बनता है। वह जिस कार्यको शुरू करता है, उसको अन्ततक पूरा करके ही शान्ति लेता है। योगाभ्यास सचमुच मानव-जीवनके लिये दैवी वरदान है। यह मनुष्यको आत्मपरिष्कार और आत्मबहिष्कार (निःस्पृहता) की ओर प्रवृत्त करता है। योगाभ्यास स्वर्गीय सुखका विधायक है। योगाभ्यासी कभी अकर्मण्य और आलसी नहीं रह सकता। योगाभ्यास अवश्य करें और इसकी दैवी शक्तियोंसे लाभ उठायें।

मलशोधन कर्म–(षट्कर्म)

धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते ॥ १ ॥

—यो॰ प्र॰

शरीरमें भरे हुए (स्थूल रूप में अस्तित्वमें रहनेवाले) विजातीय द्रव्य अर्थात् मलको शरीरसे दूर करनेके लिये योगविद्यामें छः प्रकारके मलशोधन कर्मोंका विधान किया गया है, जिसे षट्कर्म कहा जाता है। **'एक पन्थ दो काज'** की कहावतके अनुसार मलशोधन कर्म में कमसे कम दो लाभ अवश्यमेव हैं। नेति–कर्मसे नाकके रोग मिट जाते हैं और आंखोंकी ज्योति बढ़ती है। इसी प्रकार धौति–कर्म से गलेके स्वर में सुधर होता है। अन्नाशय–कोश शुद्ध होता है और वात, पित्त तथा कफ का सम परिमाणमें नियन्त्रण होता है। इसी प्रकार अन्य मलशोधन–कर्मों का भी लाभ समझना चाहिये।

अतः इन सुलभ, सशक्त और लाभप्रद क्रियाओंसे वंचित न रहें। इनका अभ्यास कर समुचित लाभ उठायें।

एनिमा, स्टमक–वाश आदि पद्धतियों से डाक्टर सर्वसाधारण जनताको पेट साफ रखनेकी सलाह देते हैं और इसी प्रकार कई रोगोंका निदान करते हैं; किन्तु उपर्युक्त दोनों पद्धतियां हमारे छः प्रकारके मलशोधन–कर्मोंकी ही सुधरी हुई नकल हैं। हमारे देशका आजका सुधरा हुआ (एजुकेटेड वर्ग–वर्तमान सभ्यता के रंगसे ओतप्रोत) वर्ग लज्जा (शर्म), समयाभाव आर कुछ वेदनाका भय आदि कारणोंसे योग–साधनोंसे दूर रहना चाहता है। यह भावना नितान्त भ्रान्तिपूर्ण है। यही कारण है कि आज यही

मलशोधन कर्म

कार्य-कुशलता ही योग है

✶ किसी भी कामको व्यवस्थित और सुचारु रूपसे सम्पादित करनेको योग कहते हैं। जो व्यक्ति दत्तचित्त होकर एकाग्र मनसे किसी कामको पूरा करनेमें तन्मय है और जिसके सभी कार्योंमें एक वेग रहता है, एक सुव्यवस्था रहती है, जिसका प्रत्येक कार्य शुद्ध और स्वच्छ होता हैं; वह निस्सन्देह योगी है। मानव एक कर्मवान्-प्रवृत्तिशील प्राणी है; कर्म-प्रवाह में निरंतर वेग गतिसे बहते रहना मानवका स्वभाव है। इसके अतिरिक्त काम में सुव्यवस्था, सुन्दरता और सफाई भी रहनी चाहिये। कर्म में सुव्यवस्थाका सामंजस्य होनेसे दुग्ध-शर्करा-सम्मेलनका विधान बन जाता है। सुव्यवस्था कर्मको दीप्तिवान्, आकर्षक और प्रभावशाली बना देती है। जिस कर्म में सौन्दर्यका समन्वय नहीं है; वह नीरस और प्रभावहीन होता है। इसीलिये कर्म में वेग (शीघ्रता) सौन्दर्य और सुव्यवस्था (सौष्ठव), शुद्धता [स्वच्छता] आदि का समन्वय अभीष्ट है। योगीमें इन तीनों गुणोंकी स्वभावतः धारणा रहती है। वह कर्म, भक्ति और ज्ञानका त्रिवेणी-सगम बन जाता है। उसमें सत्-चित्-आनंद के प्रत्यक्ष दर्शन होते है। योगी '**योगः कर्मसु कौशलम्**' की यथार्थता चारितार्थ कर दिखाता है।

—योगिराज उमेशचन्द्रजी

सुधरा हुआ कथित सभ्य समुदाय शारीरिक रोग, मानसिक व्याधि और धनके अपव्ययसे पीड़ित है। परन्तु योग-साधन एक ऐसा शक्तिशाली जीवन-विधान है, जो दुर्गतिसे और धनके अपव्ययसे बचाकर निस्सन्देह सन्मार्गपर पहुंचा देता है। भगवान् हम सबको सद्बुद्धि दें, जिससे हम अपने पूर्वजोंकी इस सफल आरोग्य-प्रणालीका समुचित सम्मान कर सकें।

छः प्रकारके मलशोधन-कर्मोंकी रीति, समय और लाभका भलीभांति परिचय कराया गया है और छायाचित्रों के साथ ऐसी सरल पद्धतिसे समझाया गया है कि लोग अपने घरमें ही आसानीके साथ इनका अभ्यास कर सकेंगे। फिर भी, अपवाद रूपसे जिन भाई-बहनों को इस सम्बन्धमें कोई शंका हो, वे जवाब के लिये डाक-व्ययके टिकट भेजकर हमसे अपना समाधान करा सकते हैं।

आप वर्तमान कालमें अवश्य नीरोग होंगे-होना ही चाहिये। परन्तु याद रखिये कि भविष्यमें ऐसी परिस्थितिया भी उत्पन्न हो सकती हैं, जब कि आप शारीरिक और मानसिक रोगों और विकारोंसे सन्त्रस्त हो उठें और अन्य लोगोंके लिये भी दुःखदायी बन जायें। किन्तु यदि आप इस नीरोगावस्थामें, शक्तिसम्पन्न स्थितिमें अभीसे योगाभ्यास सीखकर-उसकी शास्त्रीय-वैज्ञानिक पद्धतिसे परिचित होकर-हमेशा इसका थोडा भी अभ्यास करते रहेंगे तो कभी कोई भी रोग आपके समीप आ न सकेगा। कदाचित् कोई रोग हुआ भी तो योगाभ्याससे परिपुष्ट एवं रोग-प्रतिरोधक शक्तिसे सम्पन्न शरीर उस रोगको तत्काल दूर धकेल देगा।

आप रोगी हों तो भी घबराइये नहीं!

योग-साधनसे आप रोग-मुक्त हो जायेंगे। किसी प्रकारका सन्देह न रखिये। योगारम्भरूपी छः प्रकारके मल-शोधन-कर्मसे ही आप क्रमशः रोग-मुक्तिका अनुभव करने लगेंगे और इतने आत्मविश्वाससे भर जायेंगे कि जीवनभर योग-साधनके अनुष्ठानमें लगे रहेंगे।

नेतिकर्म

नेतिकर्मके प्रकार

नेतिकर्म के मुख्यतः दो प्रकार हैं—जलनेति और सूत्रनेति। सूत्रनेतिके तीन भेद हैं:—सामान्य सूत्रनेति, युगल सूत्रनेति और घर्षण सूत्रनेति।

जलनेतिकी विधि

प्रातःकाल दन्तधावनके पश्चात् मिट्टी, तांबे अथवा चांदीके लोटेमें १० से १२ औंसतक पानी ले। जिस नासापुटसे श्वास-प्रश्वासका स्वाभाविक आवागमन हो रहा हो, उससे पानी को आसानीसे खींचे। पानीमें थोडा-सा नमक भी छोड़ ले, जिससे नासिका में जलन अथवा किसी प्रकार की वेदना न हो। अभ्यास हो जानेके पश्चात् नमक डालनेकी आवश्यकता न रहेगी। गलेमें आते ही १–२ औंस पानी मुंहसे निकाल दे, शेष पानी पी जाना चाहिये। १२ औंस पानी केवल एक ही नथुनेसे नहीं, बल्कि आधा एकसे और आधा दूसरेसे खींचना चाहिये। इतना अभ्यास हो जानेके पश्चात् दोनों नथुनोंसे एक साथ पानी खींचे। एकबारमें अधिकसे अधिक १० औंससे २० औंसतक पानी नाकसे पीना चाहिये। पानी पीनेकी क्रिया थोड़ा-थोड़ा रुककर करनी चाहिये, जिससे अवयवको आवश्यक विश्राम भी मिलता रहे।

ऋतुके अनुसार जल-परिवर्तन

जाड़ेकी ऋतुमें साधारण उष्ण जल, ग्रीष्ममें शीतल और वर्षामें शीतल जलका व्यवहार करना चाहिये।

पानी कैसा हो ?

पानी कपड़ेसे छना हुआ और विशुद्ध होना चाहिये।

प्रकृतिके अनुसार

कफप्रधान प्रकृतिवाले को साधारण उष्ण जल, पित्तप्रधानवाले को शीतल जल और वातप्रधान प्रकृतिवाले को साधारण उष्ण जल का व्यवहार लाभप्रद होगा।

जलनेतिका आयुसे सम्बन्ध

छः वर्ष की आयुसे १०० वर्षकी आयुतक के स्त्री-पुरुष जलनेति कर सकते हैं।

जलनेतिका प्रभाव

प्रातःकाल जलनेति करने वालों की आंखोंसे पानी गिरना सम्भव है। लेकिन कोई भय की बात नहीं। आंखोंके स्वास्थ्य के लिये यह लाभप्रद ही है।

जलनेतिके लाभ

नाक के छिद्र साफ हो जाते है। मस्तिष्क ठण्डा रहता है। शिरोवेदना मिट जाती है। आखोंमे ठण्डक रहती है। मस्तिष्क शान्त रहता है। उषापानसे जैसे मल-विसर्जन व्यवस्थित रहता है, उसी प्रकार इससे भी मल-विसर्जन-क्रिया ठीक होती है। मस्तिष्क की निरर्थक उष्णता शान्त होती है। मस्तिष्कमें स्फूर्ति आती है।

सूत्रनेति (अपूर्ण)

(चित्र-संख्या १)

(पृष्ठक्रम ९ देखिये)

सूत्रं वितस्ति सुस्निग्धं नासानाले प्रवेशयेत्।
मुखान्निर्गमयेच्चैषा नेतिः सिद्धैर्निगद्यते ॥१॥

—या. सं.

सूत्रनेति किसे कहते हैं ?–इस नेतिक्रियामें कच्चे सूतका व्यवहार होता है। यह सूत स्वच्छ और मुलायम रुईका होना चाहिये। नेति २४ इच लम्बी होनी चाहिये। इसका आधा भाग बटा और आधा खुला होता है। पतली, मध्यम, मोटी और विशेष मोटी–यह चार प्रकार इसके होते हैं। आरम्भ करनेवालोंको पहले पतलीसे करना चाहिये। ज्यों-ज्यों अभ्यास बढ़ता जाये; त्यों-त्यों क्रमशः मोटी सूत्रनेतिका व्यवहार करना चाहिये।

सूत्रनेतिकी विधि–अपने निकट साफ बर्तनमें स्वच्छ पानी रखे। पानी में नेतिको भिगोये। जिस नथुनेसे श्वास-क्रिया प्रवाहित हो, अपने दोनों हाथों की उँगलियोंसे नेतिके कठोर भागको पकड़कर उसमें प्रवेश कराये। नेतिके अग्रभाग के तालु भाग में पहुँचने पर उसे मुखसे दाहिने हाथकी तर्जनी और मध्यमा उगलियोंसे आहिस्तेसे बाहर निकाल ले। फिर उस नेतिको भलीभांति धो डाले और नासिका के दूसरे छेदसे करे। जिसका अवयव कोमल हो, उसे नेतिके कठोर भागको घी या मोमसे मुलायम करके करना चाहिये। नेतिके अभ्यास-कालमें छींकें आनेकी सम्भावना है, किन्तु छींकोंके कारण अभ्यास रोकनेकी आवश्यकता नहीं। नासिका का जो छेद सकुचित है, उससे आरम्भमें कुछ रक्तके आनेकी भी सम्भावना है। रक्त आनेपर घी सूँघना चाहिये। नेतिकर्म के पूर्ण होनेपर नेतिको स्वच्छ जलसे धोकर सुखा दे। एक नेति कमसे कम ६ मासतक चलती है। नेतिकर्मके सम्पन्न हो जानेपर शीतल या गरम जलसे मुंह धो डालना चाहिये।

सूत्रनेति (सम्पूर्ण)

चित्र-संख्या २

(पृष्ठक्रम १० देखिये)

सूत्रनेति :—नेतिको नासिकाके एक छिद्रमें प्रवेश करके मुंहसे निकाल लेनेकी क्रियाको सम्पूर्ण सूत्रनेति-कर्म कहते हैं।

युगल नेति—दाहिने नासिका-छिद्रसे नेतिको डालकर मुंहसे निकाले और नेतिके दूसरे अग्रभाग को बायें नासिका-छिद्रमेंसे प्रवेश करे तथा नेतिके दोनों अग्रभागोंको बांध दे। फिर दाहिनी ओर पूरी नेतिको तीन-चार बार आहिस्ते-आहिस्ते खींचे इसी प्रकार बाईं ओर भी खींचे। इस नेति-क्रियाको युगल नेति-क्रिया कहते हैं

घर्षण नेति—सामान्य नेतिकी तरह नेतिको ले जाये। मुहसे निकालकर नेतिके दोनों छोरों को दोनों हाथोंकी उंगलियोंसे पकड़कर उसके केवल कोमल भागको खींचे पहले दिन दो बार, दूसरे दिन दो बार। तीसरे दिनसे ८ दिनतक तीन बार। ९ से १५ दिनतक ४ बार। १५ से २२ दिनतक ५ बार। २२ दिनसे ३० दिनतक ६ बार अभ्यास चालू रखे। कोई कारण उपस्थित होनेपर अधिक अथवा कम बार भी घर्षण कर सकते हैं।

सूत्रनेतिका ऋतु और आयुसे सम्बन्ध

सभी अवस्थाओंके ७ बरससे अधिक उमरवाले वृद्ध स्त्री-पुरुष सभी ऋतुओंमें सूत्र-नेतिका व्यवहार कर सकते हैं।

सूत्रनेति-कर्मके लाभ

पीनस रोगमें रामबाण—नासिकाके भीतरी भागमें श्लेष्मा एकत्र होते-होते कठोर हो जाती है। कठिन होनेके बाद वह सड़ती है। नाकसे दुर्गन्ध आती है। इससे शिरदर्द भी होता है। नाकमें सूजन आ जाती है। श्वास-प्रश्वासमें कठिनाई होती है। इससे शरदी और गरमीके कई रोग हो जाते हैं। नेति-कर्म से जमा हुई श्लेष्मा निकल जाती है। नाककी हड्डी भी मजबूत होती है। उसमें भलीभांति काम करनेकी शक्ति आ जाती है। पीनसके रोगियोंको सुगन्ध-दुर्गन्ध का भान नहीं होता। क्योंकि नाकके ज्ञानतन्तु और क्रियातन्तु निश्शक्त हो जाते हैं। नेतिकर्मसे ज्ञानतन्तु सशक्त होते हैं। सुगन्ध और दुर्गन्ध का भान होने लगता है। पीनसके रोगीको सम्पूर्ण नेतिकर्म

और घर्षण नेतिका अभ्यास प्रतिदिन एकबार प्रातःकाल करते रहना चाहिये। दो-तीन दिनोंमें ही अन्तर मालूम पड़ेगा और लाभ निरन्तर बढ़ता जायेगा। नाकमें श्लेष्मा जमा नहीं होगी। यदि श्लेष्मा आती ही है तो साफ होती रहेगी। ज्ञानतन्तु बलवान् बनेंगे। थोड़े दिनोंमें उपर्युक्त सभी विकार ठीक हो जायेंगे। शिर हलका मालूम होगा। फेफड़ोंको विश्राम मिलेगा। शरीर स्फूर्तिसे भरपूर हो जायेगा।

अन्य लाभ—नेतिक्रियासे नेत्रोंकी ज्योति बढ़ती है। कानोंके ज्ञानतन्तु और क्रियातन्तु सशक्त होते हैं। नेत्रोंकी ज्योति बढ़ानेकी इच्छा रखनेवालोंको प्रतिदिन प्रातःकाल घर्षण नेति करना चाहिये। गुलाब-जलको आई-ग्लासोंमें भरकर आखोंसे स्पर्श करायें। त्राटककर्म भी करें, जिसे आगे बताया जायेगा। लाभ होनेके बाद सप्ताहमें एक या दो बार नेतिकर्म करते रहना काफी होगा। प्रतिदिन करनेकी आवश्यकता नहीं। सूत्रनेतिके अभावमें रबरकी नेति २ से ४ नम्बरतक की व्यवहार कर सकते हैं, लेकिन सूत्रनेतिके मुकाबिले इसमें लाभ नहीं मिलेगा। इस नेतिक्रियासे आंख, नाक, कान और जीभके ज्ञानतन्तु और क्रियातन्तु न केवल स्वच्छ, बल्कि स्वस्थ और सशक्त भी होते हैं।

धौतिकर्म (अपूर्ण और सम्पूर्ण)

चित्र-संख्या ३-४

(पृष्ठक्रम ११-१२ देखिये)

धौति क्या है ?

धौति मुलायम मलमल के कपड़े की बनी होती है। उसके दोनों सिरे सिले हुए होते हैं। १५ से २४ फीट तक उसकी लम्बाई रखी जाती है। आरम्भ करने-वालोंके लिये १५ फीटकी पर्याप्त होगी। अभ्यस्त लोग २४ फीटतक की कर सकते हैं।

धौति कैसे करें ?

धौतिके एक छोरको फैलाकर पहले जलमें भिगोये, फिर दाहिने हाथकी उँगलियोंके सहारे छोटी जीभके पास रखे। तत्पश्चात् उसे निगलना प्रारम्भ करे। पहले दिन तीन बार प्रयास करे। दूसरे दिनसे ८ दिनतक चार बार प्रयास करे। पहले दिनसे तीसरे

सम्पूर्णताके लिये १५ दिनसे अधिक समय भी लग सकता है। विकार न होनेपर धौति-कर्म ८ दिनोंमें ही पूरा हो सकता है। (देखो दण्ड-धौति)

दण्डधौति कब और कौन करे ?

सभी ऋतुओंमें प्रातःकाल यह क्रिया की जा सकती है। भोजनके ३।४ घण्टेके बाद धौतिकर्म कर सकते हैं। धौतिकर्म करने के २० मिनटके बाद कुछ खाया जा सकता है। १० वर्षसे १०० वर्षतककी आयुके लोग धौतिकर्म कर सकते हैं।

धौतिकर्म कौन न करें ?

जिनके फेफड़े और हृदय अत्यन्त कमजोर हैं, शरीरके स्नायु पूर्णतया दुर्बल हो गये हैं; फिटके रोगियों, तीसरे दर्जेमें पहुंचे हुए दमाके रोगियों, दूसरे अथवा तीसरे दर्जेमें प्रविष्ट क्षयके रोगियों, अतिसार और हैजाके रोगियोंको धौतिकर्म नहीं करना चाहिये।

धौतिकर्म के लाभ

पाचन-शक्ति बढ़ती है। पेट हलका हो जाता है। वात-पित्त-कफ की अधिकता से अन्नाशय-कोषमें जो विकार एकत्र होता है, वह नष्ट हो जाता है। आरम्भिक और दूसरे दर्जेतक पहुँचा हुआ दमाका रोग ठीक होता है। गलेसे लेकर अन्नाशयतक गये हुए अवयवकी स्वच्छता हो जाती है। आवाज मधुर तथा सशक्त होती है। वातविकारजन्य शिरोवेदना दूर होती है। जँभाईका दोष निकल जाता है।

नवलि--कर्म

(वामनवलि बैठकर-चित्र संख्या ७)

(पृष्ठ-संख्या १५ देखिये)

अमंदावर्तवेगेन तुदं सव्यापसव्यतः।
नतांसो भ्रमयेदेषा नौलिः सिद्धैः प्रचक्ष्यते॥

—या. सं.

नवलिकर्म की विधि

नवलिकर्म तीन प्रकारसे किया जाता है–बैठकर, खड़े होकर और किसी आधारको लेकर।

बैठकर करनेकी विधि

पद्मासन, स्वस्तिकासन अथवा सिद्धासन लगाकर बैठे। दोनों घुटनोपर दोनों हाथ रखे। हथेलियोंसे घुटनों को दबाये। श्वासको नासिकाके छिद्रों द्वारा बाहर निकाले। शरीरको आगे की ओर इतना झुकाये कि अपने पेटको देख सके। पेटको पीठकी ओर दबाये और ढीला छोड़ दे। यह क्रिया ५ बार करे। श्वास तबतक न ले, जबतक इतनी क्रिया हो न जाये। एकबार में ५ उड्डीयान करे। श्वास को बाहर निकालकर पेटको दबाये तो एक उड्डीयान होता है। एकबार श्वासके बाहर निकालनेपर ५ उड्डीयान करे। ५ उड्डीयानतक श्वास न ले। पहले दिनसे ४ दिनतक २० उड्डीयान करे। ५ से १२ दिनतक २५ और १३ से २० दिनतक ३० उड्डीयान करे। प्रति पांच उड्डीयानके बाद पेटको कुछ देरतक दबाकर रखे। श्वास न ले। इस तरह कमसे कम १५ दिनसे एक मासतक अभ्यास चालू रखनेसे नवलि कर्म में प्रारम्भिक तैयारी हो जाती है। जिनके शरीर में चरबीका भाग अधिक है, जिनका पेट बड़ा और शरीर स्थूल है, उनके लिये उड्डीयान का अभ्यास ३ मासतक करना आवश्यक होगा। इसके बाद ही वे नवलि कर्म कर सकते हैं। अपवाद रूपमें कभी तीन मास से अधिक समय भी लग सकता है। ऐसा नहीं मान लेना चाहिये कि हमसे नवलि कर्म नहीं होगा।

(दक्षिण नवलि बैठकर–चित्र नं. ८)

(पृष्ठक्रम संख्या १६ देखिये)

(मध्य नवलि बैठकर चित्र संख्या ९)

(पृष्ठ सं. १७ देखिये)

मध्यनवलि–खड़े होकर

चित्र संख्या १०

(पृष्ठ सं. १८ देखिये)

खड़े होकर करनेकी विधि

खड़े होकर दोनों पैरोंको एक फुटके अन्तरपर रखे। कुहनियोंको चौड़ा रखे, सीधा नहीं। श्वासको पहलेकी तरह ही बाहर निकालना चाहिये और पेटको पीठकी ओर दबाना चाहिये। शेष विधि बैठकर नवलिकर्म-करने के समान ही है।

आधार लेकर करनेकी विधि

किसी मेज, कुरसी या अन्य वस्तुका आधार लेकर उसपर दोनों हाथ रखे। कुहनियोंको फैलाकर रखे। पैरोंको एक फुट के अन्तरपर रखे। शेष विधि बैठकर नवलिकर्म करनेके समान करना चाहिये।

नवलिकर्मका ऋतु और अवस्था से सम्बन्ध

नवलिकर्म सभी ऋतुओंमें प्रातःकाल अथवा सायंकाल प्रतिदिन एकबार कर सकते है। भोजन के ४ घण्टे के बाद नवलिकर्म किया जा सकता है। ८ से १०० वर्षतक की आयुतक के स्त्री–पुरुष इसे कर सकते हैं। गर्भवती और मासिकधर्मवाली स्त्रियों को इसे करना न चाहिये। प्रसूति के तीन मास के पश्चात् इसे किया जा सकता है। हैजा और अतिसार के रोगी भी इसे न करें।

नवलिकर्म का प्रारम्भ

मध्य–नवलि

उड्डीयान की अवस्था में उदर के मध्य–भाग को उठाकर ऊपर लाने का प्रयास करना चाहिये। इससे नाभि की दाहिनी और बाईं ओर गड्ढे पड़े दिखाई देंगे। इसे मध्य नवलि कहते हैं।

वाम नवलि

बायें घुटनेपर हाथ को दबाकर रखे। दाहिने घुटनेपर हाथ को ढीला रखे। पेट को बाईं ओर ऊपर लाये। दाहिनी ओर इससे गड्ढा पड़ा दिखाई देगा। इसे वामनवलि कहते हैं।

दक्षिण नवलि

इसी प्रकार दाहिने घुटनेपर हाथको दबाकर रखे और बायें घुटनेपर हाथ को ढीला रखे। पेटको दाहिनी ओर उठाकर रखे। बाईं तरफ गड्ढा पड़ा दिखाई देगा। इसे दक्षिण–नवलि कहते हैं।

सम्पूर्ण नवलि

बाईं से दाहिनी और दाहिनीसे बाईं ओर पेटकी नसोंको घुमाये। चार दिनतक क्रमसे दाहिनी और बाईं ओर दो–दो बार घुमाये। ५ से ८ दिनतक ३।३ बार; ९ से

१६ दिनतक ४।४ बार और १६ दिन के पश्चात् यथाशक्ति और अनुकूल दिखाई देनेपर ४ से १० बारतक घुमाये।

नवलिकर्म के लाभ

रोगकी जड़ पेट से प्रारम्भ होती है। नवलिकर्म करनेसे पेट के अवयव सशक्त बनते हैं। पाचनशक्ति अच्छी रहती है। मलविसर्जन उचित रूप से होता है। छोटी आंत, बड़ी आंत, मूत्र-सम्बन्धी अवयव, नाभिचक्र आदि नीरोग होते हैं। भूख खुलकर लगती है। शरीर में यदि आवश्यकतासे अधिक चरबी है तो कम हो जाती है। यदि कम है तो बढ़ती है, अर्थात् शरीर में चरबी का सुयोग्य संतुलन रहता है। पेटके वायुविकार, कफविकार और पित्तविकार प्रशमित होते हैं। मन्दाग्नि नष्ट होती है और वैश्वानर अग्नि उद्दीप्त होता है। आन्त्रपुच्छ रोग अच्छा होता है। किडनी और मूत्राशय के रोग दूर होते हैं। पेट के अनेक रोग नवलिकर्म से निर्मूल हो जाते हैं।

बस्ति-कर्म

बस्ति क्या है ?

शीशम अथवा किसी उत्तम लकड़ीकी नली—जिसके बीचमें छेद हो, मोटाई अँगूठेके बराबर हो, लम्बाई ६ से ८ इंच तक हो और जिसके बाहरका भाग चिकना हो—को बस्ति कहते हैं।

बस्ति-कर्म की विधि

जिस प्रकार नवलिकर्म में खड़े होते हैं, उसी तरह खड़ा हो। बस्तिके एक सिरेको मलद्वार में एक इंचसे दो इंचतक प्रवेश करे। फिर नवलिकर्म करे। इस समय छिद्र द्वारा मल द्वारमें वायु ऊपर आयेगी। नवलिकर्म (मध्यम नवलि) छूटते ही वायु नीचे जायेगी। पहले दिन ६ सेकण्ड करे। दूसरे और तीसरे दिन ७ सेकण्ड करे। इस प्रकार ८ दिनतक १० सेकण्ड बढ़ाये। इसे वायु-बस्ति कहते हैं। खड़े होकर बस्तिका एक भाग पानीमें और दूसरा मलद्वारमें लगाये। मध्यम नवलि करके पानी ऊपर खींच ले। खींचनेपर तुरन्त ही बस्तिको निकाल ले। दो-तीन बार उड्डीयान या नवलि कर्म करके मल-विसर्जनके लिये चला जाये। पहले दिन ६ औंस पानी लेना चाहिये। दूसरे दिन ८ औंस पानी का उपयोग करे। बढ़ाते-बढ़ाते १६ से २० औंसतक पानी का उपयोग करना चाहिये। अर्थात् उपर्युक्त मात्रामें पानी खींचना चाहिये।

आधार लेकर करनेकी विधि

किसी मेज, कुरसी या अन्य वस्तुका आधार लेकर उसपर दोनों हाथ रखे। कुहनियोंको फैलाकर रखे। पैरोंको एक फुट के अन्तरपर रखे। शेष विधि बैठकर नवलिकर्म करनेके समान करना चाहिये।

नवलिकर्मका ऋतु और अवस्था से सम्बन्ध

नवलिकर्म सभी ऋतुओंमें प्रातःकाल अथवा सायंकाल प्रतिदिन एकबार कर सकते है। भोजन के ४ घण्टे के बाद नवलिकर्म किया जा सकता है। ८ से १०० वर्षतक की आयुतक के स्त्री-पुरुष इसे कर सकते हैं। गर्भवती और मासिकधर्मवाली स्त्रियों को इसे करना न चाहिये। प्रसूति के तीन मास के पश्चात् इसे किया जा सकता है। हैजा और अतिसार के रोगी भी इसे न करें।

नवलिकर्म का प्रारम्भ

मध्य-नवलि

उड्डीयान की अवस्था में उदर के मध्य-भाग को उठाकर ऊपर लाने का प्रयास करना चाहिये। इससे नाभि की दाहिनी और बाईं ओर गड्ढे पड़े दिखाई देंगे। इसे मध्य नवलि कहते है।

वाम नवलि

बायें घुटनेपर हाथ को दबाकर रखे। दाहिने घुटनेपर हाथ को ढीला रखे। पेट को दाईं ओर ऊपर लाये। दाहिनी ओर इससे गड्ढा पड़ा दिखाई देगा। इसे वामनवलि कहते हैं।

दक्षिण नवलि

इसी प्रकार दाहिने घुटनेपर हाथको दबाकर रखे और बायें घुटनेपर हाथ को ढीला रखे। पेटको दाहिनी ओर उठाकर रखे। बाईं तरफ गड्ढा पड़ा दिखाई देगा। इसे दक्षिण-नवलि कहते है।

सम्पूर्ण नवलि

बाईं से दाहिनी और दाहिनीसे बाईं ओर पेटकी नसोंको घुमाये। चार दिनतक क्रमसे दाहिनी और बाईं ओर दो-दो बार घुमाये। ५ से ८ दिनतक ३।३ बार; ९ से

१६ दिनतक ४।४ बार और १६ दिन के पश्चात् यथाशक्ति और अनुकूल दिखाई देनेपर ४ से १० बारतक घुमाये।

नवलिकर्म के लाभ

रोगकी जड़ पेट से प्रारम्भ होती है। नवलिकर्म करनेसे पेट के अवयव सशक्त बनते हैं। पाचनशक्ति अच्छी रहती है। मलविसर्जन उचित रूप से होता है। छोटी आंत, बड़ी आंत, मूत्र-सम्बन्धी अवयव, नाभिचक्र आदि नीरोग होते हैं। भूख खुलकर लगती है। शरीर में यदि आवश्यकतासे अधिक चरबी है तो कम हो जाती है। यदि कम है तो बढती है, अर्थात् शरीर में चरबी का सुयोग्य संतुलन रहता है। पेटके वायुविकार, कफविकार और पित्तविकार प्रशमित होते हैं। मन्दाग्नि नष्ट होती है और वैश्वानर अग्नि उद्दीप्त होता है। आन्त्रपुच्छ रोग अच्छा होता है। किडनी और मूत्राशय के रोग दूर होते हैं। पेट के अनेक रोग नवलिकर्म से निर्मूल हो जाते हैं।

बस्ति-कर्म

बस्ति क्या है?

शीशम अथवा किसी उत्तम लकड़ीकी नली—जिसके बीचमें छेद हो, मोटाई अँगूठेके बराबर हो, लम्बाई ६ से ८ इंच तक हो और जिसके बाहरका भाग चिकना हो—को बस्ति कहते हैं।

बस्ति-कर्म की विधि

जिस प्रकार नवलिकर्म में खड़े होते हैं, उसी तरह खड़ा हो। बस्तिके एक सिरेको मलद्वार में एक इंचसे दो इंचतक प्रवेश करे। फिर नवलिकर्म करे। इस समय छिद्र द्वारा मल द्वारमें वायु ऊपर आयेगी। नवलिकर्म (मध्यम नवलि) छूटते ही वायु नीचे जायेगी। पहले दिन ६ सेकण्ड करे। दूसरे और तीसरे दिन ७ सेकण्ड करे। इस प्रकार ८ दिनतक १० सेकण्ड बढाये। इसे वायु-बस्ति कहते हैं। खड़े होकर बस्तिका एक भाग पानीमें और दूसरा मलद्वारमें लगाये। मध्यम नवलि करके पानी ऊपर खींच ले। खींचनेपर तुरन्त ही बस्तिको निकाल ले। दो-तीन बार उड्डीयान या नवलि कर्म करके मल-विसर्जनके लिये चला जाये। पहले दिन ६ औंस पानी लेना चाहिये। दूसरे दिन ८ औंस पानी का उपयोग करे। बढ़ाते-बढ़ाते १६ से २० औंसतक पानी का उपयोग करना चाहिये। अर्थात् उपर्युक्त मात्रामें पानी खींचना चाहिये।

बस्तिक्रिया का समय और अवस्थासे सम्बन्ध

बस्तिक्रियाके लिये सर्वोत्तम समय प्रातःकाल है या जब पेट खाली हो, तब करना चाहिये। ८ से १०० वर्ष की आयुतक के स्त्री-पुरुष इसे सभी ऋतुओं में कर सकते हैं। दिन में केवल एकबार बस्तिकर्म करना चाहिये।

बस्तिकर्म के लाभ

मलबद्धता दूर होती है। अपान वायुका दोष नष्ट होता है। बड़ी आंत सशक्त बनती है। वीर्याशय-कोश और मूत्राशयकोशके विकार नष्ट होते हैं। वे मजबूत बनते हैं। मूलव्याधि (बवासीर) अच्छी होती है। बड़ी आंत और मलद्वारकी निरर्थक गरमीका शमन होता है। अच्छी गरमी पैदा होती है।

एनिमाकी तुलनामें बस्ति

एनिमाकी नलीसे मलद्वार द्वारा पानी आसानीसे पेटमें चला जाता है और इन अंगोंको कोई काम नहीं करना पड़ता। बस्तिकर्म करनेमें मलद्वारसे पेटतक आवश्यक व्यायाम हो जाता है। एकबारगी पानी पेटमें पहुंच नहीं जाता। इससे न केवल अंग सशक्त होते हैं, बल्कि बारबार बस्ति लेनेकी आवश्यकता भी नहीं रह जाती। इसलिये बस्ति एनिमासे अधिक महत्त्वपूर्ण और लाभदायक है। एनिमाकी तरह इसे प्रतिदिन लेनेकी आदत नहीं पड़ती। उल्टे इसके करनेसे मलविसर्जन से सम्बन्धित सभी अंग सशक्त और कार्यक्षम बनते हैं। इससे मल-विसर्जन स्वाभाविक रूपमें होता रहता है।

गणेश-क्रिया (कर्म)

अनेक स्त्री-पुरुषोंको मलविसर्जन-कालमें मलका प्रथम भाग कठिन होता है; इससे मल-विसर्जन ठीकसे नहीं होता। मल-विसर्जन के पश्चात् भी मलद्वारके ऊपरी भागमें मलके रहनेकी सम्भावना रहती है। ऐसे लोगोंको यह गणेश-क्रिया अवश्य करनी चाहिये।

गणेश-क्रियाकी विधि

बायें हाथकी अनामिका अथवा मध्यमा उँगलीमें कोई भी तेल लगाकर अथवा पानी लगाकर मलद्वारमें प्रवेश कराये। मलके कठोर भागको पहले निकाल दे। अन्तमें रहे हुए मल को भी साफ कर दे। यह कार्य सदा करनेकी जरूरत नहीं। आवश्यकता होनेपर ही इसे करना चाहिये। इस विधिसे भी आरोग्य-रक्षामें सहायता मिलेगी।

कपालभाति

भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरौ ससंभ्रमौ ।
कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषिणी ॥

—या. सं.

कपालभाति करने की विधि—

पद्मासन, स्वस्तिकासन अथवा सिद्धासन में बैठना चाहिये । (आसन की विधि आसन-प्रकरण में पढ़िये)। उपर्युक्त किसी आसन में बैठकर दाहिने हाथ की हथेली को दाहिने घुटनेपर और बायें हाथकी हथेली को बायें घुटनेपर रखना चाहिये। बिलकुल सीधे बैठना चाहिये। दोनों नासिका-रन्ध्रोंसे १० बार गहरे श्वास-प्रश्वास खींचना और छोड़ना चाहिये। किसी अवयव को धक्का न पहुच ने पाये। छाती फुलाकर रखना चाहिये। एकबार श्वास लेना और छोड़ना इसे **एक घर्षण** कहते हैं। इस प्रकार दस घर्षण करे। आंखें बन्द रखे। दस घर्षण के बाद ग्यारहवें श्वास को रोक रखे; अर्थात् पूरक करके फिर कुम्भक करे। भरी श्वास में अनामिका और कनिष्ठिका उँगलीसे बायें और अगुष्ठ से दाहिने नासा-छिद्र को दबायें। ठुड्डी (हनु) को कण्ठकूपमें लगा रखें। कुम्भक के बाद पुनः रेचक करें। रेचक के समय शनैः-शनैः श्वास निकालें। जिस नासिका-रन्ध्र से श्वास अधिक प्रवाहित हो, उसे कुछ दबाकर रखना चाहिये। इससे दोनों नासिका-छिद्रोंमें समान श्वास-प्रश्वास का आवागमन होगा।

कपालभाति के लिये तीन प्रकार के **बन्ध** भी समझना आवश्यक है:—**उड्डीयान बन्ध, मूलबन्ध** और **जलन्धर बन्ध**। मलद्वार को सकुचित करना मूलबन्ध है। पेट को पीठ की तरफ सकुचित करना **उड्डीयान बन्ध** है और ठुड्डी (हनु) को कण्ठकूप में लगाने का नाम **जालन्धर बन्ध** है। कपालभाति में आरम्भ से अन्ततक मूलबन्ध कायम रखे। रेचक अर्थात् श्वास को निकालते समय **उड्डीयान बन्ध** करे। कुम्भक अर्थात् श्वासावरोध की अवस्था में जालन्धर बन्ध करे।

मात्राओंकी विधि

कपालभाति के अभ्यासकर्ताओंको प्रारम्भमें चार मात्रातक पूरक, १६ मात्रातक कुम्भक और आठ मात्रातक रेचक करना चाहिये। एक सेकण्डकी कालावधिको मात्रा कहते

हैं। जिन स्त्री–पुरुषोंके फेफड़े मजबूत और विकसित न हो; उन्हें आरम्भ में उपर्युक्त मात्राओंमें ही अभ्यास करना चाहिये। फेफड़ोंके सशक्त और विकसित होनेके पश्चात् धीरे–धीरे मात्रायें बढाते जाना चाहिये। अर्थात् १ : ४ : २ के अनुपातसे मात्रायें क्रमशः बढ़ाते जायें। आसानीसे अर्थात् फेफड़ोंको जितना सहन हो, उतनी ही मात्राओं का व्यवहारमें लाना चाहिये। उदाहरणार्थ, यदि ६ : २४ : १२ मात्राओंका व्यवहार करनेसे रेचकके समय कठिनाई मालूम पड़े तो कुम्भकका समय न बढ़ाये। कुम्भक और रेचक आसानीसे बढ़ें, तभी यह समझना चाहिये कि फेफड़े सशक्त और विकसित हो रहे हैं।

समय

प्रातःकाल स्नान–कार्यसे निवृत्त होकर कपालभाति करना चाहिये। आठ दिनतक दो बार। ८ से १५ दिनतक चार बार। १५ दिनसे २२ दिनतक ५ बार। २२ से ३० दिनतक ६ बार। एक मास के पश्चात ६ से १२ बारतक कपालभाति करना चाहिये। कपालभातिकी उपयुक्त क्रिया आयु, शक्ति और ऋतुके अनुसार ध्यानमें रखकर निश्चित करनी चाहिये और तदनुसार अभ्यास जारी रखना चाहिये।

आयु

८ से १०० वर्षकी आयुतकके स्त्री–पुरुष सभी ऋतुओं में कपालभाति कर सकते हैं।

कपालभातिके लाभ

नाड़िया शुद्ध होती हैं। फेफड़ोंका विकास होता है। मनकी अस्थिरता कम होती है। क्रियातन्तुओंमें स्फूर्ति आती है। मास्तिष्क शान्त होता है। कण्ठनली शुद्ध और सशक्त बनती है। कफविकार कम होता है। सूर्यनाड़ी और कफनाड़ी शुद्ध बनती हैं। नासिका–छिद्रोंके क्रियातन्तु और ज्ञानतन्तु बलवान् बनते हैं। दुर्गन्ध और सुगन्धका अनुभव भलीभाति होता है।

त्राटक

निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः।
अश्रुसंपातपर्यंतमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम् ॥
—या. सं

त्राटक-कर्मके लिये उपयुक्त साधन

त्राटक कर्मके लिये अनेक साधनोंका उपयोग किया जा सकता है। सूर्य, चन्द्र, दीपक, वृक्षोंके पत्ते, पानी, ॐकार का चित्र, शीशा, भगवान् का चित्र, अपने गुरुका चित्र, महात्माओं के चित्र, सफेद कागजपर तैयार किया हुआ और दफ्तीपर चिपकाया हुआ सूर्यका सादृश्य-चित्र आदिका उपयोग त्राटक-कर्म के लिये कर सकते हैं। सुलभ उपाय और सरल सम्भव प्रयाससे ही त्राटक करना ठीक होता है।

सूर्यके सामने त्राटक-विधि

प्रातःकाल अरुणोदय के समय सूर्य के सामने मुंह करके खड़ा हो या बैठ। आंखें बन्द रखे। सूर्यकी किरणें मुखमण्डल और शरीरपर पड़ें। आंख की ऊपरी त्वचापर सूर्यकी किरणें पड़ती रहें, इस प्रकार सूर्य के सामने खड़ा हो या बैठे।

समय और अवधि

तीन दिनतक ५ से ३० सेकण्ड तक किरणें ले। किरणें लेनेके पश्चात् आखों की काली पुतलीको दोनों ओर फिराये। दाहिनी और बाईं ओर ५।५ बार ले जाये। फिर आखें मूद कर ५ से २० सेकण्डतक कानोंसे किरण ले और फिर ५ बार आंखों को ऊपरसे नीचे ले आये। तत्पश्चात् ५ से १० सेकण्डतक आंखोंको बन्द रखे। फिर ठण्डे पानीसे आखोंको धो डाले। ३ से १५ दिनतक ३० सेकण्डसे ४० सेकण्डतक ले जाये। शेष विधि ऊपर के समान है। १५ दिन से ३० दिनतक ४० सेकण्डसे ६० सेकण्डतक अवधि बढ़ाये। एक मास के पश्चात् ऋतु, आयु और लाभ के अनुसार १ मिनिट से अधिक, या २ मिनिटतक समय बढ़ाये। आखें घुमाते समय कदाचित् आखों में पानी आये, उसे आने देना चाहिये, अभ्यास बन्द न करना चाहिये; निरन्तर चालू रखना चाहिये। सूर्य की तीव्र किरणों में त्राटक कभी न करे, अर्थात् जाड़ेके दिनोंमें सवेरे ८ बजे के पश्चात् और गरमी तथा वर्षा के दिनोंमें प्रातः ७॥ बजे के बाद त्राटक न करे।

सूर्य के सामने त्राटक करनेवालों को आवश्यक सूचना

आंखे खोलकर सूर्य के सामने त्राटक न करे। इससे आंखों की दृष्टि मन्द पड़ने की आशंका रहती है। आंखें बन्द करके अभ्यास करना लाभप्रद है। जब सूर्यपर बादल न हों और सूर्य-बिम्ब स्पष्ट दिखाई दे रहा हो, तभी त्राटक करना चाहिये।

चन्द्र में त्राटक करने की विधि—

शुक्ल पक्षमें सप्तमीसे पूर्णिमा तक और कृष्ण पक्षमें पूर्णिमासे सप्तमी तक त्राटक करना चाहिये। खड़ा रहे या बैठे। चन्द्रमाके सामने आंखें खोलकर देखे, बन्द न रखे। शेष विधि सूर्य में त्राटक करने के समान ही है।

समय

जाड़े के दिनों में सायंकाल ६।। बजेसे ७ बजेतक त्राटक करना चाहिये। गरमी तथा वर्षा के दिनों में ७।। से ८ बजेतक कर लेना चाहिये। कारणवशात् ९ बजेतक भी कर सकते हैं।

दीपकमें त्राटक करनेकी विधि

मिट्टी, पीतल, चादी अथवा अन्य किसी धातुका पात्र ले और उसमें घी, अरण्डे, तिल या गिरी (नारियल) के तेलमें से कोई एक तेल भर ले तथा रुई की बत्ती बनाकर उसे जलाये। जहां वायुवेग कम हो; अर्थात् दीपशिखा स्थिर रह सके; ऐसा स्थान चुने और वहां दीपक रखे तथा उसके सामने पद्मासन, स्वस्तिकासन या सिद्धासन लगाकर बैठे। भूमिपर कुशासन या स्वच्छ कपड़े का आसन बिछा ले। दीपक को आंखोंसे ५ फीटकी दूरीपर रखे। दृष्टि और दीपशिखा समानान्तरपर रहें, अर्थात् आंखोंकी दृष्टि दीपकके सामने पड़नेपर न ऊपर उठे और न नीचे झुके। दीपकके सामने आंखें खोलकर देखे। शेष विधि ऊपर लिखे अनुसार है। अभ्यासका समय प्रातःकाल ४ बजे से ७ बजेतक होना चाहिये।

वृक्षोंके पत्तोंमें त्राटक-विधि

किसी छोटे पेड़ या पौधेके सामने बैठे या खड़ा हो। तीनसे पांच फीटकी दूरीसे उसे आखें खोलकर देखे। फिर थोड़ी देरतक आखें बन्द रखे। बन्द रखनेके समय आंखों की ऊपरी त्वचाकी मालिश करता रहे। मालिश करने के पश्चात् आंखोंकी

पुतलियोंको घुमाये। फिर थोड़ी देरतक पौधोंको देखता रहे। इस प्रकार तीन बार करे। फिर शीतल जलसे आखें और मुंह धो डाले।

समय

प्रातःकाल १० बजेतक। जाड़ेके दिनोंमें सायंकाल ४॥ बजेसे ६ बजेतक। गरमी और वर्षामें ६ बजेसे ७॥ बजेतक पौधोंमें त्राटक करना चाहिये।

स्थान तथा अन्य सूचनायें

जिस स्थानपर बड़े पेड़की छाया पौधेपर पड़ती हो, वहां दोपहरमें भी त्राटक किया जा सकता है। सूर्यकी किरणोंमें न बैठे। छाया में ही अभ्यास करना चाहिये। जहां दुर्गन्धपूर्ण हवा चलती हो, स्थान अस्वच्छ हो, वहा त्राटक-कर्म करना हितकर नहीं। यदि पौधा न मिले तो पेड़के पत्तेमें ही त्राटक करे। पत्ता यथासम्भव हरा होना चाहिय। पीले या सूखे पत्तोंका उपयोग न करना चाहिये। पेड़के पत्रोंमें ऊपर लिखी विधिसे त्राटक करे। वृक्ष और पौधा जहा न मिले, वहां हरे रंगकी कोमल घासपर त्राटक-दृष्टि स्थिर करे। इसमें दृष्टि यथासम्भव नीचे झुकने न पाये और साथ ही घासकी हरीतिमा स्पष्ट दिखाई देती रहे। घासमें काफी दूरपर दृष्टि स्थिर करे। शेष विधि पौधेके समान है। समय भी वही है।

पानीमें त्राटक-विधि

इस विधिसे त्राटक करनेके लिये शुद्ध और स्थिर जलकी आवश्यकता होती है। गिलास, वर्तन, सरोवर, तालाब, झील, नदी-तट आदि पर जहां जल स्थिर हो, त्राटक करना चाहिये। पानी से ५ फीट की दूरीपर बैठकर या खड़े होकर पानी को एकटक देखते रहें। शेष विधि पौधे में त्राटक-विधि करनेके समान है। समय भी पौधे के समान है।

ॐकार के चित्र में त्राटक-विधि

ॐकार के चित्रको ३ से ४ फीटके समानान्तरपर रखे। ॐ की अर्धचन्द्राकार स्थित बिन्दीपर दृष्टि जमाये। पहले दिन २० सेकण्डतक और दूसरे दिन २० से ३० सेकण्ड तक करे। फिर प्रतिदिन ५ सेकण्ड बढाता जाये। इस प्रकार दो मिनिट तक बढाये। फिर आखें बन्द कर पुतलियों की त्वचा पर दोनों हाथों की उँगलियों से मालिश करे। इसके वाद आंखों की काली पुतलियों को दायें-बायें और ऊपर-नीचे घुमाये। तत्पश्चात् ठण्डे पानीसे आखें धो डाले। यदि कभी ॐकार का चित्र मिल

न सके तो एक फीट लम्बे और एक फीट चौड़े कागज पर काली स्याही से सूर्य-बिम्ब और सूर्य-किरणों से युक्त चित्र बना ले। मध्यबिन्दु (बिम्ब) एक पैसे की गोलाई के बराबर हो। चित्राकित कागज को दफ्ती या पुट्ठेपर चिपका लेना चाहिये और उसे भीत, मेज या कुर्सीपर रखकर त्राटक करना चाहिये। यदि कारणवश दिनमें यह न हो सके तो रातमें कर सकते हैं दीपकके प्रकाश में। जहां बैठे हों, उसके दायें या बायें त्राटक-चार्टपर प्रकाश पड़े। प्रकाश न अधिक तेज हो और न अधिक मन्द हो। वह सामने से भी न आना चाहिये। प्रातःकाल और सायकाल का **समय** सर्वोत्तम है।

दर्पण में त्राटक-विधि

दो फीट लम्बा और एक फीट चौड़ा शीशा लेना चाहिये। शीशा ३ फीट की दूरीपर रखे। किसी आसनपर उसके सामने बैठे। भ्रू-मध्य (बरौनियोंके बीचमें) चन्दनका तिलक लगाये। तिलक को दर्पण में देखे। शेष त्राटक-विधि ऊपर लिखे समान है।

भगवान्, गुरु या महात्माके चित्रमें त्राटक-विधि

चित्रके भ्रू-मध्यमें चन्दनका तिलक लगाकर देखना चाहिये। दूरी पॉच फीटकी हो। शेष विधि ऊपरके समान है। **समय**-प्रातःकाल और सायकाल उत्तम है। दीपक के प्रकाशमें भी यह विधि सम्पन्न कर सकते है। प्रकाश-व्यवस्था ऊपर लिखे अनुसार ही होनी चाहिये।

त्राटक-कर्म द्वारा मननिरोध एवं स्वास्थ्य-लाभ

ऊपर जिन विधियोंका विस्तारके साथ वर्णन किया गया है, उनसे न केवल शारीरिक स्वास्थ्य लाभ होता है, बल्कि मन-निरोध करने में भी बड़ी सहायता मिलती है। त्राटक-कर्म आखोंके लिये विशेष लाभदायक है।

त्राटक-कार्य के लाभ

आंखोंकी दृष्टि बढ़ती है। आखोंमें और आंखों के ऊपरकी त्वचामें अत्यन्त सूक्ष्म वायुवाहिनी आर रक्तवाहिनी नाड़ियां होती हैं। इन नाड़ियों में आखों को जीवन-तत्त्व देनेकी शक्ति यथेष्ट मात्रामें नहीं रहती है। इससे आंखोंकी दृष्टि मन्द पड़ जाती है। त्राटकके समय आंखोंकी नाड़ियां सशक्त बनती हैं। आखोंको फिराते समय नाड़ियोंमें

तनाव आता है। इस तनावसे नाड़ियां सबल बनती हैं। वे आंखोंको आवश्यक पोषक तत्व पहुँचानेमें समर्थ होती हैं। आंखोंकी व्यर्थ उष्णताका शमन होता है। असली उष्णता का सचार होता है।

सूचना

यदि आंखोंकी दृष्टि अधिक मन्द हो तो त्राटक करनेसे पहले गुलाब जलसे आखोंको धो लेना चाहिये।

आंखें धोनेकी विधि

आंखोंके ग्लासों (Eye-Glass) में शुद्ध गुलाबजल भरकर आंखोंमें लगाये। शिर थोड़ा झुका हुआ हो। आखोंको गुलाबजलमें बारबार खोलना और बन्द करना चाहिये। पहले दिन १० बार करे। यह करने के बाद ५ सेकण्ड तक आंखें बन्द रखे। उसपर दोनो हाथोंकी उँगलियों द्वारा मालिश करे। फिरसे ग्लासोंको आखोंमें लगाये। इसी तरह १० बार आंखोंको बन्द करे और खोले। दूसरे दिन १५ बार करे। तीसरे दिन २० बार करे। ४ थे दिन २५ बार करे। २५ बार करने के बाद आखोंको खोलकर पुतलियोंको ऊपर-नीचे, दायें-बायें घुमाये-चारों ओर ५।५ बार। गुलाबजलमें आखें धोते समय आंखों में जलन होनेकी सम्भावना है। आंखोंसे पानी निकल सकता है। किन्तु उस दशामें भी अभ्यास बन्द न करे, चालू रखे, अन्यथा लाभ न होगा। त्राटकके समान ही आंखों को बन्द रखे और खोले। यदि खोलने के समय आंखें बन्द होनेके लिये विवश होती है एव बन्द करते समय खुलना चाहती हैं तो लाभ उतना नही होगा। आखोंको स्वाभाविक अवस्थामे रखे; न अधिक खोलकर रखे और न अधिक बन्द। यदि बन्द होनेकी सम्भावना है तो साधारण खोलकर रखे। आंखोंमें पानी आनेके समय उनके बन्द होनेकी सम्भावना है; लेकिन बन्द नहीं करना चाहिये। जिनका मन अधिक अस्थिर, शरीर रोगी, मन चिन्तित और भयातुर है; अभ्यासकालमें वारवार उनकी आंखोंका बन्द होना सम्भव है। पानी भी अधिक गिर सकता है। ऐसा भी हो सकता है कि पानी बिलकुल न गिरे। यदि पानी अधिक गिरे तो अभ्यासकी कालावधि को कुछ कम कर सकते है। पानी आना बन्द हो जानेके वाद अभ्यासकाल को क्रमशः बढा सकते हैं। नेतिकर्म और ब्राह्मी तेल द्वारा भी आखोंकी ज्योति बढाने में सहायता ले सकते है। जीवनतत्त्वयुक्त आहार लेना भी आवश्यक है। दिनमें एकबार प्रातःकाल अथवा सायकाल गुलाबजलका प्रयोग

करें। जो लोग दृष्टि बढ़ाने के लिये त्राटक, गुलाबजल, नेति, ब्राह्मी तेल आदिका उपयोग कर रहे हैं, उनकी दृष्टि ३ से ६ मासतक बढ़ेगी। यदि उम्र अधिक है, अर्थात् ५० से ६० वर्षतक है तो अधिक समय भी लग सकता है। पहले महीनेमें ही इसका प्रत्यक्ष लाभ मालूम होगा। दृष्टि बढ़ानेके लिये ५ मिनटसे आध घण्टेतक शीर्षासन भी करना चाहिये। वृद्धावस्था अथवा शारीरिक अशक्ति के कारण यदि शीर्षासन न हो सके तो अर्ध सर्वांगासन पांच मिनिटतक करे। त्राटकके अभ्यास कालमें इस भावनाको निरन्तर बलवती रखें कि आखोंकी ज्योति बढती जा रही है, नेत्रोंके अंग-प्रत्यंग सशक्त बन रहे हैं—नीरोग बन रहे हैं। उनमें तेजोवृद्धि हो रही है। उत्तरोत्तर वाछित लाभ मिल रहा है। सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ इन्हीं भावनाओंको मनमें दुहराये। इस समय मुखमण्डल प्रसन्न और प्रफुल्ल रहे। इससे मानसिक (Psychic-effect) सुपरिणाम हो जाता है।

त्राटकके समय मनमें अत्यन्त उच्चकोटिकी भावनाओंका प्रादुर्भाव होता है। सात्त्विक गुणोंका विकास होता है। आध्यात्मिक विषयमें रुचि रखनेवाले स्त्री-पुरुषोंको थोडी देर आंखोंको खुला रख कर बन्द करना चाहिये और तत्पश्चात् इष्टदेवताको भ्रुकुटी या हृदयमें आसीन करना चाहिये। शारीरिक स्वास्थ्यके लिये अभ्यास करनेवाले साधकोंके लिये जो नियम निर्धारित किये गये हैं; वे आध्यात्मिक दृष्टि से प्रयास करनेवाले साधकोंपर लागू नहीं होते हैं। वे अधिक समयतक त्राटक कर सकते हैं।

आयु

८ से १०० वर्षतक के स्त्रीपुरुष सभी ऋतुओंमें त्राटक कर सकते हैं।

छः प्रकार के मलशोधक कार्योंकी विधि समाप्त

आसन विभाग

स्वर्ण–वाक्य

★ (१) जीविकोपार्जनके समयको छोडकर अन्य समग्र समयका सदुपयोग सत्संग, योगाभ्यास, तीर्थयात्रा, सत्‌शास्त्रोंके पठन–पाठन और एकांतवास मे करें।

(२) जैसे स्थूल शरीरको अन्न–जल आदि से हृष्ट–पुष्ट किया जाता है, उसी तरह अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार) को पवित्र तथा निर्भय रखनेके लिये उच्चकोटि के विचार, मन्त्र अर्थ के साथ और सदुपदेश ग्रहण करते हुए प्राकृतिक सौन्दर्यके दर्शन करें।

(३) आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक दुःख कब आ पडेगा, इसका कोई भरोसा (विश्वास) नही है। अतः इन सब दुःखों का सामना करने के लिये हर घडी, हर क्षण, हर समय, हर दिन आप अपने जीवनकी परीक्षा स्वय ही करते रहें और देखें कि आप अपना आत्मविश्वास कहीं खो तो नहीं बैठे हैं ? आपके मन में मलिन भाव, दुराचार, तामसिक वृत्तियोंका का उद्‌भव तो नही हो गया है ? आप तमोगुणी आहार का सेवन तो नहीं करने लगे हैं ? दुष्टोंकी सगति में तो नही पड़ गये हैं ? आचारभ्रष्ट तो नही हुए ? गन्दे स्थानमें निवास तो नही करते ? दूसरे को मन–वचन–कर्म से प्रतारित करने–फँसाने–का काम तो नहीं करते ? गन्दे वस्त्रोंका परिधान तो नहीं करते ? आश्रमके नियमोंके विरुद्ध वीर्यका अपव्यय और दुरुपयोग तो नहीं करते ? इन सब बातोंपर ध्यान रखते हुए 'हरि ॐ तत्सत्' 'ॐ नमः शिवाय' 'सो ऽ ह' आदि एक या अनेक मन्त्रोको गुरुमुख से सुनकर उनका वारवार भावार्थसहित स्मरण, मनन और निदिध्यासन करते रहें। आपका जीवन दुःखोंसे मुक्त होकर परम सुखकी अनुभूतिमें मग्न हो उठेगा। पाठकवृन्द, स्मरण रखें कि आपको अपने उद्धार के विविध प्रयत्न चालू रखनेके साथ-साथ अतिथि–सत्कार, गुरुजनोंकी सेवा, घरके यजमानकी सेवा, माता–पिताकी सेवा और आत्मज्ञान–प्राप्तिकी प्रवृत्ति जारी रखनी पडेगी।

—योगिराज उमेशचन्द्रजी

आसन

आसनकी प्रत्यक्ष चर्चा करने से पहले प्राचीन महात्माओने आसनों की चर्चा किस व्याख्याके साथ प्रस्तुत कर दी है, यह देखना उचित होगा।

स्थिरसुखमासनम् ।

—पातंजल योगदर्शन, साधनपाद, सूत्र ४६

जिस विधिसे आसानीसे बैठ सकते हैं उसे आसन कहते है।

हठस्य प्रथमांगत्वादासनं पूर्वमुच्यते ।
कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्य चांगलाघवम् ॥

—हठयोगप्रदीपिका

हठयोग अर्थात् अष्टांग योगके प्रथमांग को आसन कहते हैं। स्थिर होने के लिये आसनोंका अभ्यास करना चाहिये। आसनोंसे शरीर आरोग्यमय और स्फूर्तिदायक होता है।

आसनानि समस्तानि यावंतो जीव-जंतवः ।

—घेरंडसंहिता

जितने जीवों के प्रकार हैं, उतने ही आसनभी हैं।

यम, नियम और तदन्तर्गत षट्कर्म-विधि सम्पन्न होने के वाद अब योग के तृतीय अंग-आसन के अभ्यास का मार्गदर्शन कराया जा रहा है।

भारतवर्ष में प्राचीन कालसे योगाभ्यास की परम्परा चली आ रही है। योगमार्गपर प्रवृत्त होकर व्यवहार और परमार्थ का जीवन भलीभांति चलाया जा

सकता है। इसके द्वारा मानव शरीर से, मनसे, ऐश्वर्य, विज्ञान और आत्मज्ञान से अपनी जीवन-नौका अच्छी तरह चला सकता है। हमारे पूर्वज लम्बे आयुष्य का उपभोग करते थे। उनका शरीर सम्पूर्ण नीरोग रहता था। वे धैर्य, तेज तथा ओज से सम्पन्न थे। **यह जो कुछ उन्हें उपलब्ध था; वह कैसे? और क्यों?** इसके अन्य अनेक कारणोंमें योगाभ्यास भी एक मुख्य कारण था। योगाभ्यास के आरम्भ और उसके नियमित होनेपर व्यक्ति के जीवन में असाधारण परिवर्तन सघटित होता है। देखा जाता है कि योगाचरण से अधार्मिक धार्मिक, रोगी नीरोगी, अनैतिक नैतिक, दुराचारी सदाचारी, मन्दबुद्धि तीव्र बुद्धि और कुमार्गी सन्मार्गके पथिक बनते हैं। वे आचार-विचार को वैज्ञानिक ढंगसे समझने लगते है। सत्यके पारखी होते हैं। व्यवहारकुशल होते हैं। परमार्थ में अग्रणी बनते हैं। आजके समाजकी गिरी दशा, अर्थात् चारित्रिक पतन के लिये उत्तरदायी कारणोंमें यह कारण मुख्य गिना जायेगा कि आजका शिक्षित और सभ्य कहा जानेवाला समाज योगाभ्यासको केवल सन्यासी, त्यागी, विरागी, नदी-तटवासी, कन्दरानिवासी, तीर्थपर्यटक, एकान्तसेवी और साधु बाबा आदि कहलानेवालोंके करनेका साधन मानता है। अन्य लोगोंके अर्थात् सांसारिक लोगोंके करनेमें हानि समझ बैठा है। उनके मुंहसे ऐसे भ्रान्त विचार सुननेको मिलते हैं कि योगसाधनसे शायद घर छोड़कर जंगलमें भाग जाना पड़ेगा। अनेक रोग हो सकते हैं। दुर्बलता भी आ सकती है। पागलपन पीछा पकड़ सकता है। ऐसी बातें कहनेवाले प्रायः वही लोग होते है, जो व्यसनोंसे सदा घिरे रहते हैं अथवा योगाभ्यासके उत्तम फलोंसे पूर्णतया अनभिज्ञ हैं। उनके शरीरमें कितने ही रोगों और मलका भराव है; यह स्वयं वे भी नहीं जानते। वे डाक्टरोंके यहा तो नित्य चक्कर मारेंगे; किन्तु प्राकृतिक उपचारकी बात उनकी समझमें नहीं आयेगी। जिन्हें प्राकृतिक जीवन या योगके सम्बन्धमें कोई जानकारी नहीं, वे अप्राकृतिक जीवनकी दिशा ग्रहण करते है। सच कहा जाये तो हमारे पूर्वज गृहस्थाश्रमी थे; सदाचारी थे; योगागाभ्यासी थे और धर्मभावनासे भरपूर थे। इन सब कारणोंने उनके जीवनको सुचारुता प्रदान की थी; देवत्व प्रदान किया था। वे वैयक्तिक और सामाजिक जीवनमें तन-मन-धनसे सन्तुष्ट और सुखी थे। क्षण-क्षणमें भय, शंका, सन्देह, बीमारी आदिसे मुक्त थे। आजके लोगोंकी तरह तन-मनकी व्याधियोंसे पीड़ित नहीं रहते थे।

व्यायाम के अन्य प्रकार और योगासनों की विशेषता

हम लोग प्रतिदिन जो भोजन करते है, उसे अन्नाशय, छोटी आत आदि अवयवोंके द्वारा शरीरको पचाना पड़ता है। भोजन के उचित पाचनके लिये व्यायामकी आवश्यकता होती है। व्यायाम अनेक प्रकारके होते है। दौड़ना, टहलना, तैरना, घोड़ेकी सवारी, दण्ड-बैठक, कुश्ती, मलखम्भ, सिंगल बार, डबल बार, सायकल सवारी, टेनिस, हॉकी, बॅडमिन्टन, क्रिकेट आदि सभी व्यायामोंके लिये कितनी ही शर्तें पूरी करनी पड़ती है। जैसे अनेक साधन, स्थान, अन्य व्यक्ति, समय, आयुकी अनुकूलता, ऋतु आदि। किन्तु योगाभ्यासमें कमसे कम साधन, समय, ऋतु, परिश्रम आदि की जरूरत होती है और लाभ उक्त व्यायामोंसे अधिक प्राप्त होता है। सभी स्त्री-पुरुष योगाभ्यास कर सकते है। आयु यहा बाधक नहीं होती। ऋतु अड़चन नहीं डालती। शरीर के रोग निकल भागते है। उनके पुनरागमन की सम्भावना समाप्त हो जाती है। विचार निर्मल और पवित्र हो जाते है। इन सभी कारणों से योग न केवल ब्रह्मचारियों और वानप्रस्थों के लिये है, बल्कि गृहस्थाश्रमी लोगों के लिये भी उतना ही उपयोगी है। योगाभ्यासियो की सन्तान नीरोगी और वीर्यवान् होती है। योगाभ्यासी के साथ कोई दुर्व्यसन नहीं होता, अतः वे प्रकृत्या शरीर आर मनसे निर्मल और स्वस्थ होते हैं और इसका प्रभाव उनकी सन्तानपर भी पड़ता है। निर्व्यसनी होने से उनकी सप्तधातुओंका स्वाभाविक निर्माण होता है और वे निर्मल होती है। रस, रक्त, मास, मज्जा, मेद, हड्डी, आर वीर्य अथवा रज शुद्ध बनते है। सभी अवयव विकासवान्, प्रफुल्ल और शक्तिसम्पन्न होते है। शरीरमें चरबी न कम होती है; न अधिक। शरीर आयु के अनुसार सतुलित और उचित वजन का होता है। वात, पित्त और कफके विकार नष्ट हो जाते हैं। वीर्य-दोष अथवा रजस्-दोष निकल जाते हैं। शान्त और गहरी निद्रा आती है। पाचनशक्ति बढती है। इसके अतिरिक्त योगाभ्यासके और भी अनेकशः लाभ हैं। आसन-प्रकरणमें उनका आसनोंके अनुसार पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया है। पाठकों को यह बात भलीभाति ध्यानमें रखनी चाहिये कि योगाभ्यासी के मनमें किसी प्रकारका भय या शका नहीं रहनी चाहिये। स्वय करे और अन्य लोगोंको भी यह पवित्र साधन करनेके लिये प्रेरित करे। याद रहे, योगाभ्यास दैवी विद्या है। दैवी विद्या की उपेक्षा या अवहेलना मानवजातिके लिये उचित और हितकर नहीं। जो लोग इसका अभ्यास करना चाहते हैं, जिनमें उत्कण्ठा और लगन है, उन्हें रोक देना अन्याय है। खाद्यपदार्थ-जिनका हम नित्य उपयोग करते हैं-परिमाण, अवस्था आदिका विचार

किये बिना हानि पहुँचाते हैं। जैसे मन्दाग्निमें घी या बादाम लाभकर सिद्ध नहीं हो सकते। विचारपूर्वक ही हमें ऐसा भोजन लेना चाहिये, जो शारीरिक स्वास्थ्यको कायम रखे और बढ़ा भी सके। उसी तरह आसनोंको, जो योगसाधनके महत्त्वपूर्ण अंग हैं-बिना समझे-विचार किये या चाहे जैसे करनेमें यदि वाछित लाभ न हो तो इसमें आसनोंका कोई दोष नहीं है। योग्य और उचित विधिसे किया गया योगाभ्यास आशासे अधिक लाभकर सिद्ध होता है। प्रतिदिन आधसे एक घण्टेतक योगाभ्यास करना चाहिये। स्त्रियां मासिकधर्म और गर्भाधान की अवस्था में आसनादि न करें। हृदय-रोग, रक्तचाप, हैजा, अतिसार, (Heart Disease, Bloodpressure, Constipation Dysentry) तीसरे दर्जेके क्षय-रोगी (T. B.) और तीसरे दर्जेके दमाके (Asthma) रोगियोंको आसन न करना चाहिये। गलित कुष्ठ और वात-पित्त-कफ के अतिरेकवाले स्त्री-पुरुषों को भी आसनादि नहीं करने चाहिये। उक्त रोगोंसे पीड़ित लोग उचित परामर्शके अनुसार कुछ विशेष अवस्थाओंमें आसनादि कर सकते हैं।

योगाभ्यासके लिये आरम्भिक नियम

भोजनके तीन घण्टे के पश्चात् योगाभ्यासकी आसनादि क्रियायें कर सकते हैं। आसन करनेके २० मिनटके बाद भोजन कर सकते हैं। दूध, फलोंका रस आदि द्रव पदार्थ लेकर एक घण्टे के बाद आसन कर सकते हैं। स्नानके पश्चात् योगाभ्यास करना चाहिये। स्नान भी शीतल जल से करें। आयु, ऋतु आदि को दृष्टि में रखकर साधारण गरम पानीसे भी स्नान किया जा सकता है।

स्थान और साधन-सामग्री

योगाभ्यासका स्थान स्वच्छ हो। एक ही स्थानपर सदैव अभ्यास करना विशेष ठीक होगा। समय भी एक ही निश्चित रखना चाहिये। प्रतिदिन बदलना ठीक नहीं। शरीरमें अधिक और कसे वस्त्र न हों। नेकर पहन कर करनेमें अधिक लाभ होता है। स्वच्छ और समतल भूमिपर शुद्ध खादीका वस्त्र बिछाना उपयुक्त होगा। जहां योगाभ्यास करना हो, वहां सन्तों-महात्माओंके सुन्दर आदर्श वाक्य भी लगाने चाहिये। कमरेमें अगरबत्ती या धूप सुलगाकर रखना चाहिये। इससे आनन्द, प्रफुल्लता और स्वास्थ्य की भावनायें उद्दीप्त होंगी। नदी-तटपर, मैदान और बगीचेमें अभ्यास कर सकते हैं। यह आवश्यक नहीं कि अभ्यास केवल कमरेमें ही हो। वायुवेग अधिक न

हो और वह सीधे मुहपर आकर न लगता हो। नदी, झील या समुद्रके किनारे अभ्यास करनेवालोंको जलसे १०-१५ फीट दूर बैठकर आसनादि करने चाहिये। गन्दगी और धूल साधन-स्थानमें न हों। पत्थरपर भी अभ्यास कर सकते हैं। उसपर मोटा कपडा बिछाकर फिर उसपर अभ्यास करना उपादेय होगा। अभ्यास-कालमें वर्षाका जल ऊपर पडना न चाहिये।

अन्य आवश्यक निर्देश

अभ्यास कालमें मनमें निरन्तर शुभ विचार और भावनाओंका सिलसिला होना चाहिये। अभ्यास कालमें आखें बन्द भी रख सकते हैं और खुली भी। सिंहासन और व्याघ्रासन-जैसे अपवादोंको छोडकर अन्य आसनोंके साधनमें मुह बद रखना चाहिये। शरीर अधिक तना या ढीला न रहे, मध्यम स्थितिमें रहे। अपवादरूपेण यदि किसी आसन-क्रियामें तनावसे काम लेना पडे तो वाछित समयतक ही तनावकी स्थिति रखनी चाहिये और फिर मध्यम स्थितिमें आ जाना चाहिये। चश्मा लगानेवालों को चश्मा बाहर निकाल कर ही अभ्यास करना चाहिये। घड़ी, बूट, चम्पल आदि पहने रहकर अभ्यास न करें। चाय-काफी, बीड़ी-सिगरेट, तम्बाकू, शराब, अफीम, मास-मछली, ताड़ी, भाग, सोडा लेमन आदि उत्तेजक पदार्थों से दूर रहना चाहिये। यदि ये पदार्थ लम्बे समयतक गृहीत हो चुके हैं तो इन्हें प्रयत्नपूर्वक धीरे-धीरे छोड़ देना चाहिये। एक महीने के अन्दर ही दुर्व्यसनोंसे मुक्त हो जाना चाहिये। यदि दुर्व्यसन न छूटेंगे तो साधना का उचित लाभ भी न मिलेगा और यदि थोड़ा-बहुत लाभ मिलेगा भी तो अल्प समय के लिये। स्थायी लाभ दुर्व्यसनों से मुक्त होनेपर ही सम्भव है। सिनेमा आदि देखना भी वर्जित है। फिर भी, लम्बे समय के बाद एकबार देखने की छूट मिल सकती है। चित्र का धार्मिक, नैतिक या विचारपूर्ण सामाजिक होना अनिवार्य है, अन्यथा देखना उचित न होगा। कम से कम आठ घण्टे सोना चाहिये। रातमें १० बजेतक सो जाना चाहिये और प्रातःकाल ६ बजेसे पूर्व उठ जाना चाहिये। सोने और उठनेके समय में १० बजेके बाद सोना और ६ बजेके बाद उठना योगाभ्यासमें भलीभांति सहायक नहीं होगा। यथासम्भव रातके १२ बजेसे पूर्व ही नींद लेना अधिक उपयोगी होगा। अधिक शक्तिशाली और स्फूर्तिवान् बननेके लिये १२ बजेतक की नींद अच्छी मानी जाती है। इसलिये जलदी सोना और जलदी उठना चाहिये।

किये बिना हानि पहुँचाते हैं। जैसे मन्दाग्निमें घी या बादाम लाभकर सिद्ध नहीं हो सकते। विचारपूर्वक ही हमें ऐसा भोजन लेना चाहिये, जो शारीरिक स्वास्थ्यको कायम रखे और बढ़ा भी सके। उसी तरह आसनोंको, जो योगसाधनके महत्त्वपूर्ण अग हैं-बिना समझे-विचार किये या चाहे जैसे करनेमें यदि वाछित लाभ न हो तो इसमें आसनोंका कोई दोष नहीं है। योग्य और उचित विधिसे किया गया योगाभ्यास आशासे अधिक लाभकर सिद्ध होता है। प्रतिदिन आधसे एक घण्टेतक योगाभ्यास करना चाहिये। स्त्रियां मासिकधर्म और गर्भाधान की अवस्था में आसनादि न करें। हृदय-रोग, रक्तचाप, हैजा, अतिसार, (Heart Disease, Bloodpressure, Constipation Dysentry) तीसरे दर्जेके क्षय-रोगी (T. B.) और तीसरे दर्जेके दमाके (Asthma) रोगियोंको आसन न करना चाहिये। गलित कुष्ठ और वात-पित्त-कफ के अतिरेकवाले स्त्री-पुरुषों को भी आसनादि नहीं करने चाहिये। उक्त रोगोंसे पीड़ित लोग उचित परामर्शके अनुसार कुछ विशेष अवस्थाओंमें आसनादि कर सकते हैं।

योगाभ्यासके लिये आरम्भिक नियम

भोजनके तीन घण्टे के पश्चात् योगाभ्यासकी आसनादि क्रियायें कर सकते हैं। आसन करनेके २० मिनटके बाद भोजन कर सकते हैं। दूध, फलोंका रस आदि द्रव पदार्थ लेकर एक घण्टे के बाद आसन कर सकते हैं। स्नानके पश्चात् योगाभ्यास करना चाहिये। स्नान भी शीतल जल से करें। आयु, ऋतु आदि को दृष्टि में रखकर साधारण गरम पानीसे भी स्नान किया जा सकता है।

स्थान और साधन-सामग्री

योगाभ्यासका स्थान स्वच्छ हो। एक ही स्थानपर सदैव अभ्यास करना विशेष ठीक होगा। समय भी एक ही निश्चित रखना चाहिये। प्रतिदिन बदलना ठीक नहीं। शरीरमें अधिक और कसे वस्त्र न हों। नेकर पहन कर करनेमें अधिक लाभ होता है। स्वच्छ और समतल भूमिपर शुद्ध खादीका वस्त्र बिछाना उपयुक्त होगा। जहां योगाभ्यास करना हो, वहां सन्तों-महात्माओंके सुन्दर आदर्श वाक्य भी लगाने चाहिये। कमरेमें अगरबत्ती या धूप सुलगाकर रखना चाहिये। इससे आनन्द, प्रफुल्लता और स्वास्थ्य की भावनायें उद्दीप्त होंगी। नदी-तटपर, मैदान और बगीचेमें अभ्यास कर सकते हैं। यह आवश्यक नहीं कि अभ्यास केवल कमरेमें ही हो। वायुवेग अधिक न

हो और वह सीधे मुहपर आकर न लगता हो। नदी, झील या समुद्रके किनारे अभ्यास करनेवालोंको जलसे १०–१५ फीट दूर बैठकर आसनादि करने चाहिये। गन्दगी और धूल साधन–स्थानमें न हों। पत्थरपर भी अभ्यास कर सकते हैं। उसपर मोटा कपड़ा बिछाकर फिर उसपर अभ्यास करना उपादेय होगा। अभ्यास–कालमें वर्षाका जल ऊपर पडना न चाहिये।

अन्य आवश्यक निर्देश

अभ्यास कालमें मनमें निरन्तर शुभ विचार और भावनाओंका सिलसिला होना चाहिये। अभ्यास कालमें आखें बन्द भी रख सकते हैं और खुली भी। सिंहासन और व्याघ्रासन–जैसे अपवादोंको छोडकर अन्य आसनोंके साधनमें मुह बद रखना चाहिये। शरीर अधिक तना या ढीला न रहे; मध्यम स्थितिमें रहे। अपवादरूपेण यदि किसी आसन–क्रियामें तनावसे काम लेना पडे तो वाछित समयतक ही तनावकी स्थिति रखनी चाहिये और फिर मध्यम स्थितिमें आ जाना चाहिये। चश्मा लगानेवालों को चश्मा बाहर निकाल कर ही अभ्यास करना चाहिये। घड़ी, बूट, चम्पल आदि पहने रहकर अभ्यास न करें। चाय–काफी, बीड़ी–सिगरेट, तम्बाकू, शराब, अफीम, मास–मछली, ताड़ी, भाग, सोडा लेमन आदि उत्तेजक पदार्थों से दूर रहना चाहिये। यदि ये पदार्थ लम्बे समयतक गृहीत हो चुके हैं तो इन्हें प्रयत्नपूर्वक धीरे–धीरे छोड़ देना चाहिये। एक महीने के अन्दर ही दुर्व्यसनोंसे मुक्त हो जाना चाहिये। यदि दुर्व्यसन न छूटेंगे तो साधना का उचित लाभ भी न मिलेगा और यदि थोड़ा–बहुत लाभ मिलेगा भी तो अल्प समय के लिये। स्थायी लाभ दुर्व्यसनों से मुक्त होनेपर ही सम्भव है। सिनेमा आदि देखना भी वर्जित है। फिर भी, लम्बे समय के बाद एकबार देखने की छूट मिल सकती है। चित्र का धार्मिक, नैतिक या विचारपूर्ण सामाजिक होना अनिवार्य है, अन्यथा देखना उचित न होगा। कम से कम आठ घण्टे सोना चाहिये। रातमें १० बजेतक सो जाना चाहिये और प्रातःकाल ६ बजेसे पूर्व उठ जाना चाहिये। सोने और उठनेके समय में १० बजेके बाद सोना और ६ बजेके बाद उठना योगाभ्यासमें भलीभाति सहायक नहीं होगा। यथासम्भव रातके १२ बजेसे पूर्व ही नींद लेना अधिक उपयोगी होगा। अधिक शक्तिशाली और स्फूर्तिवान् बननेके लिये १२ बजेतक की नींद अच्छी मानी जाती है। इसलिये जलदी सोना और जलदी उठना चाहिये।

जलका उपयोग

शहरके निवासियोंको नलके जलका उपयोग अनिवार्य रूपसे करना पड़ता है। यह जल आवश्यक जीवन-तत्त्वोंसे (लोह, फॉस्फेटस् एवं गंधक से) युक्त नहीं होता। रोगोत्पादक कीटाणुओंको मारनेके लिये उसमें कई औषधियां (क्लोरीन आदि) डाली जाती हैं। फलतः जलके उपयोगी तत्त्व प्रभावित होते है और कुछ तत्त्व कम या बिलकुल नष्ट हो जाते हैं। इससे मन्दाग्नि, मलबद्धता, रक्त की अशुद्धि आदि रोग हो सकते हैं। योगसाधकों को जल गरम कर उसे ठण्डा कर रख लेना चाहिये और उसका उपयोग पीने में करना चाहिये। इस प्रकारका पानी यदि लाभदायक नहीं तो हानिप्रद भी नहीं होता। शरीरकी अन्न-पाचन-क्रियाको कोई कठिनाई नहीं होती। भोजनके एक घण्टेके बाद पानी पीना चाहिये और फिर दो-दो घण्टेके अन्तरसे जलका सेवन करते रहना चाहिये। ऋतु, अवस्था, प्रकृति आदिके अनुसार पानी अधिक या कम करके पीना चाहिये। प्रातःकाल उठकर दन्तधावनके पश्चात् एक गिलास पानी पीना चाहिये। शीतकाल में साधारण गरम जलका भी व्यवहार कर सकते हैं। अन्य ऋतुओंमें शीतल जल विशेष उपयोगी है। कफ और वायुप्रधान प्रकृतिके लोगोंको तावे या पीतलके बर्तन का पानी पीना चाहिये। पित्तप्रकृतिवालोंको मिट्टी के बर्तनका पानी पीना चाहिये। मलविसर्जनके पश्चात् ही आसनादिका अभ्यास करना चाहिये। यदि किसी कारणवश ठीक रूपसे मल-विसर्जन नही हुआ तो भी आसन कर सकते है। पेशाबको रोककर आसन न करें। रातमें काम करनेवालोंको आठ घण्टेकी नींद लेनेके उपरान्त ही आसनादि का अभ्यास करना चाहिये। जिनके शरीरमें अधिक मात्रामें चरबी है, ऐसे लोगोंको श्वास बाहर निकालकर अथवा थोड़ा भरकर आसन करने चाहिये। जिनका शरीर कृश है; वजन कम है; उन्हें यथाशक्ति श्वास भरकर ही आसनादि करने चाहिये। जिनके फेफड़े कमजोर हों; सकुचित हों, उन्हें श्वासको अधिक नहीं भरना चाहिये, अधिक रोककर भी नहीं रखना चाहिये। आसनके साधकोंको थोड़े दिनोंतक हाथ-पैर की सन्धियोंमें पीड़ा भी हो सकती है। पद्मासन आदिमें बैठनेके लिये कठिनाइया भी मालूम पड़ेंगी। ऐसे समय लोग आसनादि का अभ्यास यह कहकर छोड़ न दें कि यह हमसे न होगा। अभ्यास लगातार चालू रखना चाहिये। थोड़े दिनोंमें कठिनाइयोंका अपने आप निवारण हो जायेगा; वेदना दूर हो जायेगी। हाथ-पैरोंकी सन्धियां भलीभाति मुड़ने लगेंगी। उनमें अनुकूल लचक आ जायेगी। प्रत्येक आसन करते समय स्थिरता लाना अत्यावश्यक है। स्थिरता बढाते रहना चाहिये;

मनको भी स्थिरता प्रदान करनी चाहिये, अर्थात् मनमें सासारिक विचारोंकी ऊहापोह न रहनी चाहिये। उलझन न हो। निश्चिन्तता लाना जरूरी है। चित्तवृत्ति शात होनी चाहिये। आसनादि क्रियाओंको करने में न तो अधिक उतावलापन दिखाना चाहिये और न अधिक मन्दता। सन्तुलित प्रयास आवश्यक है। आसन करते समय पसीना आता है, उससे यदि दुर्गन्ध आती हो तो तौलिये से पोंछ डालना चाहिये। यदि पसीनेमें दुर्गन्ध नहीं है तो उसे शरीर में मल देना चाहिये। शरीर के पसीने के साथ रोगमूलक तथा विजातीय द्रव्य बाहर निकलते हैं, ऐसा अनुभव करते रहना चाहिये। पसीने में दुर्गन्ध नही है तो समझना चाहिये कि शरीर नीरोग है।

आसन करनेवालेका आहार घटता क्यों है?

एक मासके पश्चात् ही आसना का लाभ मालूम पडेगा। यदि लाभमें देर हो तो समझना चाहिये कि शरीर में अधिक मात्रामें विजातीय द्रव्योंका सग्रह है। कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि आसन, प्राणायाम आदि के अभ्यास-काल में स्त्री-पुरुषों को भूख कम लगती है। फिर भी, शरीरका वजन सतुलित रहता है। शरीर की शक्ति और ओज में वृद्धि होती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि हम जो कुछ प्रतिदिन भोजन करते है; वह परिमाण में अधिक होता है और जितनी मात्रा में में पानी और वायु के पोषक तत्त्वों की आवश्यकता होती है, उतने हमें मिल नहीं पाते। इनका मिलना नितान्त आवश्यक है। परिणामतः हमारे शरीर के सामर्थ्य और तेज में कमी आती है। योगाभ्यास का सीधा परिणाम यह होता है कि हमारे शरीर के विभिन्न अग पानी आर वायु के आवश्यक तत्त्व खींच लेते है, इससे अधिक आहार लेने की आवश्यकता नहीं रहती। योगाभ्यासी का शरीर न अधिक पतला होता है और न अधिक मोटा होता है, संतुलित होता है। सभी इन्द्रिया-पांच ज्ञानेन्द्रिया और पाच कर्मेन्द्रिया-सतेज और बलवान् रहती हैं। योगाभ्यासी में सहनशक्ति अधिक होती है। किसी जीवनोपयोगी उत्कृष्ट कार्य में बाधा आ पड़नेपर भी वह विचलित नही होता-पीछे नहीं हटता-किसी तरह से भी उस कार्य को सफल बनाता है। योगाभ्यासी दुराचारी की संगति नहीं करते। सत्सग में रहते है। पवित्र वस्तु और स्थान ही वे अपनाते हैं। पवित्र जीवन ही उनका अभ्यास और लक्ष्य रहता है। दूसरे की भलाई में वे अपना भला देखते हैं। यही उनके जीवनका मन्त्र होता है। सासारिक जीवन-यात्रामें वे निर्भय होकर चलते हैं। तन और मनसे सन्तुष्ट रहते हैं। सुख और आनन्द ही उनका लाभ होता है

बहनोंके लिये योगासनोंका अभ्यास आवश्यक है या नहीं?

प्रायः यह प्रश्न उपस्थित किया जाता है कि बहनें (महिलायें) योगासनों का अभ्यास कर सकती हैं या नहीं? अतः यहां इस प्रश्नपर विचार करना आवश्यक है। कहा जाता है कि बहनें अपनी सन्तान के लालन-पालन, परिवार (घर) के कामकाज और सामाजिक सेवा-कार्य करती रहती हैं। इसके फलस्वरूप उन्हें उतना व्यायाम स्वतः मिल जाता है, जितना जरूरी है। ऐसी दशामें महिलाओंको आसन करने की जरूरत ही कहां रहती है? यह बात कुछ अंशोंमें सही है। हम भी मानते है कि बहनोंको घर-बाहर के बहुतेरे काम करने पड़ते हैं, किन्तु इस प्रवृत्तिमय जीवनमें भी जिन अवयवोंको जितने परिमाणमें व्यायामकी आवश्यकता है, उतना उन्हें मिल नहीं पाता है। जैसे कि कपड़ा धोते समय, मसालादि पीसनेमें और स्वयपाक करते समय केवल हाथोंको ही व्यायाम मिल पाता है; अन्य अवयवों को अत्यल्प परिमाणमें मिलता है। इसी प्रकार गृहोद्योग, सीना-पिरोना, पढ़ना-पढ़ाना आदि अनेक कार्योंमें व्यस्त रहने तथा टहलनेमें भी सर्वांग को व्यायाम मिल नहीं पाता। बहुतेरे अंग व्यायामके लाभ से वञ्चित ही रह जाते हैं; फलतः शरीर सांगोपाग नीरोग नहीं रहता और पुरुषोंकी तरह स्त्रिया भी रोगग्रस्त रहती है। किन्तु योगासनों के अभ्याससे जिस अवयवको जितने परिमाणमें रस, रक्त, मास, मज्जा आदि सप्तधातु आवश्यक हैं, वे सब यथोचित रूपमें मिलते रहते है। फलतः शरीरमें कोई रोग रहता है तो उसका निवारण हो जाता है और योगासनोंका साधन निरन्तर करते रहनेसे आजीवन आरोग्य की कुंजी (चाबी) मिल जाती है। ऊँचाई और आयुके अनुसार ही शरीरका वजन भी सप्रमाण और सन्तुलित रहता है।

अवश्य विचार करें

जो बहनें लज्जा (शर्म), संकोच, आलस्य, प्रमाद, दुराग्रह, अभिमान या अहकारके वशीभूत होकर योगासनोंका अभ्यास नहीं करतीं, उनका शरीर नीरोग नहीं रह सकता। सूखी हवा, खेतोंका काम, गावोंमें कूपजल या प्रवहमान नदीके शुद्ध जलका सेवन, शुद्ध सात्विक एवं सन्तुलित आहार ग्रहण करें और साथ ही सत्सग आदिमें समय बितायें तो बहनें तन-मनसे आरोग्यमय और सुखी जीवनका वरदान पा सकती हैं; अन्यथा नहीं। नागरिक जीवन में तो अशुद्ध वायु, अशुद्ध जल, अत्यल्प जीवनसत्त्वपूर्ण आहारका सेवन, चार आश्रमोंमें नितान्त पालनीय ब्रह्मचर्य का सर्वथा अभाव पाया जाता है। ऐसी दशामें बहनें नीरोगी कैसे रह सकती हैं?

अप्राकृतिक जीवन ही रोगका मूल कारण है और आरोग्यमय जीवनका मूल प्राकृतिक जीवन है। अस्तु, वर्तमान अप्राकृतिक जीवनमें भी यदि योगासनोंका अभ्यास उत्साह, लगन, विश्वास और प्रसन्नतासे किया जाये तो भविष्य में जीवनकी प्राकृतिक दिशामें प्रगति होने लगती है और अन्ततः जीवन प्राकृतिक बन जाता है।

माताओ और बहनो! आसनों के सम्बन्धमें सन्देह और भ्रम को त्यागकर आप श्रद्धापूर्वक अविलम्ब आसनोंका अभ्यास प्रारम्भ कर दें। इससे आपका शरीर रोगसे रहित होगा। मनमें शान्ति रहेगी और धनका अपव्यय बच जायेगा, अर्थात् आप तन, मन और धन से समृद्धिवान् बनेंगी।

बहनें आसन कब न करें?

सगर्भावस्था, प्रसूतिके पश्चात् दो मासतक, रजस्वलाकी अवस्थामें ४ या ५ दिनतक, शरीरमें अधिक निर्बलता रहनेपर, अत्यधिक कष्टदायक रोगोंसे पीड़ित रहनेपर किसी योगविशेषज्ञकी उचित सलाह लिये बिना बहनोंको आसन नहीं करना चाहिये।

बहनें कौन-सा आसन न करें?

पूर्णमत्स्येन्द्रासन, मयूरासन, वृश्चिकासन, गण्डभेरुण्डासन आदि कष्टप्रद आसनोंका अभ्यास बहनें न करें, क्योंकि उनके गर्भाशय आदि पेटके अवयव बहुत कोमल रहते है, अतः उनसे बहुत सावधानीसे काम लेना पड़ता है। अविवाहित या कुमारावस्थामें बहनें उक्त आसनोंका अभ्यास कर सकती हैं। फिर भी, किसी सुयोग्य मार्गदर्शककी सलाह-सूचना लेना आवश्यक है। पुरुषोंकी तरह महिलाओंके लिये भी नियम है कि भोजनके तीन घण्टेके पश्चात् वे आसन कर सकती है और आसन करनेके २० मिनटके पश्चात् भोजन कर सकती हैं।

बहनोंको आवश्यक सूचना

असाध्य रोग-जैसे तीसरी अवस्थापर पहुँचे हुए क्षय (T. B.), दमा (Asthma), केन्सर (Cancer), अतिसार (Dysentry), पाण्डुरोग (Anemia), हिस्टीरिया (Hysteria), (मृगी), ल्युकेरिया (Leuchoria) (प्रदर) तथा बहुतेरे अन्य कष्टसाध्य रोगोंसे ग्रस्त बहनें बिना किसी योगमार्गके विशेषज्ञ और शरीर-रचनाके अनुभवी व्यक्ति की सलाह-सूचना लिये आसनों का अभ्यास न करें।

आसन कितने हैं ?

आसनका अर्थ है बैठक। ८४ लक्ष योनियोंके खेचर, भूचर, जलचर एवं चराचर जगत् के जीवोंके बैठनेकी एक विधि है। इस विधिको आसन कहते हैं, अर्थात् ८४ लक्ष आसन बताये गये हैं। इन्हीं आसनोंमेंसे आर्य ऋषि-मुनियोंने ८४ आसनोंको ही अधिक महत्त्व दिया है, उन्हें अच्छी तरह अपनाया और उनका समुचित अभ्यास कर मानवजातिके कल्याणके लिये उनके लाभ जनसमाजके समक्ष उपस्थित किये हैं। प्रत्येक स्त्री-पुरुषके लिये प्रतिदिन ८४ आसन करना सम्भव नहीं। इसलिये इनमेंसे प्रमुख ३२ आसनोंका विधान किया गया है। यदि ३२ आसन करनेका भी समय न मिले, तो १६ आसनोंके दैनिक साधनकी अनिवार्य आवश्यकतापर बल दिया गया है। वैसे ४ आसन, २ आसन और १ आसनका अभ्यास करके भी कुछ लाभ उठाया जा सकता है। किन्तु वह लाभ अपूर्ण ही रहेगा। जो लोग ध्यान, मन्त्र-जप आदिके लिये एक आसन करना चाहते हैं, उनके लिये सिद्धासन उपयोगी होगा। शारीरिक स्वास्थ्य-सम्पादनकी दृष्टि से शीर्षासन हितकर है। यहा यह ध्यान रहे कि शरीरमें कोई बीमारी हो तो किसी निष्णात योगाभ्यासी की सलाह-सूचनाके बिना शीर्षासन करना नहीं चाहिये। चार आसनों की दैनिक साधना के अन्तर्गत सिद्धासन, स्वस्तिकासन (सुखासन), पद्मासन (कमलासन), शीर्षासन लाभप्रद होंगे। १६ आसनों में निम्नलिखित आसनों का समावेश होता है-(१) सिद्धासन, (२) शीर्षासन, (३) स्वस्तिकासन, (४) पद्मासन, (५) पूर्ण पद्मासन (योगमुद्रा), (६) मत्स्यासन, (७) शवासन, (८) पश्चिमोत्तानासन, (९) भुजंगासन, (१०) वज्रासन, (११) सुप्त वज्रासन, (१२) एकपाद उत्त्थानपादासन, (१३) अर्धमत्स्येन्द्रासन, (१४) पूर्ण मत्स्येन्द्रासन, (१५) सर्वांगासन (हलासन), (१६) उर्ध्वसर्वांगासन (विपरीतकरणी)। ३२ आसनों की साधनाके अन्तर्गत उपरिलिखित षोडश आसन-

समूहके सभी आसनोंका समावेश तो होता ही है, तदुपरान्त निम्नांकित १६ आसन और हैं:—(१) लोलासन, (२) मयूरासन, (३ मयूरी आसन, (४) विस्तृतपाद पश्चिमोत्तानासन (विस्तृतपाद वक्ष-भू-स्पर्शासन), (५) एकपाद-शिरासन, (६) द्विपाद-शिरासन, (७) एकपाद-पवन-मुक्तासन, (८) द्विपाद-पवनमुक्तासन, (९) एकपाद-शलभासन, (१०) द्विपाद शलभासन, (११) कर्णपीडनासन, (१२) गोमुखासन, (१३) एकपाद भुजासन, (१४) द्विपाद भुजासन, (१५) गोरक्षासन, (१६) सिंहासन।

८४ आसनोंका दिग्दर्शन

८४ आसनोंके अन्तर्गत ऊपर लिखे हुए १६ और १६ मिलकर ३२ आसनों के, अतिरिक्त शेष ५२ आसन निम्नलिखित हैं –

(१) कूर्मासन
(२) सुप्तधनुरासन
(३) वीरासन
(४) त्रिकोणासन
(५) सुप्तउर्ध्वहस्तासन
(६) तोलागुलासन (तुलासन)
(७) जानु-शिरासन
(८) नौकासन
(९) उत्कटासन
(१०) बकासन
(११) उर्ध्वपाद (शिरासन)
(१२) उर्ध्वपाद हस्तासन
(१३) चक्रासन
(१४) उष्ट्रासन
(१५) हसासन
(१६) उत्त्थान पादासन (द्विपाद)
(१७) पादागुष्ठासन
(१८) कुक्कुटासन
(१९) गर्भासन
(२०) वीर्यस्तम्भनासन
(२१) वृक्षासन
(२२) विस्तृतपाद सर्वांगासन
(२३) सुप्त द्विपाद शिरासन
(२४) वातायनासन
(२५) गरुड़ासन
(२६) निश्श्वासासन
(२७) द्वि-भुजासन
(२८) प्रार्थनासन
(२९) मण्डूकासन
(३०) कार्मुकासन
(३१) पर्वतासन
(३२) प्राणासन
(३३) अपानासन

आसन कितने हैं ?

आसनका अर्थ है बैठक। ८४ लक्ष योनियोंके खेचर, भूचर, जलचर एव चराचर जगत् के जीवोंके बैठनेकी एक विधि है। इस विधिको आसन कहते हैं, अर्थात् ८४ लक्ष आसन बताये गये हैं। इन्हीं आसनोंमेंसे आर्य ऋषि–मुनियोंने ८४ आसनोंको ही अधिक महत्त्व दिया है, उन्हें अच्छी तरह अपनाया और उनका समुचित अभ्यास कर मानवजातिके कल्याणके लिये उनके लाभ जनसमाजके समक्ष उपस्थित किये हैं। प्रत्येक स्त्री–पुरुषके लिये प्रतिदिन ८४ आसन करना सम्भव नहीं। इसलिये इनमेंसे प्रमुख ३२ आसनोंका विधान किया गया है। यदि ३२ आसन करनेका भी समय न मिले, तो १६ आसनोंके दैनिक साधनकी अनिवार्य आवश्यकतापर बल दिया गया है। वैसे ४ आसन, २ आसन और १ आसनका अभ्यास करके भी कुछ लाभ उठाया जा सकता है। किन्तु वह लाभ अपूर्ण ही रहेगा। जो लोग ध्यान, मन्त्र–जप आदिके लिये एक आसन करना चाहते हैं, उनके लिये सिद्धासन उपयोगी होगा। शारीरिक स्वास्थ्य–सम्पादनकी दृष्टि से शीर्षासन हितकर है। यहा यह ध्यान रहे कि शरीरमें कोई बीमारी हो तो किसी निष्णात योगाभ्यासी की सलाह–सूचनाके बिना शीर्षासन करना नहीं चाहिये। चार आसनों की दैनिक साधना के अन्तर्गत सिद्धासन, स्वस्तिकासन (सुखासन), पद्मासन (कमलासन), शीर्षासन लाभप्रद होंगे। १६ आसनों में निम्नलिखित आसनों का समावेश होता है–(१) सिद्धासन, (२) शीर्षासन, (३) स्वस्तिकासन, (४) पद्मासन, (५) पूर्ण पद्मासन (योगमुद्रा), (६) मत्स्यासन, ७) शवासन, (८) पश्चिमोत्तानासन, (९) भुजंगासन, (१०) वज्रासन, (११) सुप्त वज्रासन, (१२) एकपाद उत्त्थानपादासन, (१३) अर्धमत्स्येन्द्रासन, (१४) पूर्ण मत्स्येन्द्रासन, (१५) सर्वांगासन (हलासन), (१६) उर्ध्वसर्वांगासन (विपरीतकरणी)। ३२ आसनों की साधनाके अन्तर्गत उपरिलिखित षोडश आसन-

समूहके सभी आसनोंका समावेश तो होता ही है, तदुपरान्त निम्नांकित १६ आसन और हैं:—(१) लोलासन, (२) मयूरासन, (३ मयूरी आसन, (४) विस्तृतपाद पश्चिमोत्तानासन (विस्तृतपाद वक्ष-भू-स्पर्शासन), (५) एकपाद-शिरासन, (६) द्विपाद-शिरासन, (७) एकपाद-पवन-मुक्तासन, (८) द्विपाद-पवनमुक्तासन, (९) एकपाद-शलभासन, (१०) द्विपाद शलभासन, (११) कर्णपीडनासन, (१२) गोमुखासन, (१३) एकपाद भुजासन, (१४) द्विपाद भुजासन, (१५) गोरक्षासन, (१६) सिंहासन।

८४ आसनोंका दिग्दर्शन

८४ आसनोंके अन्तर्गत ऊपर लिखे हुए १६ और १६ मिलकर ३२ आसनों के अतिरिक्त शेष ५२ आसन निम्नलिखित हैं—

(१) कूर्मासन
(२) सुप्तधनुरासन
(३) वीरासन
(४) त्रिकोणासन
(५) सुप्तउर्ध्वहस्तासन
(६) तोलाङ्गुलासन (तुलासन)
(७) जानु-शिरासन
(८) नौकासन
(९) उत्कटासन
(१०) बकासन
(११) उर्ध्वपाद (शिरासन)
(१२) उर्ध्वपाद हस्तासन
(१३) चक्रासन
(१४) उष्ट्रासन
(१५) हंसासन
(१६) उत्थान पादासन (द्विपाद)
(१७) पादाङ्गुष्ठासन
(१८) कुक्कुटासन
(१९) गर्भासन
(२०) वीर्यस्तम्भनासन
(२१) वृक्षासन
(२२) विस्तृतपाद सर्वांगासन
(२३) सुप्त द्विपाद शिरासन
(२४) वातायनासन
(२५) गरुड़ासन
(२६) निश्श्वासासन
(२७) द्वि-भुजासन
(२८) प्रार्थनासन
(२९) मण्डूकासन
(३०) कार्मुकासन
(३१) पर्वतासन
(३२) प्राणासन
(३३) अपानासन

(३४) समानासन
(३५) कुंजरासन
(३६) आनन्द-मदिरासन
(३७) क्षेमासन
(३८) वृश्चिकासन
(३९) चतुष्कोणासन
(४०) पवनासन
(४१) खजनासन
(४२) कोकिलासन
(४३) उत्तमांगासन
(४४) त्रिस्तम्भासन
(४५) यष्टिकासन
(४६) मकरासन
(४७) दृढ़ासन
(४८) पर्यंकासन
(४९) धीरासन
(५०) स्थितविवेकासन
(५१) ग्रन्थि-भेदनासन
(५२) आकर्षण (आकर्ण) धनुरासन

उपरिलिखित ८४ आसनों की तालिका में ऐसे बहुत से आसन हैं, जिनका पूर्ण विवरण बताना जरूरी था, किन्तु पुस्तक का कलेवर बढ जानेके भयसे प्रस्तुत पुस्तक में उन्हीं महत्त्वपूर्ण आसनों के साधनकी पद्धति और लाभोंका वर्णन किया गया है, जो साधकोंको विशेष सरलतासे साध्य, अधिक लाभदायक और उपयुक्त है। यदि जनसाधारण की रुचि होगी तो पुस्तक के द्वितीय संस्करण में ८४ आसनों की साधन-पद्धति और उनके लाभोंका विस्तृत वर्णन किया जायेगा।

दिव्यामृत

मनुष्य-जन्म सरलतासे वारवार नहीं मिलता। इसके लिये इहजीवनमें बडी साधना तथा तपस्या करनी पड़ती है। वैसे तो पशु-पक्षि आदिकोंकी जीवन, प्रवृत्ति आहार, निद्रा, भय और मैथुनतक ही सीमित है; किन्तु मनुष्य केवल इसी सीमा के अन्दर सन्तोष मान कर कैसे बैठ सकता है ? मनुष्य को इससे आगे बढ़ना चाहिये और योगाभ्यास, भक्तियोग की साधना तथा वेदान्तादिका अध्ययन और मनन कर आत्मदर्शन की अनुभूति में मग्न रहना चाहिये। मानवजन्म को सफल बनानेका यही राजमार्ग है।

—योगिराज उमेशचंद्रजी

अल्प श्रमसाध्य

योगी और वैज्ञानिक

★ आज के वैज्ञानिककी तरह योगी भी समाज का एक जिम्मेदार सदस्य है। जस वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशालामें तन्मयता के साथ विविध प्रयोग—परीक्षणों के पश्चात् समाजको—राष्ट्रको एक कल्याणकारी आविष्कार प्रदान करता है; उसी तरह योगी भी अपनी प्रयोगशालामे कार्यकुशल, सुव्यवस्थित नागरिकोंका निर्माण कर राष्ट्र और समाजकी सेवा करता है। वैज्ञानिकोंके प्रयोग कभी असफल भी हो सकते हैं और उनके मस्तिष्क ऐसी वस्तुका निर्माण कर सकते है, जो राष्ट्र तथा समाज—जीवन के लिये हानिकर भी है—उन्हे आतंकित करते है। किन्तु योगीसे इन सब अनिष्टोंका कोई भय नहीं। उसके निर्माण—कार्य का पर्याय ही सत्य (जीवनकी नित्यकी आवश्यकता), शिव (लाभप्रद— कल्याणकारी), सुन्दर (सुव्यवस्थित—सौष्ठवबद्ध) है; अर्थात योगी सत्य—शिव—सुन्दरका प्रतिष्ठापक है।

योगी और वैज्ञानिक के चिन्तनप्रवाह के मार्ग भले ही भिन्न—भिन्न हो, किन्तु दोनो ही विश्व—प्रकृति के तल—स्पर्शी विवेचनतक पहुच गये हैं। दोनोंने ही जगत् की सूक्ष्म स्थितियों का स्पर्श किया है। अन्तर केवल इतना ही है कि वैज्ञानिक केवल जगत् की स्थूल शक्तियो को प्राप्त कर ही सन्तोष मान बैठता है। किन्तु योगी इतनेसे ही सन्तुष्ट नहीं होता। योगीकी चिन्तन-धारा इससे आगे बढ़ती है। वह विश्व—वारिधिमें गोता लगाकर (समाधिस्थ होकर) उसका कोना—कोना छान डालता है। वह चाहे तो इस समुद्र—तलमें यत्र—तत्र बिखरे हुए रत्न—मणि—मोती (ऋद्धि—सिद्धिया) आदि बटोर ले। योगी की अन्तर्दृष्टि गहरी होती है। उसके प्रयोग हेतुलक्षी होते हैं। स्वय साधना से सम्पादित ऋद्धि—सिद्धिकी इस समृद्धि को वह व्यवस्थित रूपसे वितरित करता है। योगीका कर्म—कौशल धन्य है—वन्दनीय है।

—योगिराज उमेशचन्द्रजी

आसनोंका निरूपण

प्रस्तुत पुस्तकमें निरूपित आसनोंको तीन भागोंमें विभाजित किया गया है :—

(१) अल्पश्रमसाध्य
(२) श्रमसाध्य
(३) विशेष श्रमसाध्य

प्रथम विभाग

(१) अल्पश्रमसाध्य आसन

सिद्धासन

(चित्र सं. १, पूर्ण-संख्या ११)

(पृष्ठ सं. १९ देखिये)

बायें पैरको घुटनेसे मोड़कर गुदा और अण्डकोश के बीचमें स्थापित करें। फिर दाहिने पैरको घुटनेसे मोड़कर उसके ऊपरी भागको पिण्डलियोंपर रखें। शरीरको बिलकुल सीधा रखें। आखोंको चाहे तो खुला रखें, चाहे बन्द। अधिक देरतक करना हो तो बन्द रखना ही उचित है। मेरुदण्डको सीधा रखें। लिंगमूल (कंधस्थान) पर एड़ीका दबाव रखना चाहिये।

समय

कमसे कम आध घण्टे और अधिकसे अधिक ३ घण्टे तक सिद्धासन पर बैठ सकते है।

लाभ

सिद्धासनका अभ्यास सभी कर सकते हैं। यह सबके लिये समान रूपसे अनुकूल है। परन्तु गृहस्थाश्रमी लोग आध घण्टे से अधिक एक आसनपर न बैठें। इसका कारण यह है कि वीर्यवाहिनी नलीपर एड़ीका दबाव पड़नेसे वीर्य हृष्ट-पुष्ट होता है; परन्तु वीर्यवाहिनी नाड़ीमें कुछ अशोंमें निर्बलता आ जानेकी सम्भावना है। मंत्र-जप, पूजा-पाठ, सन्ध्या-विधि और धारणा, ध्यान तथा समाधिकी साधना के समय सिद्धासनपर बैठ सकते हैं। इस आसनसे सिद्धि प्राप्त होती है और मुद्राका अभ्यास भी किया जाता है।

स्वस्तिकासन (सुखासन)

(चित्र-संख्या २, पूर्णसंख्या १२)

(पृष्ठसंख्या २० देखिये)

जानूर्वोरन्तरे कृत्वा योगी पादतले उभे।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते॥

अर्थात्—दोनों पैरोंके तलुओंको दोनों जानुओंकी बगलमें लगाकर पैरके ऊपरके भागको पिण्डलियोंसे ढक दे और ताड़की तरह सीधे बैठे। इसे स्वस्तिकासन कहा जाता है।

पहले दाहिने पैरको पद्मासन की तरह घुटनेसे मोड़कर भूमिपर रखें। तदुपरान्त उस मुड़े हुए दाहिने पैरकी जानु और पिण्डलीके मध्य बायें पैरको स्थापित करें। दाहिने पैरको भी मुड़े हुए बायें पैरकी जानु और पिण्डलीके बीचमें जमायें। दोनों घुटने जमीनसे लगे रहें। इस प्रकार दोनों ही पैर एक-दूसरेकी जानु और पिण्डलीपर जम जायेंगे। दोनों हाथोंको दोनों पैरोंके घुटनोंपर रखें। शरीर को सीधा-समरेखामें-खिंचा हुआ रखें। इसे स्वस्तिकासन अथवा सुखासन कहते हैं।

समय

५ दिनतक ३ मिनट। ६ से ८ दिनतक ५ मिनट। ९ से १५ दिनतक १० मिनट। इस प्रकार समय और प्रकृतिके अनुसार आध घण्टे या इससे भी अधिक समयतक बढा सकते है।

लाभ

प्राणायामके समय, धारणा, ध्यान और समाधिके समय, पठन-पाठनके समय, और सत्सगके समय इस आसनपर सरलतासे सुखपूर्वक बैठ सकते हैं। सभी स्त्री-पुरुषोंके लिये यह आसन अनुकूल है।

शवासन

(चित्र सं. ३, पूर्ण-संख्या १३)

(पृष्ठसंख्या २१ देखिये)

उत्तानं शववद् भूमौ शयनं तु शवासनम्।
शवासनं श्रमहरं चित्तविश्रांतिकारणम्॥

—घे. सं २।१९

भूमिपर शवकी तरह शान्त और उत्तान लेटने को शवासन कहा जाता है। इससे श्रम दूर होता है और चित्तको शान्ति मिलती है।

जमीनपर चित लेट जायें। सारा शरीर समरेखामें रहे। दोनों हाथ सीधे शरीरके साथ सटे रहें। शरीर शिथिल रहे। तनाव बिलकुल न रहे। श्वास-प्रश्वासकी गति सामान्य या स्वाभाविक रहे। जान-बूझकर हाथ-पैरकी उँगलियों या अन्य किसी अवयवको हिलाये-डुलाये नहीं। जहातक हो सके, अवयवोंको शिथिल करनेका प्रयत्न करे। मनको इष्टदेव, गुरुजन अथवा हृदय या नाभिमण्डलमें स्थिर करे।

समय

कमसे कम ५ मिनट।

लाभ

शीर्षासन करनेके वाद इस आसनको कमसे कम ५ मिनट करना अत्यावश्यक है। कारण यह है कि शीर्षासनके समयमें पैर, कमर, पेट, हाथ, छाती, गला आदिसे शिरकी ओर जो रक्त–प्रवाह आ रहा था, उसे फिर नीचेकी ओर ले आना पड़ेगा। शीर्षासनके पश्चात् खड़े रहनेसे चक्कर आना, मस्तिष्क की अस्थिरता आदि अनेक चिह्न प्रकट होते हैं, जिससे शीर्षासनका लाभ साधकको उचित रूपसे मिल नहीं पाता।

प्रगाढ़ निद्राका लाभ

जिन लोगोंको नींद नहीं आती, सारी रातें जो बिछौनेपर अगल–बगल करवटें बदलते रहते हैं; उनके लिये शवासन एक आश्वासन के समान है, अर्थात् उत्तम लाभदायक है। इसके अभ्यासकालमे ध्यान रखने की वात यही है कि हाथ–पैर धोकर बिछौनेपर कोई अनुकूल आसन लगाकर बैठ जाये और पासमें अगरबत्ती, धूप आदि सुगन्धित द्रव्य जला रखे। दोनों नासापुटोंसे दीर्घ या लम्बा श्वास–प्रश्वास लेता रहे। मनको हृदय–कमलपर स्थिर करे। अपने गुरुदेव, इष्टदेव अथवा किसी महात्मा पुरुषका मनमें ध्यान करे। इस प्रकार ३ मिनटतक ध्यान करता रहे। तदुपरान्त "मुझे गाढ़ी नींद आ रही है। पञ्चज्ञानेन्द्रियां और पंचकर्मेन्द्रियां निद्रादेवीके शुभागमन की प्रतीक्षा कर रही हैं। मैं सभी चिन्ताओं से पूर्णतया मुक्त हूं। निद्रादेवी मस्तिष्कमें प्रवेश करने के लिये कटिबद्ध खड़ी हैं। मैं उनका सहर्ष स्वागत करता हूं।"—इस प्रकारकी भावना ५१ बार मन ही मन दुहराता रहे। कदाचित् ऐसी भावना स्थिर न रह कर मनमें चिन्ता, भय, क्रोध, ईर्ष्या आदिका प्रभाव बढ़ रहा हो तो तुरन्त ही अपने कानोंको सुनाई दे, इतने उच्च स्वरसे उक्त शब्दोंका उच्चारण मुखसे (५१ बार) करे। तत्पश्चात् तुरन्त ही शवासन का अभ्यास प्रारम्भ करे। शवासनके विवरणमें उल्लेख किये गये अनुसार जो विधि बतलाई गई है, तदनुसार काम करे और मनमें दुहराता रहे कि मुझे गहरी नीद आ रही है, अच्छी नींद आ रही है। इन्हीं भावनाओंको वारंवार दुहराता रहे और ध्यान रखे कि हाथ–पैर तनिक भी हिलने न पायें। इस प्रकारके दो–तीन दिनोंके अभ्याससे ही गहरी निद्रा आने लगेगी। शवासन करते समय 'यह सामान्य अभ्यास है'—इस प्रकारकी भावना होनेपर भी महत्त्वपूर्ण लाभ अवश्य ही मालूम पड़ेंगे।

विशेष सूचना

कई वर्षों से और अनेक कारणोंसे यदि अनिद्राका रोग पीछे लग गया हो तो शुद्ध सात्विक आहार ग्रहण करना पड़ेगा, रातका भोजन अल्प और सुपाच्य रखना पड़ेगा , जिससे पेट में भारीपन मालूम न हो और भोजनके पचनेमें भी सरलता और सुविधा हो । दिनभरके व्यवहार में जहातक हो सके, निरर्थक चिन्ता, क्रोध, ईर्ष्या, घृणा, झगड़ा आदि से बचता रहे । तमोगुणप्रधान आहार–जैसे कि बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, शराब, चाय–कॉफी, गांजा, भांग, अफीम आदि–से मुक्त रहे । शवासन करते ही नाभिपर श्वेत स्वच्छ वस्त्र ठण्डे जलमें भिगोकर १० से १५ मिनट तक रखे। शिरमें और पैरोंके तलुओंमें बादामका तेल, रामतीर्थ ब्राह्मी तेल, तिलका तेल, खोपड़ेका तेल, गायका घी आदि वस्तुओंमें जो भी अनुकूल हो, उसे ५ मिनटतक घिसकर सो जाये । इस प्रयोगसे निस्सन्देह गाढ़ी निद्रा आनी चाहिये । शरीरको जैसे शुद्ध सात्त्विक आहार की आवश्यकता है, मनको जैसे विशुद्ध विचार आवश्यक हैं; उसी प्रकार प्रगाढ़ निद्राका आना भी अत्यावश्यक है। कमसे कम ८ घण्टेतक निद्रा लेना बहुत जरूरी है।

एकपाद उत्थानपादासन

(चित्र–संख्या ४, पूर्णसंख्या १४)

(पृष्ठसंख्या २२ देखिये)

जमीनपर स्वच्छ चटाई अथवा खादी का वस्त्र बिछाकर उसपर चित लेट जायें। हाथोंको कमर के अगल–बगल रखें। तत्पश्चात् श्वास को फेफड़ों में भरकर दाहिने पैरको जमीन से ऊपर उठायें और लगभग दो फुट ऊपर ले जायें। ऊपर उठे हुए पैर के स्थिर होते ही दोनों पैरोंपर ध्यान रखें कि वे घुटनों से मुड़ने न पायें। उठा हुआ पैर पजेसहित आगे की ओर खिंचा रहे। सरलतासे जितनी देरतक श्वास को रोका जा सके, उतने समय तक रोक रखने के पश्चात् पैर को धीरे–धीरे जमीनपर रखे और श्वास को शनैः–शनैः बाहर निकाल दे। फिर तुरन्त ही फेफड़ोंमें श्वास भरकर दाहिने पैरको जमीन पर रखे रहकर बायें पैरको ऊपर उठाये और यथाशक्ति कुम्भक कर के पैर को जमीनपर पुनः लाकर श्वास को बाहर निकाल दे, अर्थात् रेचक करे।

लाभ

शीर्षासन करनेके बाद इस आसनको कमसे कम ५ मिनट करना अत्यावश्यक है। कारण यह है कि शीर्षासनके समयमें पैर, कमर, पेट, हाथ, छाती, गला आदिसे शिरकी ओर जो रक्त-प्रवाह आ रहा था, उसे फिर नीचेकी ओर ले आना पड़ेगा। शीर्षासनके पश्चात् खड़े रहनेसे चक्कर आना, मस्तिष्क की अस्थिरता आदि अनेक चिह्न प्रकट होते हैं, जिससे शीर्षासनका लाभ साधकको उचित रूपसे मिल नहीं पाता।

प्रगाढ़ निद्राका लाभ

जिन लोगोंको नींद नहीं आती; सारी रातें जो बिछौनेपर अगल-बगल करवटें बदलते रहते हैं; उनके लिये शवासन एक आश्वासन के समान है; अर्थात् उत्तम लाभदायक है। इसके अभ्यासकालमे ध्यान रखने की बात यही है कि हाथ-पैर धोकर बिछौनेपर कोई अनुकूल आसन लगाकर बैठ जाये और पासमें अगरबत्ती, धूप आदि सुगन्धित द्रव्य जला रखे। दोनों नासापुटोंसे दीर्घ या लम्बा श्वास-प्रश्वास लेता रहे। मनको हृदय-कमलपर स्थिर करे। अपने गुरुदेव, इष्टदेव अथवा किसी महात्मा पुरुषका मनमें ध्यान करे। इस प्रकार ३ मिनटतक ध्यान करता रहे। तदुपरान्त "मुझे गाढ़ी नींद आ रही है। पंचज्ञानेन्द्रियां और पंचकर्मेन्द्रियां निद्रादेवीके शुभागमन की प्रतीक्षा कर रही हैं। मैं सभी चिन्ताओं से पूर्णतया मुक्त हू। निद्रादेवी मस्तिष्कमें प्रवेश करने के लिये कटिबद्ध खड़ी हैं। मैं उनका सहर्ष स्वागत करता हू।"—इस प्रकारकी भावना ५१ बार मन ही मन दुहराता रहे। कदाचित् ऐसी भावना स्थिर न रह कर मनमें चिन्ता, भय, क्रोध, ईर्ष्या आदिका प्रभाव बढ़ रहा हो तो तुरन्त ही अपने कानोंको सुनाई दे, इतने उच्च स्वरसे उक्त शब्दोंका उच्चारण मुखसे (५१ बार) करे। तत्पश्चात् तुरन्त ही शवासन का अभ्यास प्रारम्भ करे। शवासनके विवरणमें उल्लेख किये गये अनुसार जो विधि बतलाई गई है, तदनुसार काम करे और मनमें दुहराता रहे कि मुझे गहरी नींद आ रही है; अच्छी नींद आ रही है। इन्हीं भावनाओंको वारंवार दुहराता रहे और ध्यान रखे कि हाथ-पैर तनिक भी हिलने न पायें। इस प्रकारके दो-तीन दिनोंके अभ्याससे ही गहरी निद्रा आने लगेगी। शवासन करते समय 'यह सामान्य अभ्यास है'—इस प्रकारकी भावना होनेपर भी महत्त्वपूर्ण लाभ अवश्य ही मालूम पड़ेंगे।

विशेष सूचना

कई वर्षो से और अनेक कारणोंसे यदि अनिद्राका रोग पीछे लग गया हो तो शुद्ध सात्विक आहार ग्रहण करना पड़ेगा, रातका भोजन अल्प और सुपाच्य रखना पड़ेगा , जिससे पेट में भारीपन मालूम न हो और भोजनके पचनेमें भी सरलता और सुविधा हो । दिनभरके व्यवहार में जहातक हो सके, निरर्थक चिन्ता, क्रोध, ईर्ष्या, घृणा, झगड़ा आदि से बचता रहे । तमोगुणप्रधान आहार–जैसे कि बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, शराब, चाय–कॉफी, गांजा, भाग, अफीम आदि–से मुक्त रहे । शवासन करते ही नाभिपर श्वेत स्वच्छ वस्त्र ठण्डे जलमें भिगोकर १० से १५ मिनट तक रखे। शिरमें और पैरोंके तलुओंमें बादामका तेल, रामतीर्थ ब्राह्मी तेल, तिलका तेल, खोपड़ेका तेल, गायका घी आदि वस्तुओंमें जो भी अनुकूल हो, उसे ५ मिनटतक घिसकर सो जाये । इस प्रयोगसे निस्सन्देह गाढ़ी निद्रा आनी चाहिये । शरीरको जैसे शुद्ध सात्विक आहार की आवश्यकता है, मनको जैसे विशुद्ध विचार आवश्यक हैं; उसी प्रकार प्रगाढ़ निद्राका आना भी अत्यावश्यक है। कमसे कम ८ घण्टेतक निद्रा लेना बहुत जरूरी है।

एकपाद् उत्थानपादासन

(चित्र–संख्या ४, पूर्णसंख्या १४)

(पृष्ठसंख्या २२ देखिये)

जमीनपर स्वच्छ चटाई अथवा खादी का वस्त्र बिछाकर उसपर चित लेट जायें। हाथोंको कमर के अगल–बगल रखें। तत्पश्चात् श्वास को फेफड़ों में भरकर दाहिने पैरको जमीन से ऊपर उठायें और लगभग दो फुट ऊपर ले जायें। ऊपर उठे हुए पैर के स्थिर होते ही दोनों पैरोंपर ध्यान रखें कि वे घुटनों से मुड़ने न पायें। उठा हुआ पैर पजेसहित आगे की ओर खिंचा रहे। सरलतासे जितनी देरतक श्वास को रोका जा सके, उतने समय तक रोक रखने के पश्चात् पैर को धीरे–धीरे जमीनपर रखे और श्वास को शनैः–शनैः बाहर निकाल दे। फिर तुरन्त ही फेफड़ोंमें श्वास भरकर दाहिने पैरको जमीन पर रखे रहकर बायें पैरको ऊपर उठाये और यथाशक्ति कुम्भक कर के पैर को जमीनपर पुनः लाकर श्वास को बाहर निकाल दे, अर्थात् रेचक करे।

ध्यान रखने योग्य सूचना

फेफड़ोंकी कमजोरी, शरीरकी स्थूलता या अन्य किसी विशेष कारणवश श्वासको अधिक समयतक रोक रखनेका सामर्थ्य न हो तो पैरको दो फुटतक ऊपर उठानेके बाद तुरन्त ही ५ बार श्वासको खींचे और छोड़े। ६ ठीं बारमें श्वासको फेफड़ोंमें भरकर पैरको पुनः शनैः-शनैः जमीनपर लाकर रख दे। इसी प्रकार दूसरे पैरसे भी करे। आंखे खुली भी रख सकते हैं और बन्द भी रख सकते हैं। दोनों नासापुटोंसे श्वास खींचते और छोडते रहना चाहिये। कुम्भकके समयमें नाभिके नीचे के भागको साधारण दबाकर रखे तथा छाती के भागको फुलाने और विकसित करने का प्रयास करे।

समय

२ दिनतक ३।३ बार। ३ से ४ दिनतक ४।४ बार। ५ से ८ दिन अथवा और अधिक समयतक ५।५ बार

लाभ

इस आसन के अभ्यास से पैर की सूजन अच्छी होती है। पैर का रक्ताभिसरण उचित रूपसे गतिवान् होता है। पैर के घुटनों और अन्य नीचे के भागों का दर्द दूर होता है। छातीपर भी यह अपना शुभ प्रभाव डालता है। पेटके अनेक विकार दूर होते है। जिन लोगों को कब्ज की शिकायत हो; उन्हें प्रातःकाल बिछौनेसे उठकर और दन्तधावन कर गरमीके दिनोंमें शीतल जल और शीतकालमें सामान्य गरम जल १२ से १६ औंसतक पीना चाहिये। इसके बाद एकपाद उत्थानपादासन का अभ्यास २ से ३ मिनटतक करना चाहिये और चित्र नं. ५ मे बताये गये द्विपाद उत्थानपादासन को ५ बार करना चाहिये। तदुपरान्त कुछ समय के बाद मल-विसर्जन के लिये चले जाना चाहिये। इस प्रकार के साधन से कब्ज की शिकायत पूर्णतया दूर हो जायेगी और पेट साफ होगा। इस आसन के अभ्यास से नितम्ब के भाग में भी रक्त का सञ्चार उत्तम रूप में होता है।

द्विपाद उत्थानपादासन

चित्र-संख्या ५, पूर्णसंख्या १५

(पृष्ठसंख्या २३ देखिये)

पहले चित लेट जायें । तदुपरान्त फेफड़ोंमें श्वास भरकर दोनों पैरोंको दो फीट जमीन से ऊपर उठायें । यथाशक्ति श्वास को रोकने (कुम्भक करने) के पश्चात् पैरोंको भूमिपर रख दें और श्वास को बाहर निकाल दें-रेचक करें। श्वासको दोनों नासिका-छिद्रोंसे भरना और निकालना चाहिये। शेष नियम एकपाद उत्थानपादासन (चित्र सं. ४) में बताये गये अनुसार समझना चाहिये।

विशेष सूचना

पैरको जमीनसे चार अगुल ऊपर उठाकर और स्थिर रखकर भी इस आसनको किया जा सकता है। दोनों पैर बिलकुल सीधे-समरेखामें-रहें। अशक्ति और वातादि रोगोंके कारण इस आसनका अभ्यास करते समय पैरोंमें कम्पन उत्पन्न हो सकता है। ऐसे समयमें भी अभ्यास चालू रखना चाहिये और यह ध्यान रखना चाहिये कि कुछ दिनोंतक पैरोंको ऊपर उठाई हुई स्थितिमें अधिक समयतक स्थिर न रखे। जैसे-जैसे स्थानीय स्नायुओंमें शक्ति बढती जायेगी; रक्तमें यथोचित उष्णता आती जायेगी, कमरका भाग मजबूत होता जायेगा, वैसे-वैसे पैरोंको आसानी से ऊपर स्थिर रख सकेंगे। मनमें अस्थिरता (चचलता) होनेपर भी पैर अधिक समयतक ऊपर स्थिर रह न सकेंगे। ऐसे समयमें आंखें मूदकर मन-ही-मनमें अपने धर्मानुकूल देवताका स्मरण करें। ॐकारका स्मरण करें अथवा राम, कृष्ण या अपने गुरुदेवका स्मरण करें। इस आसनके अभ्यासकी यही सरल पद्धति है। यदि इस आसनसे थकावटका अनुभव हो तो कुछ समयतक शवासन करें। यदि थकावट मालूम पड़ती हो और शिरोवेदना, हाई ब्लडप्रेशर, छाती आदिके रोग हों तो श्वासको बाहर निकालकर इस आसनका अभ्यास करना चाहिये।

समय

४ दिनतक ४ बार । ५ से ८ दिनतक ५ बार । ९ से १५ दिनतक ७ बार । तदनन्तर समय, शक्ति और लाभ के अनुसार १० बारतक बढायें ।

लाभ

एकपाद उत्त्थानपादासनमें बताये गये सभी लाभ इस आसनसे मिलते हैं; साथ ही आरम्भिक बवासीरके निवारणके लिये यह आसन निस्सन्देह अप्रतिहत लाभ प्रदान करता है । पीठके भाग, कमरके भाग और गलेके पृष्ठभागपर इस आसन का अच्छा प्रभाव पड़ता है । हिचकी आना, जानुओंमें पीड़ा होना, वारंवार डकारें आना, थोड़ी-थोड़ी देरमें मल-विसर्जनकी हाजत होना, अपान वायुका विकार आदि अनेकों विकार इस आसन के अभ्याससे पीछा छोड़ भागते हैं ।

वज्रासन (पहला प्रकार)

(चित्र-संख्या ६; पूर्णसंख्या १६)

(पृष्ठसंख्या २४ देखिये)

जंघाभ्यां घज्रवत्कृत्वा गुदपार्श्वे पदावुभौ ।
वज्रासनं भवेदेतत् योगिनां सिद्धिदायकम् ॥

—यो. सं.

दोनों जानुओं और दोनों पिण्डलियोंको एक-दूसरे के समीप लाकर तलुओंको गुदाके नीचे रखे; इसे वज्रासन कहा जाता है । इस आसन से साधकोंको सिद्धि प्राप्त होती है ।

पैरोंको घुटनोंसे मोड़कर मुड़े हुए पैरोंपर बैठ जायें । दोनों हाथोंको दोनों घुटनोंपर रख दें । छातीको फुलाकर रखें और पेटको अन्दरकी ओर खिंचा रखें । कमर, पीठ और शिरको समरेखामें रखें । आंखोंको खुला रखें । दीर्घ (लम्बा) श्वास-प्रश्वास लेते रहें । शरीर अधिक ढीला भी न रहे और अधिक तना हुआ भी न रहे । मध्यम स्थितिमें रहे ।

वज्रासन (दूसरा प्रकार)

(चित्र-संख्या ७; पूर्णसंख्या १७)

(पृष्ठसख्या २५ देखिये)

वज्रासन के अभ्यासके समय चित्र-संख्या ६ में बताये अनुसार शिरको जमीनपर भी लगा सकते हैं। चित्र स. ७ के अनुसार अभ्यास करते समय श्वासोच्छ्वास चालू भी रख सकते हैं और रोक भी सकते हैं। हाथोंको पीछेकी ओर ले जाकर कमरपर रखना चाहिये। दोनों हाथोंकी उँगलिया परस्पर सटी रहें। वज्रासनके अन्तर्गत यह दूसरा प्रकार है।

वज्रासनका समय

६ दिनतक १ मिनट। ७ से १२ दिनतक २ मिनट। १३ से १८ दिनतक ३ मिनट। १९ से ३० दिनतक ४ मिनट। तदनन्तर आयु, शक्ति और लाभके अनुसार ५ से ८ मिनटतक बढ़ा सकते हैं। वज्रासनके दूसरे प्रकार अर्थात् चित्र-सख्या ७ का भी समय यही है।

वज्रासन के लाभ

'**यथा नाम तथा गुणः**' के अनुसार उक्त दोनों प्रकार के वज्रासनों का अभ्यास करने से शरीर वज्र के समान सुदृढ़ और सामर्थ्यवान् बन जाता है। इतना ही नहीं, इससे अनेकशः रोग मिट जाते हैं। वीर्यदोष से उत्पन्न बहुतेरे रोग-जैसे कि जीर्णज्वर, अशक्ति, मन्दाग्नि, शिरोवेदना, आलस्य, जड़ता, प्रमाद, क्रोध, चिन्ता, व्यग्रता, क्लेश, भीरुता, कायरता, सकोच, शर्म, शिश्नेन्द्रिय में शिथिलता, अण्डकोश की कमजोरी और अन्य बीमारिया, वीर्याशय-कोष की निर्बलता, गुर्देकी कमजोरी और अन्य मूत्र तथा वीर्यदोषजन्य रोग पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं। इतना ही नहीं, वज्रासन के इन दोनों प्रकारों का समुचित अभ्यास करते रहने से पाण्डु रोग, कफज पाण्डु, पित्तज पाण्डु और वातज पाण्डु रोग पूर्णतया मिट जाते हैं। प्लूरसी के रोगियों के लिये भी यह आसन अतीव लाभप्रद है। बुढापा के लक्षणोंसे भी यह आसन दूर रखता है, अर्थात् युवावस्थाको दीर्घकालतक स्थिर रखनेवाला है। निराश जीवन में परिवर्तन सघटित कर उसे आशा और आत्मविश्वास से भरपूर बना देता है। हृदय-विकारवालों को यह आसन बहुत लाभ पहुंचाता है।

एकपाद पवनमुक्तासन

(चित्र-संख्या ८; पूर्ण-संख्या १८)

(पृष्ठसंख्या २६ देखिये)

जमीनपर चित लेट जायें। बायें पैर को सीधा जमीनपर फैलाये रखें और दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर उसे पेट और छातीपर दोनों हाथोंसे दबाकर रखें। फिर शिर को जमीन से ऊपर उठाकर घुटनेसे मुह लगायें। पैरको आगे की ओर तना हुआ रखें। शरीर भी तना रहे। श्वास-प्रश्वास चालू रखें। आंखें चाहे बन्द रखें, चाहे खुली रखें। पेटमें चरबी अधिक मात्रा में होगी तो मुंह घुटने से लग नहीं पायेगा। ऐसे लोग श्वास को बाहर निकालकर एकपाद पवनमुक्तासन का अभ्यास करें। पेट छोटा हो, तो श्वास को भरकर ही करें। पाच बार श्वासोच्छ्वास चालू रखनेतक अथवा केवल कुम्भक कर पैर को मुहसे लगाये रखें। तदुपरान्त श्वासको फेफड़ों में भरकर मुहसे लगे हुए पैर को भूमिपर सीधा फैला दें। फिर तुरन्त दोनों नासिका-छिद्रोंसे श्वास को बाहर निकालकर और बायें पैर को मोड़ कर पेट और छातीपर रखें और शिरको ऊपर उठाकर मुंहसे पैरके घुटने का स्पर्श करें।

समय

४ दिनतक ४।४ बार। ५ से ७ दिनतक ५।५ बार। ८ से १० दिनतक ६।६ बार। तत्पश्चात् आयु, शक्ति और लाभके अनुसार ८।८ बारतक अभ्यास बढ़ाया जा सकता है।

लाभ

मेद (चरबी) कम करनेके लिये यह आसन अतीव लाभकर है। इसके अभ्यास से पसलिया मजबूत बनती हैं। उदान वायु, व्यान वायु, अपान वायु, समान वायु और प्राणवायु अपने-अपने स्थानपर जब उचित रूपसे काम नहीं करते; तब शरीरमें दाह, अंगोंमें थकावट, शूल, शोथ, पसीने की अधिकता, मूर्छा, रोमांच, दुर्बलता, कफावरोध आदि अनेकों रोगोंकी उत्पत्ति हो जाती है। एकपाद पवनमुक्तासन की साधना से उपर्युक्त सभी रोग मिट जाते हैं और शरीर स्फूर्तिवान् बनता है।

पवनमुक्तासन (द्विपाद)

(चित्र-संख्या ९; पूर्ण संख्या १९)

(पृष्ठसंख्या २७ देखिये)

जमीनपर चित लेट जायें। फिर दोनों पैरोंको घुटनोंसे मोड़कर पेट और छातीपर दोनों हाथों से दबाकर रखें। तदुपरान्त शिरको जमीनसे उठाकर दोनों घुटनोंके बीच मुहको रखें। पैरोंको मोड़ते समय यदि पेट बड़ा हो, तो श्वासको बाहर निकालकर और यदि पेट छोटा हो तो श्वासको अन्दर भरकर आसन का अभ्यास करें। घुटनोंको पेट और छातीपर लाते समय ५ बार श्वास खींचना और छोड़ना चाहिये अथवा कुम्भक किये रहना चाहिये। ६ ठीं बार में श्वासको फेफड़ों में भरकर पैरको सीधा भूमिपर तान देना चाहिये। दोनों नासापुटों से श्वासको बाहर निकाल कर इस प्रकार करनेसे एकबारका अभ्यास पूरा होता है। आखोंको खुला भी रख सकते हैं और बन्द भी रख सकते हैं। हाई ब्लडप्रेशरके रोगियोंको श्वासको बाहर निकालकर ही आसन करना चाहिये।

समय

६ दिनतक ४ बार। ७ से ९ दिनतक ५ बार। १० से १५ दिनतक ७ बार। तदुपरान्त शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार १० बारतक बढ़ायें।

लाभ

पक्वाशय में कुपित हुआ अपान वायु जब ऊपर चढ जाता है, तब हृदयमें पहुचकर पीड़ा पहुंचाता है। शिर और कनपटियोंकी पीड़ा होती है। कभी-कभी यह शरीर को धनुषकी तरह टेढा भी कर देता है और शरीर कापने लगता है। यह सब रोग इस आसन से मिट जायेंगे। हृदय के वायुका वेग निकल जाने पर रोगी स्वस्थ हो जाता है। पेटमें चरबी की अधिकता होनेसे सोते समय पेट का दबाव वायु द्वारा हृदयमें बढ जाता है, जिससे हृदयविकार उत्पन्न हो जाता है। शरीर, हृदय और फेफड़ोंको कोई उत्तम प्रकारका व्यायाम न मिलनेसे हृदय और फेफड़े रोगग्रस्त हो जाते हैं। हृदय-विकार बढ जानेसे बैठते, स्नान करते या चलते-फिरते प्राणोत्क्रमण अर्थात् मरणोन्मुख हो जानेकी स्थिति आ पहुंचती है। इस आसनका अभ्यास करनेसे शनैः-शनैः हृदय मजबूत होता जायेगा, फेफड़ोंमें नवीन शक्ति का सचार होगा और

हार्टफेल (हृदय-विकार) का रोग पास आ न सकेगा। इतना ही नहीं; शरीर के अन्य अनेक वायुजन्य रोग मिट जाते हैं—जैसे कि अपान वायुके उचित परिमाणमें न छूटनेसे पेडूमें पीडा होना, मल शुष्क हो जानेसे मलबद्धता बढ जाना; पेशाब की गतिमें अचानक रुकावट, वीर्यस्थलमें दबाव पडनेसे वीर्यकी कमजोरी और पतलापन आदि अनेक रोगोत्पादक लक्षण इस आसन के अभ्याससे समाप्त हो जाते हैं।

वीरासन

(चित्र-संख्या १०; पूर्णसंख्या २०)

(पृष्ठसख्या २८ देखिये)

बायें पैरको घुटनेसे मोडकर उसकी एड़ीको बायें कूल्हे के नीचे रखें। बैठनेमें पैरकी उँगलियोंका ही आधार रहे। पंजेको ऊपर उठा रखें। बायें हाथको बायें घुटनेपर रखें। दाहिने पैरको मोडकर बायें पैरके घुटने और जानुमूलके बीच स्थापित करें। दाहिने पैरका घुटना ऊपरकी ओर रहे। दाहिने हाथ को दाहिने घुटनेपर रखें। छातीको फुलाकर रखें। कमर, पीठ तथा शिरोभागको यथासम्भव समान रेखामें रखें। आंखें खुली रहें। श्वासोच्छ्वास चालू रहे। पेटको साधारण दबाकर रखें।

समय

८ दिनतक १ मिनट। ९ से १६ दिनतक २ मिनट। तदुपरान्त ४ मिनटतक बढा सकते हैं। इसी प्रकार इस आसन को दूसरे अगसे भी कर सकते हैं। दोनों ओर के लिये ऊपर का समय समान है।

इस आसन के व्यायाममूलक लाभ उठाने के लिये बायें और दाहिने हाथ-पैरोंका बारंबार परिवर्तन करते रहना चाहिये। इससे शरीरमें थकावट जल्दी आ जाती है; पसीना छूटता है; शरीर हलका एव फुर्तीला प्रतीत होने लगता है। और भी अनेक लाभ होते है, जिनका विवरण लाभ में पढ़िये।

लाभ

यह आसन वीरोंका आसन है। इसके अभ्याससे साधकमें स्वभावतः वीरता, साहस, निर्भीकता, धीरता, दृढ़ता और गम्भीरता आदि गुणोंका आविर्भाव होता है। जीवनमें आशा, विश्वास, कार्य को सफल बनानेका दृढ सकल्प और विघ्नोंके निवारणका

नैतिक सामर्थ्य उत्पन्न होता है। मानसिक तथा शारीरिक शक्ति बढ़ जाती है और मनुष्य पुरुषार्थ–सम्पादन की ओर उत्साह के साथ प्रवृत्त होता है।

त्रिकोणासन

चित्र–संख्या ११; पूर्णसंख्या २१

(पृष्ठसंख्या २९ देखिये)

जमीनपर सीधे खड़े हो जायें। एक पैरको दूसरे पैरके कुछ अन्तरपर रखें। दाहिने पैरको घुटनेसे मोड़कर रखें और बायें पैरको सीधा रखें। कमरके ऊपरके भाग को दाहिने पैर की ओर झुका कर दाहिने हाथसे दाहिने पैरके अगूठेको पकड़ रखें। बायें हाथको ऊपर की ओर उठायें और बगलमें ऊपर की ओर ताने रहें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आंखे खुली रखें। समग्र शरीर को तना हुआ रखें। छातीको खोलकर सामनेकी ओर रखें। इसी प्रकार का अभ्यास–साधन दूसरे अगसे भी करना चाहिये; तब इस आसन का अभ्यास सम्पूर्ण होता है।

समय

८ दिनतक १५।१५ सेकण्ड। ९ से १६ दिनतक ३०।३० सेकण्ड। १७ से २४ दिनतक ४५।४५ सेकण्ड। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभके अनुसार १।१ मिनटतक अभ्यास बढ़ायें।

लाभ

इस आसनसे मूत्रावरोधकी व्याधि मिट जाती है। मल का वेग रोकनेसे वायु प्रकुपित हो उठता है, फलतः पेट फूल जाता है। पेटमें वातशूल हो जाता है और कभी–कभी अश्मरी (पथरी) रोग हो जाता है। मूत्रकृच्छ्रका विकार भी कभी–कभी उत्पन्न हो जाता है। इस आसनके अभ्याससे इन व्याधियोंका पूर्णतया प्रशमन हो जाता है। वातादि दोषोंके प्रकोप से जब वीर्य में विकार उत्पन्न हो जाता है और वीर्य मूत्रमार्गसे बाहर निकलने लगता है, तब रोगीका मूत्र वीर्यसहित कष्टसे निकलता है और बीचमें मूत्रमें रुकावट आ जाती है। मूत्रका रग भी बदल जाता है। मूत्रेन्द्रिय और शिश्नेन्द्रिय में पीड़ा होती है। यह सब रोग–विकार इस आसनसे मिट जाते हैं। इसके अतिरिक्त २० से २५ वर्षतक की आयुके साधककी ऊँचाई भी इस आसनसे बढ़ जाती है।

आकर्षण (आकर्ण) धनुरासन

(चित्र-संख्या १२; पूर्णसंख्या २२)

(पृष्ठसंख्या ३० देखिये)

पादांगुष्ठौ तु पाणिभ्यां गृहीत्वा श्रवणावधि।
धनुराकर्षणं कुर्याद्धनुरासनमुच्यते ॥ १ ॥

—हठयोगप्रदीपिका

एक पैर को फैलाये रखकर दूसरे पैर के अगूठे को हाथसे पकड़ कर कानतक खींच ले जाये। यही क्रिया दूसरे पैर से भी करे। इसे आकर्षण या आकर्ण धनुरासन कहते हैं।

दोनों पैर सामने की ओर फैलाकर बैठ जायें। तत्पश्चात् दाहिने पैर को मोड़कर बायें पैर के ऊपरी भागपर रखें और मुड़े हुए दाहिने पैर के अँगूठे को बायें हाथसे पकड लें तथा दाहिने हाथसे बायें पैर के अगूठेको पकड़ लें। दोनों नासापुटोंसे श्वास फेफड़ों में भरकर दाहिने पैरको बायें कानतक खींच रखें। शिरको ऊपर उठाये रखें; वह नीचे आने न पाये। आखों से सामने फैले हुए बायें पैर के अंगूठे को देखते रहें। श्वासोछ्वास चालू रखें। पैर को यथाशक्ति कानके पास रोक रखनेके पश्चात् श्वास को फेफडों में भरकर त्वरित गति से दोनों हाथोंको छोड दें और दाहिने पैरको बायें पैरकी बगलमें फैलाकर जमीनपर रख दें। यही सब क्रिया-विधि इनके विपरीत अंगों से भी करें; तब इस आसनका साधन सम्पूर्ण होता है। सारे शरीरको तना हुआ रखें। छातीको फुलाकर रखें। पेटको दबाकर अन्दर की ओर खिंचा हुआ रखें। फैले हुए पैरको बिलकुल सीधा रखें। मुडे हुए हाथको कन्धेकी समरेखामें रखें।

समय

९ दिनतक २।२ बार। १० से १६ दिनतक ३।३ बार। तदुपरान्त शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार ५।५ बारतक अभ्यास बढ़ायें।

लाभ

संधियोंका संकुचन और जकड़ जाना, वीर्य और रजका नाश, शिर, नाक, नेत्र और गलेके नीचेकी हड्डी तथा ग्रीवाके भीतर कुछ वेदना आदि विकार पूर्णतया मिट

जाते हैं। रोमांच, सन्धियोंमें फटन की-सी पीड़ा, बिना परिश्रमके ही थकावट मालूम होना तथा हाथ, पैर, पार्श्व और वक्षःस्थलमें पीडा आदि अनेक व्याधियोंका उपशम इस आसनका अभ्यास करते रहनेसे हो जाता है। हृद्रोग, गुल्म, पेटमें शूल, प्यास अधिक लगना, डकारें आना, खांसी, कण्ठ और मुखमें शोष आदि अनेक रोगोंका सदाके लिये निवारण हो जाता है। भोजनके पश्चात् पेटका फूल जाना, मल-मूत्रका त्याग करते समय कष्ट होना, त्वचाका रुक्ष हो जाना और उसमें सुई चुभने-जैसा भान होना, त्वचाका सिकुड़ जाना, भोजनमें अरुचि रहना, स्त्रियोंके गर्भाशयका विकार, स्नायुगत वायु आदि सर्वांग रोगका समूलोन्मूलन करने के लिये यह आसन सम्पूर्ण सफल प्रयोग है।

अल्प श्रमसाध्य आसन विभाग समाप्त

वचनामृत

प्रारब्ध और पुरुषार्थ के बारेमें लोगोंमें मतभेद रहता है। अर्थात् कोई समझता है कि प्रारब्ध मुख्य है और कोई कहता है कि प्रारब्ध और पुरुषार्थ दोनों मुख्य हैं, कोई कहते हैं प्रारब्ध, पुरुषार्थ और ईश्वर-कृपा मुख्य है। कोई कहता है कि केवल ईश्वर-कृपा मुख्य है। इस प्रकार अनेक विचारोंसे जीवन अस्थिर बन जाता है। हमारे अनुभव-गम्य विचारोंसे स्पष्ट मालूम पड़ता है कि पुरुषार्थका फल प्रारब्ध है। जिस ढगसे पुरुषार्थ करे अर्थात् श्रेष्ठ प्रकारके पुरुषार्थ करे तो प्रारब्ध अच्छा बढता है और अनीतिमय अधर्ममय, अनाचारमय पुरुषार्थ करे तो प्रारब्ध प्रतिकूल बन जाता है। सुख मिलनेपर प्रारब्ध की स्तुति करना और दुःख आनेपर प्रारब्धको निन्दा करना। यह ठीक नहीं है। जैसा कर्म करे, पैसे प्रारब्धका निर्माण होकर फल मिलते जाते है। ईश्वर-कृपा अवश्य होनी चाहिये। इस बातको मैं अवश्य मानता हू परतु इसके साथ दूसरी एक बातको याद दिलाना चाहता हूं कि शुभनिष्ठासे सत्कार्य करनेसे स्वाभाविक रीतिसे ईश्वर-कृपा बढती जाती है।

योगिराज श्रीउमेशचंद्रजी

श्रमसाध्य आसन

शीर्षासन (अपूर्ण)

(चित्र-संख्या १, पूर्णसंख्या २३)

(पृष्ठसंख्या ३१ देखिये)

शुद्ध खादीका वस्त्र जमीनपर बिछायें। वस्त्र इतना चौड़ा हो कि शिर और हाथ उसी कपड़ेपर रहें। फिर दोनों पंजोंको परस्पर फँसाकर बिछे हुए वस्त्र के ऊपर शिरके पिछले भागमें रखें। हाथोंकी कुहनियोंको शिरके अगल-बगल स्थापित करें। कुहनियोंका विस्तार अधिक न हो। शिर वस्त्रपर रहे और उसका पिछला भाग हथेलियोंसे जकड़ा रहे। तदुपरान्त घुटनोंको ऊपर उठाकर छाती के पास ले आनेका प्रयास करें। बादमें हाथों तथा शिरके आधारपर पैरोंको जमीन से ऊपर उठायें और घुटनोंसे उन्हें मोड़कर जानु के ऊपर स्थापित करें। यह शीर्षासन का पहला (अपूर्ण) प्रकार है।

समय

५ दिनतक १ से ३ मिनट तक अभ्यास बढायें और इस बातका पूरा ध्यान रखें कि आसनकालमें शरीर हिलने-डुलने न पाये।

इस आसन को करते समय मनमें अधिक भय होता हो तो दीवारका सहारा ले सकते है। सहारा तबतक लेते रहें, जबतक आसन बिना सहारे के अच्छी तरह अभ्यस्त न हो जाये। सम्पूर्ण अभ्यास के हो जाने के पश्चात् दीवारका सहारा न लें। दीवारका सहारा न लेनेपर या लेनेपर भी उसका यथोचित लाभ मिलता रहेगा। किन्तु मन का भय दूर करनेके लिये और शरीरको समरेखामें रखकर अधिक लाभ उठाने के लिये दीवार का सहारा न लेना ही अति उत्तम होगा।

श्रमसाध्य

श्रेयस् और प्रेयस्

★ अन्तःकरण के षड्वैरियों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरादि) से मुक्त होने के पश्चात् वृत्तियोंका स्वाभाविक वेग श्रेयस्की ओर दौड़ने लगता है; अर्थात् सांसारिक सुखोंकी नीरसता भासित होने लगती है और जीवन पारमार्थिक सुखोंके रस में निमग्न होने लगता है; अर्थात् श्रेयस् के संवेग के बढ जानेपर और पारमार्थिक सुखोंकी ओर मनके मोड लेनेपर आप स्वाभाविक आनन्दका अनुभव करने लगेंगे । ;मनकी एकाग्रता बढती जायेगी । अब प्रेयस्को लीजिये । इन्द्रियोंकी लालसाओंको तृप्त करनेके लिये बहिरंग साधनों का आधार लेना प्रेयस् है । प्रिय लगनेवाली वस्तुयें अपरिमित हैं । फिर भी, केवल एकादश (मनसहित) इन्द्रियोंके आवेशसे उद्भूत यह आनन्द क्षणिक सुखाभास देनेवाला होता है; अतएव त्याज्य है अथवा इन अनित्यानन्ददायिनी वस्तुओंके साथ गौण सम्बन्ध रखना चाहिये । कोई भी ऐहिक वैभव, शक्ति (स्त्री, पुत्र, धन, ऐश्वर्य, जमीन्दारी, मान-सम्मान, सत्ता) होनेपर भी परम शान्तिकी अनुभूति असम्भव रहेगी । परम शान्तिके लिये श्रेयस्का आधार लेना ही पडेगा ।

—योगिराज उमेशचन्द्रजी

शीर्षासन (अपूर्ण)

(चित्र-संख्या २, पूर्णसंख्या २४)

(पृष्ठसंख्या ३२ देखिये)

प्रथम प्रकारमें बताई स्थितिपर पहुँच जाने के पश्चात् दोनों पैरों के घुटनों को मुड़ा रख कर जंघाओंके ऊपर ले जाना चाहिये और उन्हें समरेखामें सीधा रखना चाहिये।

समय

२ दिनतक २ मिनिट। २ से ५ दिनतक ५ मिनिट।

शीर्षासन (सम्पूर्ण-पहिला प्रकार)

(चित्र सं. ३; पूर्णसंख्या २५)

(पृष्ठसंख्या ३३ देखिये)

दूसरे अपूर्ण प्रकार में बताई गई स्थितिपर पहुँच जाने के पश्चात् दोनों पैरों को ऊपर ले जाकर सीधी रेखामें तान दें। पैरोंको परस्पर सटाकर रखें। शिर, छाती, कमर, घुटने और पैरों के अँगूठे समरेखामें रखें। आखों को खुला भी रख सकते है और बन्द भी रख सकते हैं। अधिक समयतक करना हो तो आंखें बन्द रखनी चाहिये, जिससे मन स्थिर हो। शरीर का कोई अवयव हिले-डुले नहीं; इस बात का ध्यान रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। शरीरका सारा वजन सम-परिमाण-में रहना आवश्यक है।

समय

३ दिनतक २ मिनट। ४ से ८ दिनतक ३ मिनट ९ से १५ दिनतक ५ मिनट और तदुपरान्त ५ से लेकर ६० मिनट (एक घण्टा) अथवा इससे भी अधिक समयतक कर सकते है। कमसे कम १० मिनटतक अभ्यास किया जाये तो लाभ मिल सकता है। जिनका शरीर अधिक चरबी और माससे अधिक वजनदार होगा,

उनको अधिक समयतक शीर्पासन करना प्रतिकूल मालूम होगा। फिर भी, १० से २० मिनटतक करना अनिवार्य है। किसी कारणवश हो न सके तो अन्य आसनोंके अभ्याससे शारीरिक वजनको घटानेके पश्चात् शीर्षासन का समय बढ़ायें। शीर्षासनके समय मुँहको बन्द रखें; केवल नाकके छिद्रोंसे श्वासोच्छ्वास चालू रखें। गलेपर शरीरका अधिक वजन पड़ने न पाये शिरके मध्य-भागसे किंचित् अगले भागको जमीनपर रखें।

शीर्षासनके लाभ

शीर्पासन के निरन्तर साधन से आखें अच्छी रहती हैं। नींद अच्छी आती है। शरीरका रक्त शुद्ध होता है। स्फूर्ति बढ़ती है। जीवनके दैनिक कार्योंमें मन लगा रहता है। रक्तविकार से उत्पन्न अनेक रोग निर्मूल हो जाते हैं। गले की शक्ति बढ़ती है और शिरमें जानेवाली वायुवाहिनी और रक्तवाहिनी नाड़िया तथा मज्जातन्तु और ज्ञान-तन्तु मजबूत होते हैं, जिससे मस्तिष्कको आवश्यक जीवनतत्त्व मिलते हैं। यही कारण है कि नाक, कान आदि अवयव भी पूर्ण नीरोग रहते हैं। एक घण्टे से अधिक समयतक करनेपर नाभिके नीचेके भागमें अवास्थित कुण्डलिनी शक्तिके भी जाग उठने की सभावना है और समाधिकी अवस्थापर पहुच जाना भी सम्भव है। शरीरके सभी अवयव प्रफुल्ल रहते हैं। मन एकाग्र हो जाता है और उस समय उच्च प्रकार के विचार करनेसे सुखपूर्वक शान्ति का अनुभव होता है। इतना ही नही; शीर्षासन और भी अनेकशः लाभ प्रदान करता है।

ध्यान रखने योग्य बातें

शीर्षासन के पश्चात् तुरन्त शवासन करना चाहिये; खड़े रहना उचित नहीं। क्योंकि खड़े रहने से चक्कर आने और गिर जाने की सम्भावना रहती है। आंखों के सामने अन्धकार छा जानेका भी भय है। शरीर में कम्प हो सकता है तथा और भी अनेक प्रकार के लक्षण प्रकट होंगे, जिनसे हानि हो सकती है। इसलिये शीर्षासन के पश्चात् तुरन्त खड़े होना न चाहिये, बल्कि शवासन करना चाहिये। शवासन की साधन-विधि और उसके लाभोंका वर्णन अल्प श्रमसाध्य आसनों के प्रकरण में किया गया है। शीर्षासन के समय पैरों के रक्त के शिर की तरफ आने के समय पैरों के तलुओं और ऊपरी भाग में चींटियां चढ़ने-जैसी स्थितिका अनुभव होगा, किन्तु इसमें चिन्ताका कोई कारण नहीं। इससे किसी प्रकार की हानि न होगी। शवासन के

समय यह आभास मिट जायेगा। शीर्षासन उस दशामें न करें, जब कि शरीर का रक्त गरम हो; अर्थात् शीर्षासन को सब आसनो से पहले कर लें।

शीर्षासनका समय

शीर्षासनके अभ्यास के लिये प्रातःकालका समय उत्तम है। अभ्यास-कालमें पेट खाली रहे। प्रातःकाल अवकाश न मिलनेपर सायकाल भी अभ्यास किया जा सकता है। भोजनके तीन घण्टेके पश्चात् और दुग्धादि द्रव पदार्थ लेनेके एक घण्टे के बाद शीर्षासन किया जा सकता है।

शीर्षासन-सम्बन्धी मेरे अनुभव

अपवाद रूपमें यात्रा-कालमें मैं शीर्षासन कर नहीं पाता हूं। अन्य कालमें प्रतिदिन १० मिनट से १ घण्टेतक शीर्षासन करता हूं, जिससे मैंने अनेक महत्त्व-पूर्ण लाभ उठाये हैं। नींद गहरी आती है। स्मरणशक्ति तीव्र रहती है। स्फूर्ति अच्छी रहती है। शरीर और मनमें उत्साह और उल्लास भरा रहता है। गत ३५ वर्षके स्वानुभव और २५ वर्षके योगाश्रमके अन्य अभ्यासियोंके अनुभवसे यह निश्चित रूपसे पता लगा है कि शीर्षासनसे अनेक महत्त्वपूर्ण लाभ प्राप्त होते हैं।

एक विशेष व्याधिका शमन

आजसे १२ वर्ष पूर्वकी घटना है। स्नानागार (बाथरूम) में जलसे पूर्णतया भरी हुई बालटी को एक स्थानसे दूसरे स्थानपर हटाते समय मेरे (लेखक के) दाहिने पैर-का अंगूठा उसके नीचे एक रगड़के साथ दब गया। फलतः अंगूठा घायल हो गया, रक्तस्राव होने लगा और दो दिनोंमें पैरमें घुटनेतक सूजन आ गई। वेदना भी अत्य-धिक होती रही। घरेलू आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियोंका इलाज चलता रहा, परन्तु सूजन नहीं उतरी और वेदना भी कम नहीं हुई। परीक्षासे पता चला कि अँगूठेमें लोहेका विष व्याप्त हो गया है। मैं आहारमें भी पथ्यका पूरा विचार रखता था। फिर भी, सूजन घटी नहीं। यह भी भय हुआ कि शीर्षासन करनेसे सूजन और वेदना कहीं और भी अधिक बढ न जाये; इसलिये शीर्षासन नहीं किया। किन्तु जब ३-४ दिनतक सूजन नहीं मिटी, तब शीर्षासनका प्रयोग कर देखनेकी इच्छा हुई। पहले दिन ५ मिनटतक शीर्षासन किया, परन्तु कोई लाभ मालूम नहीं हुआ। दूसरे दिन ५ से १० मिनटतक किया; तब साधारण लाभ दिखाई दिया; अर्थात् सूजन बढी

नही और वेदना में भी वृद्धि नहीं हुई। तीसरे दिन २० मिनटतक शीर्षासन किया, फलतः सूजन और वेदना दोनों घटने लगी। तत्पश्चात् बढ़ाते-बढ़ाते ४५ मिनटसे १ घण्टेतक प्रतिदिन अभ्यास चालू रखा; फलतः ८ दिनके पश्चात् सूजन और वेदनाका दमन हो गया और पैर अच्छा होने लगा। १५ दिनोंमें पैर बिलकुल अच्छा हो गया; अतएव मेरा विश्वास बढ गया कि शीर्षासनके अभ्याससे अनेकशः रोग मिटाये जा सकते हैं। शीर्षासनसे सर्वांगको व्यायाम मिलना सम्भव नहीं; अन्य आसन भी इसके साथ करने पड़ते हैं। सूजन की स्थितिमें मैं शीर्षासनके साथ अन्य आसन भी करता रहा; परन्तु उनका लाभ गौण रहा। इस प्रकारके अनुभव शीर्षासनके महत्त्वको भली-भांति प्रकट कर रहे हैं।

शीर्षासन कौन नहीं कर सकते?

हृदयविकारसे पीड़ित; रक्त के दबाव के रोगी और तीसरी स्थितिपर पहुँचे हुए दमा-श्वासके रोगी, दूसरी और तीसरी अवस्थाके टी-बी (क्षय) के रोगी, तीसरी अवस्थापर पहुँचे हुए केन्सरके रोगी, तीसरी अवस्थापर गये हुए पाण्डु और पीनस आदि नाकके रोगी, वेदनापीड़ित कर्णरोगी, अधिक शारीरिक अशक्तिवाले, पित्तप्रकृतिसे उत्पन्न शिरोवेदनासे पीड़ित, आंखोंमें जलन आदि कई रोगोंके शिकार, गले के रोगी और वे लोग भी शीर्षासन न करें, जिनके शरीर में अत्यधिक चरबी है। अपवाद रूपमें यदि कोई यह आसन करना चाहे तो एतदर्थ अनुभवसिद्ध साधक पुरुषोंकी सलाह-सूचना लेना अनिवार्य होगा।

विशेष सूचना—शीर्षासनके अभ्याससे मृगी रोग, उन्माद रोग, बुद्धिमें जड़ता, आखों के अनेक रोग तथा बहुतेरे कर्ण रोग स्वतः मिट जाते हैं।

शीर्षासन का सम्पूर्ण रूप (दूसरा प्रकार)

(चित्र-संख्या ४; पूर्णसंख्या २६)

(पृष्ठसंख्या ३४ देखिये)

यह आसन चित्र-संख्या ३ से भिन्न है। इसमें हथेलियोंको भूमिपर स्थापित कर कुहनियोंतक के भाग को ऊपर उठाये रखें। कुहनियों और भुजाओं को कन्धे की सम-रेखा में रखें। चित्र संख्या ३ के अनुसार पैर ऊपर की ओर तने रहें।

समय

८ दिनतक ३० सेकण्ड (आध मिनट)। ९ से १६ दिनतक ४५ सेकण्ड (पौन मिनट)। १७ से २४ दिनतक १ मिनट। तत्पश्चात् शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार २ से ५ मिनटतक बढ़ायें।

विशेष सूचना - इस शीर्षासनका अभ्यास सबके लिये आवश्यक नहीं है। जिन लोगोंको अनुकूल हो, वे इसका अभ्यास कर सकते हैं। चित्र-संख्या ३ के सभी लाभ इस आसन की साधनासे मिलते हैं। इतना ही नहीं; यह आसन शरीरपर नियन्त्रण स्थापित करने में भी सहायक होता है। शिरके आन्तरिक भागमें अवस्थित ४२ सेन्टरों (केन्द्रों) को जितने परिमाण में पर्यात रूपमें जिस प्रकार शक्तिवर्धक और विकासमय जीवनतत्त्व आवश्यक है; उसे उतने परिमाण में मिलता रहता है। इसका मुख्य कारण यही है कि गलेके सभी छोटे-बड़े पुर्जे (अंग-प्रत्यंग) सशक्त बन जाते हैं।

शीर्षासनस्थ पद्मासन

(चित्र-संख्या ५; पूर्णसंख्या २७)

(पृष्ठसंख्या ३५ देखिये)

प्रथम शीर्षासनके अनुसार अभ्यास चालू रखें। तदुपरान्त शीर्षासन किये हुए ही पैरोंको पद्मासन की स्थितिमें स्थापित करें। श्वास-प्रश्वासकी अन्य विधियां शीर्षासन के समान ही हैं।

समय

१० दिनतक १ मिनट। ११ से २० दिनतक २ मिनट। २१ से ३० दिनतक ४ मिनट। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभके अनुसार ८ मिनटतक बढ़ायें।

लाभ

पैरोंके तलुवोंके गड्ढे और उँगलियोंके रोग पूर्णतया मिट जाते हैं।

पद्मासन

चित्र- संख्या ६; (पूर्णसंख्या २८)

(पृष्ठसंख्या ३६ देखिये)

पद्मासनको कमलासन भी कहते हैं और इसके साधनकी पद्धति इस प्रकार है:—

बायें पैरको दाहिनी जानुपर और दाहिने पैरको बाईं जानुपर स्थापित करें। दोनों पैरोंकी एड़ियोंको नाभिके निचले भागमें दबाये रखें। दोनों हाथोंको दोनों घुटनोंपर रखें। मेरुदण्डको सीधा रखें। आंखोंको बन्द अथवा खुला भी रख सकते है। जिन स्त्री-पुरुषोंका शरीर अधिक स्थूल हो, जिनकी जानुओंमें विकृत स्थूलता हो और जिनके पैरपर पैर चढना असम्भव हो, उन्हें ऐसी दशामें एक ही जानुपर पैर चढाकर बैठना चाहिये और थोडी देरमें दूसरी जंधापर पैर रखनेका अभ्यास करना चाहिये। इस प्रकार कुछ दिनोंके अभ्यास के पश्चात् ऊपर बताये गये ढंगके अनुसार दोनों पैरोंको जानुओं पर चढानेका अभ्यास करना चाहिये। शरीर पतला होनेपर भी जमीन पर बैठनेकी जिन लोगोंकी आदत न हो; सदैव कुरसी, सोफा और पलंगपर बैठनेके ही जो लोग अभ्यस्त हों; उनके भी पैर पद्मासनके समय सम्भवतः मुड़ेंगे नहीं। ऐसे लोगोंको निराश न होना चाहिये। ऊपर बताई गई विधिके अनुसार निरन्तर अभ्यास करते रहनेसे अवश्य ही पद्मासनका अभ्यास हो जायेगा।

पद्मासन आवश्यक क्यों है ?

पद्मासनपर बैठते ही थोडी देरमें सुषुम्ना नाडी गतिवान् हो उठती है-चलने लगती है। मनको शान्ति मिलती है। इतना ही नहीं; शरीरके अवयव सीधे रहते हैं और लोलासन मत्स्यासन, पूर्ण पद्मासन, मयूरासन, तोलागुलासन, उर्ध्व पद्मासन, शीर्षासनयुक्त पद्मासन, उर्ध्वहस्त पद्मासन, कुक्कुटासन, गर्भासन आदि अनेक आसन इस आसनके साथ सम्बन्ध रखते हैं; अर्थात् एक पद्मासनके न करने से आप अनेक आसनोंके लाभोंसे वंचित रह जायेंगे।

समय

पद्मासनका अभ्यास कमसे कम आध घण्टेसे अधिक समयतक ले जाना चाहिये।

पद्मासनके लाभ

पद्मासनके अभ्यास से सिद्धासनके सभी लाभ तो प्राप्त होते ही हैं, साथ ही अन्य अनेकशः लाभ मिलते हैं। जैसे कि नाभिके अगल-बगल या कन्धस्थानमें सूर्य और चन्द्र नाड़ीका जो स्थान है, उसपर पैरोंकी एड़ियोंका दबाव पड़ता है। इस दबावसे सूर्य और चन्द्र नाड़ीका वायु-प्रवाह बन्द हो जाता है और सुषुम्ना नाड़ी चलने लगती है। सुषुम्ना नाड़ीके चालू होनेसे प्राणायामके समय में मन सात्विक भावोंमें प्रविष्ट हो जाता है और कुभक का समय बढ़ जाता है। प्राणायाम के प्रभावसे शरीर और मेरुदण्ड अनायास ही सीधे और खिंचे हुए रहते हैं। त्राटकके समय, पूजा-पाठ के समय, श्रवण, मनन और निदिध्यासनके समय, व्याख्यान के समय तथा भोजन के समय में पद्मासनपर बैठ सकते हैं।

स्थूल शरीरवाले स्त्री-पुरुषोंका कर्तव्य

जिन स्त्री-पुरुषोंका शरीर अधिक स्थूल है, उनकी जानु अधिक मोटी होनेसे सम्भवतः पद्मासनपर बैठते समय उनके पैरों में रक्ताभिसरण कम हो और फलस्वरूप पैर के दबे हुए स्थान पर शून्यताका और चींटियोंके रेंगने जैसा भान होगा। कुछ लोगोंके घुटनोंमें कुछ वेदना होनेकी भी सम्भावना है। परन्तु अभ्यास के उत्तरोत्तर बढते जानेपर उपर्युक्त प्रतिकूलतायें धीरे-धीरे दूर हो जायेंगी और पैरोंकी अधिक स्थूलता भी कम होकर उनमें स्फूर्तिका सचार होगा।

पूर्णपद्मासन (बद्धपद्मासन या योगमुद्राका पहला (अपूर्ण) प्रकार

चित्र-संख्या ७; (पूर्णसंख्या २९)

(पृष्ठ सं. ३७ देखिये)

चित्र सं. ६ के अनुसार पद्मासनपर बैठकर दोनों हाथोंको पीठकी ओर ले जायें और बायें हाथसे दाहिने हाथकी कलाई पकड़ कर कमरके पिछले भागपर स्थापित करें। यदि पेट बड़ा और चरबीसे भरा हुआ हो तो दोनों नासा-पुटोंसे श्वासको बाहर निकाल कर (रेचक करके) और यदि पेट छोटा हो तो श्वासको अन्दर खींच कर (पूरक करके) शिरको सामने भूमिपर रखना चाहिये। श्वासको यथासम्भव चालू रखना चाहिये। तदनन्तर श्वास को अन्दर भरकर; अर्थात् पूरक करके शिरको जमीनसे ऊपर उठा लें और पूर्ववत् सीधे बैठ जायें। आंखें बन्द भी रख सकते है और खुली भी रख सकते है। जो लोग आखोंकी ज्योति बढ़ानेकी इच्छा रखते हैं, उन्हें चाहिये कि वे शिरको भूमिपर रखनेके बाद आखोंकी पुतलियों को दाहिने और बायें तथा ऊपर और नीचे घुमाते रहें।

समय—३ दिनतक ४ बार। ४ से ७ दिनतक ६ बार। ८ से १२ दिनतक ८ बार।

बद्धपद्मासन का दूसरा प्रकार

(चित्र-संख्या ८; पूर्णसंख्या ३०)

(पृष्ठसंख्या ३८ देखिये)

पद्मासनपर बैठकर दोनों हाथों को पीछे की ओर ले जाकर बायें हाथ से बायें पैर के अँगूठे को और दाहिने हाथ से दाहिने पैर के अँगूठे को पकड़ कर बैठें और श्वासोच्छ्वास चालू रखें।

समय

३ दिनतक १ मिनट। ४ से ६ दिनतक दो मिनट। ७ से ९ दिनतक ३ मिनट। तदुपरान्त समय, प्रकृति और लाभसे अनुसार कमसे कम ३ से ५ मिनटतक करना चाहिये।

बद्धपद्मासनका तीसरा प्रकार

(चित्र-संख्या ९, सम्पूर्ण संख्या ३१)

(पृष्ठ-संख्या ३९ देखिये)

दूसरे प्रकारमें बताये गये अनुसार बद्धपद्मासनपर बैठने के उपरान्त पेट बडा हो तो श्वास बाहर निकालकर और यदि पेट छोटा हो तो श्वास अन्दर भरकर शिरको दाहिने घुटने के पास जमीनपर रखें। जबतक श्वास को अनायास या आसानीसे रोका जा सके, तबतक रोक रखें। तत्पश्चात् उसी अवस्थामें ५ बार श्वास-प्रश्वास जारी रखें। उस समय शिरको भूमिपर ही रखे रहें। तत्पश्चात् श्वासको फेफडोंमें भरकर अथवा बाहर निकालकर पूर्ववत् सीधे बैठ जायें।

बद्धपद्मासनका चौथा प्रकार

(चित्र-संख्या १०, पूर्णसंख्या ३२)

(पृष्ठसंख्या ४० देखिये)

चित्र-सख्या ८ (पूर्णसख्या ३०) के अनुसार बैठने के पश्चात् श्वास को फेफडों में भरें अथवा निकाल दें। तदनन्तर शिर को बायें घुटने के पास रखें और ५ बार श्वासोच्छ्वास लेनेतक शिर को भूमिपर ही स्थित रखें। ६ ठें बार मे श्वास को बाहर निकाल कर अथवा अन्दर भर कर चित्र-संख्या ८ (पूर्णसख्या ३०) में बताये गये अनुसार पुन. सीधे बैठ जायें।

समय

चित्र-संख्या ९ और १० का समय एक ही माना जायेगा; अर्थात् एकबार शिरको दाहिनी ओर रखें और दूसरी बार बांई ओर रखें। इस प्रकार बारी-बारीसे दाहिनी और बांई-दोनों ओर करना चाहिये। ४ दिनतक ६ बार। ५ से ७ दिनतक ८ बार। ८ से १० दिनतक १० बार। तदनन्तर समय, शक्ति और लाभके अनुसार १० से १२ बारतक बढा सकते हैं।

बद्धपद्मासनका ५ वां (संपूर्ण) प्रकार

चित्र-संख्या ११; (पूर्ण संख्या ३२)
(पृष्ठ सं. ४१ देखिये)

चित्र स. ८ पूर्ण-सख्या ३० के अनुसार पद्मासनपर बैठनेके उपरान्त श्वास अन्दर खींचें अथवा बाहर निकाल दें। शिरको पेटके सामने जमीनसे टिका दें। यदि हो सके तो छाती को भी भू-स्पर्श करानेका प्रयास करें। इसी अवस्थामें श्वासोच्छ्वास को ५ वार अन्दर खीचें और बाहर निकाल दें। तत्पश्चात् श्वासको अन्दर खींचकर या बाहर निकालकर चित्र-संख्या ८ की स्थितिपर पुनः बैठ जायें।

समय

३ दिनतक ३ बार। ४ दिनसे ५ दिनतक ६ बार। तदुपरान्तः समय, शक्ति और लाभ के अनुसार ८ बारतक बढायें।

विशेष सूचना

शिरको भूमिसे टिकाने या स्पर्श कराने के पश्चात् श्वासोच्छ्वास की गतिको अधिक तेज न रखें। जहांतक हो सके, दीर्घ अर्थात् लम्बा श्वास लेनेका प्रयत्न करते रहें। उस समय छातीका भाग तना हुआ रहे; गलेका भाग खिंचा हुआ रहे और कन्धोंके भागोंपर दबाव पड़ता रहे। शरीर को ऐसी स्थितिमें रखना चाहिये कि जिससे स्नायुओंपर तनावका प्रभाव पड़े। पैरों की उँगलियोंसे हाथोंकी उँगलियोंको पकड़ रखें। आखें बन्द रखें अथवा खुली रखें। जिन लोगोंका मन स्थिर नहीं है; उनके लिये

आंखें बन्द रखना ही हितकर होगा। यदि आखोंकी ज्योति बढानी हो तो चित्र-संख्या ७ (पूर्णसख्या २९) के अनुसार अभ्यास करें। मलद्वार, कन्धस्थान, नाभिस्थान आदि अवयवोंको पीछे की ओर खींच रखें। जिन स्त्री-पुरुषोंको हाई ब्लडप्रेशर (रक्तका मास्तिष्क की ओर अधिक दबाव) का विकार है, उन्हें चाहिये कि वे श्वास को बाहर निकालकर उपर्युक्त बद्धपद्मासनके सभी 'प्रकारों' का अभ्यास करें। जिन लोगोंको लो-ब्लडप्रेशर अर्थात् नीचे की ओर रक्त का दबाव है, उन लोगोंको श्वास फेफड़ोंमें भरकर बद्धपद्मासनका साधन करना चाहिये। सभी स्त्री-पुरुषोंके लिये आसन सुगम और लाभकर है। सभी लोग इसे निरापद रूपसे भली भाति कर सकते हैं। जिन लोगोंको अण्डकोश का रोग हो, अर्थात् आन्त्र वृद्धि (हार्निया) के रोगसे पीड़ित हों, वे श्वासको बाहर निकाल कर इस आसनका अभ्यास करें। मूलव्याधि (रक्तार्श) के रोगी भी श्वासको बाहर निकाल कर ही यह आसन करें और इसके लाभोंको पाकर कृतार्थ हों।

बद्ध पद्मासनके लाभ

इस आसनके अभ्यास से पेटकी चरबी कम होती है। हाथ-पैरोंके स्नायु बलवान् बनते हैं। मूत्रपिण्ड और वीर्याशयमें मजबूती आती है। पथरी और आन्त्रपुच्छ के रोग मिट जाते हैं। कानोंके आन्तारिक भाग (पर्दे) सशक्त और सुदृढ़ होते हैं और अनेकशः कर्णरोगोंसे मुक्ति दिलानेमें यह आसन सहायक होता है। मृगी (वायुविकार, ज्ञानतंतु और क्रियातन्तुओंकी निर्बलता, शिर की ओर रक्ताभिसरण के अभावसे उत्पन्न अनेकशः रोग) आदि अनेक रोग दूर होते हैं। समग्र शरीर में सप्तधातु अच्छी तरह हल-चल करने में तत्पर हो जाते है। नाड़िया शुद्ध हो जाती हैं। प्रारम्भिक क्षय (टी. बी.) दमा (अस्थमा), शिरोवेदना और भगन्दर रोगके निवारण में यह पद्मासन सहायभूत होगा। बहनोंको मासिक धर्मके समयमें या उससे पहले कन्धस्थानमें जो वेदना होती है; वह न होगी। भूख अच्छी खुलकर लगेगी। अपान वायुकी व्याधि मिट जायगी तथा अन्य अनेक लाभ इस आसनसे प्राप्त होते हैं।

बद्धपद्मासन ६ ठां (सम्पूर्ण) प्रकार

(चित्र-संख्या १२; पूर्णसंख्या ३४)

(पृष्ठसंख्या ४२ देखिये)

बद्धपद्मासन का यह ६ ठां प्रकार ५ वें प्रकारकी तरह सम्पूर्ण है। समय और लाभ भी दोनों का एक ही है। अन्तर केवल इतना है कि ५ वें प्रकारमें शिरको भूमिसे लगाया जाता है और ६ ठें प्रकारमें छाती और ठुड्डीसे जमीनका स्पर्श किया जाता है। यह कोई अनिवार्य शर्त नहीं है कि ५ वें और ६ ठें—दोनों प्रकार करने ही पड़ेंगे। यदि ५ वा प्रकार करें तो ६ ठें प्रकारको न करें और यदि ६ ठां प्रकार करें तो ५ वा प्रकार न करें। ६ ठां प्रकार पर्याप्त कठिन है। सभी लोग इसका अभ्यास भलीभाति कर भी नहीं सकते।

सुप्त उर्ध्वहस्तासन

(चित्र-संख्या १३।१४; पूर्णसंख्या ३५।३६)

(पृष्ठसंख्या ४३ और ४४ देखिये)

जमीनपर शवासनकी तरह चित लेट जायें। तदुपरान्त दोनों हाथोंको शिरके दोनों ओर पीछेकी ओर जमीनपर फैला दें। हथेलियोंका तलभाग ऊपरकी ओर रहे और बायें हाथका अँगूठा दाहिने हाथके अंगूठे और तर्जनीके मूलके बीच दबा रहे। उँगलियों सहित पैरके पंजे आगेकी ओर खिंचे रहें। तदनन्तर दोनों नासिका-छिद्रोंसे श्वासको अन्दर खींचकर दोनो हाथोंको, शिरको तथा पीठके भागको एक साथ ऊपर उठायें और चित्र-सख्या १३ के अनुसार कमरके ऊपरके भागको सीधा सम-रेखा में रखकर बैठ जायें और तुरन्त ही झुककर एव धीरे-धीरे आगे बढकर दोनों पैरोंके अंगूठोंको दोनों हाथोंकी उँगलियोंसे पकड़ लें—जैसा कि विशेष श्रमसाध्य आसनोंके अन्तर्गत निदर्शित पश्चिमोत्तानासनमें बताया गया है। इसके बाद तुरन्त ही श्वासको बाहर निकालकर पुनः श्वास अन्दर भर लें और हाथोंको पूर्ववत् उपर उठाकर भूमिपर लेट जायें। इस प्रकार उर्ध्वहस्त सुप्तासन पूरा होता है। लेटनेके पश्चात् पुनः श्वासको छोड़ दें। उठते समय और लेटते समय शिरके साथ ही हाथोंको रखें।

समय—५ दिनतक ३ बार। ६ से १० दिनतक ५ बार। १० दिनके पश्चात् शक्ति और लाभके अनुसार ८ से १० बारतक बढ़ायें।

इस आसनके अन्य सुलभ प्रकार

इस आसनको सभी स्त्री पुरुष कर सकते हैं। इस आसनके और भी कई प्रकार हैं। जिन लोगोंको उपर्युक्त प्रकारका अभ्यास कठिन मालूम हो, उन्हें चाहिये कि वे हाथोंकी उँगलियोंको मिलाकर शिरके नीच रखें और उन्हींके बलसे—उन्हींकी सहायता से शिरको ऊपर उठाने का प्रयास करें। तदुपरान्त शिरको घुटनों से लगाते समय श्वास को बाहर निकाल देना चाहिये। फिर तुरन्त ही श्वास अन्दर खींचकर पूर्ववत् लेट जायें। इस आसन की अभ्यास – क्रिया के आरम्भ से अन्त तक शिर को हाथों से जकड़ा रखना चाहिये। उपर्युक्त आसन के सभी प्रकारों की साधना करते समय सम्भव है दोनों पैर भी ऊपर उठ जायें, किन्तु पैर उठने न पायें। पैरों को जमीन के साथ दृढ़तापूर्वक सटाये रखें। जिनका शरीर मेद से अधिक भरा हुआ और जड़ हो, वे भी इस आसनका अभ्यास आसानी के साथ कर सकते है।

समय:— ३ दिनतक ३ बार। ४ से ६ दिनतक ४ बार। ६ से १२ दिनतक ८ बार। तत्पश्चात् आयु, शक्ति और लाभके अनुसार १२ बारतक बढ़ा सकते हैं। सभी स्त्री-पुरुष यह आसन कर सकते हैं।

भुजंगासन (अपूर्ण रूप)

(चित्र-संख्या १५; पूर्णसंख्या ३७)

(पृष्ठसंख्या ४५ देखिये)

अंगुष्ठनाभिपर्यंतमधौ भूमौ विनिन्यसेत्
करतलाभ्यां धरां धृत्वा उर्ध्वं शीर्षं फणीव हि।

—घेरडसंहिता २.४१

जमीनपर पेटके बल सीधे लेट जायें। पैरोंकी उँगलियोंको जमीनपर पीछेकी ओर खिंचा रखें। दोनों हाथोंको छातीके अगल-बगल दृढ स्थापित करें। ठुड्डीसे जमीनका स्पर्श करें। शरीर खिंचा हुआ रखें, शिथिल (ढीला) न रखें।

भुजंगासन (सम्पूर्ण रूप)

(चित्र-संख्या १६; पूर्ण-संख्या ३८)

चित्र - सख्या १५ (पूर्ण संख्या ३७) में बताये गये अनुसार लेट जाने के पश्चात् श्वास को फेफड़ोंमें भरकर चित्र - संख्या १७ (पूर्णसंख्या ३८ के निर्देशानुसार हाथों के आधार पर पहले ठुड्डी, तत्पश्चात शनै :- शनै : छाती और पेट (नाभि) तक के भाग को ऊपर उठाकर रखें। यथाशक्ति कुम्भक करके अर्थात श्वास को रोककर शरीर को ऊपर उठायें और ऊपर उठाने के पश्चात् श्वासोच्छ्वास चालू रखें। किसी कारणवश यदि श्वास को रोक रखने की शक्ति न हो तो ५ बार श्वास को खींचें और छोड़ें। ६ ठीं बार छातीमें श्वास भर कर नीचे जमीन पर शनै:- शनै: आ जाये और श्वास को बाहर निकाल दें। पेट के भाग को जमीन से उठाते समय पैरों के फैल जाने की सम्भावना है। अत: जहातक सम्भव हो, दोनों पैरों को परस्पर मिलाये रखने का प्रयास करें।

समय — ५ दिन तक ४ बार। ६ से ११ दिन तक ६ बार। १२ से २१ दिन तक ८ बार। तत्पश्चात् आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार १२ बार तक बढायें

विशेष रूपसे ध्यान रखने योग्य बातें

चित्र स. १६ (पूर्ण सं. ३८) में निर्दिष्ट सम्पूर्ण भुजंगासन का अभ्यास करते समय शिर के भाग को पीठ की ओर ले जाने का प्रयास निरन्तर जारी रखे और सर्प के शिर की तरह अपने शिर को पीछे की ओर खिंचा रखकर दाहिने - बायें हिलाते रहें। आंखों की दृष्टि खुली रखें। मुंह बन्द रखें। इसी तरीके को सम्पूर्ण भुजगासन कहते हैं।

भुजंगासनके लाभ

भुजगासनके अभ्यास से कण्ठनली साफ होती है और उसमें शक्ति आती है। मास्तिष्ककी शक्ति और आखोंकी ज्योति बढ़ती है। बाहुबलमें भी वृद्धि होती है। हाथोंके स्नायु सुदृढ़ होते हैं। पसलियोंकी पीड़ा मिटती है। पीठकी रीढ अर्थात् मेरुदण्डमें लचीलापन आकर उसका वातविकार दूर होता है। कमरके दर्दसे सदाके लिये

पीछा छूट जाता है। गलेकी सूजन मिटती है और गलेके स्नायु मजबूत होते हैं। स्मरणशक्ति बढानेके लिये जैसे शीर्षासन लाभदायक है, उसी तरह यह आसन भी परम हितकर है। इसका कारण यह है कि स्मरणशक्ति बढानेवाले आवश्यक जीवनसत्व ले जानेवाले जो मार्ग (रक्तवाहिनी नाडी, वायुवाहिनी नाडी, मज्जातन्तु, क्रियातन्तु आदि) हैं, उन मार्गोंको सशक्त बना लेना अनिवार्य है। इन अवयवोंका सुव्यवस्थित विकास इस अभ्यास – कालमें सतत होता जाता है। गर्भवती स्त्रिया प्राथमिक ४ मासतक इस आसनको कर सकती हैं; तदुपरान्त उनके लिये यह आसन वर्जित हैं। मूर्छा रोग के लिये भी यह आसन अतीव हितकर है और उन्माद रोगियोंको भी अच्छा लाभ पहुंचाता है। गण्डमाला, कण्ठमाला, गुल्म रोग, आरम्भ का बहिरापन और आरम्भिक कर्णस्राव, कर्णकण्डू, कर्णपाक और कर्णशोथ आदि अनेकों व्याधियोंसे छुटकारा मिलता है। गले के स्वर में सुधार होता है और आरम्भ का विद्रधि रोग दूर होता है। तालु का पाक आदि मुख के बहुतेरे रोग इस आसन से नष्ट होते हैं।

मत्स्यासन

(चित्र–संख्या १७; पूर्णसंख्या ३९)

(पृष्ठसंख्या ४७ देखिये)

मुक्तपद्मासन कृत्वा उत्तानशयनं चरेत्।
कूर्पराभ्यां शिरो वेष्ट्य मत्स्यासमन तु रोगहा।

—घेरंड संहिता २.२१.

पद्मासन लगाकर बैठने के उपरान्त पीठ की ओर जमीन पर लेट जायें। लेटते समय हाथों का सहारा ले लें और लेट कर कमर, पीठ घुटनों और शिर के भाग को भूमिसे टिका दें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। दाहिने पैर की उँगलियों को बायें हाथ की उँगलियोंसे पकडें और बायें पैर की उँगलियों को दाहिने हाथ की उँगलियोंसे पकडें। शरीर में साधारण तनाव रखें; ढीलापन न रहे। कोई भी एक घुटना कदाचित पृथ्वी से कुछ ऊपर रहे तो हानि नहीं। जानबूझ कर ऊपर न रखें और अधिक तनाव से भी घुटनों को जमीन पर रखने का प्रयास करना उचित नहीं। शनैः– शनैः अभ्यास करते

रहने से थोड़े दिनों के पश्चात् दोनों घुटने स्वतः भूमि से लगने लगेंगे। कभी घुटनों का जमीन से स्पर्श होते समय पीठ के ऊपर उठ जाने की सम्भावना रहेगी। किन्तु ऐसा होने न दें; पीठ को भूमि से लगाये रखें। इस प्रकार के कुछ देर के अभ्यास के पश्चात् पीठ के भाग को जमीन से ऊपर उठा लें और शिर को जमीन पर ही रखे रहें। हाथ की कुहनियों को जमीन से टिका दें। आखें खुली भी रख सकते हैं और बन्द भी रख सकते है। गले के अग्र भागपर और मुंहपर तनाव पड़े, इस प्रकार शिर को जमीन से जकड़े रखें। इस समय छाती में भी तनाव आने की सम्भावना है।

समय

३ दिन तक १ मिनट। ४ से ६ दिन तक १॥ मिनट। ७ से १० दिन तक २ मिनट। १० से २० दिन तक ४ मिनट। २० दिन के बाद यथाशक्ति आयु और लाभ के अनुसार ५ से ८ मिनट तक अभ्यास बढ़ायें। सभी स्त्री-पुरुष इस आसन का अभ्यास कर सकते हैं।

लाभ

जैसे मछलिया जल में तैरती हैं; उसी तरह इस आसन को लगा कर साधक घण्टो जल में पड़ा रह सकता है; तैर सकता है।

अन्य लाभ

छातीका भाग विकसित होकर विशाल बनता है। गले के ज्ञानतन्तु क्रियातन्तु, स्नायु आदि अवयव मजबूत बनते हैं। मेरुदण्ड (पीठ की रीढ़) के रोग और मेरुदण्ड की कमजोरी दूर होगी। वृद्धावस्था में भी उस में झुकाव नहीं आयेगा, अर्थात् वह टेढ़ा नहीं होगा, सदैव सीधा तना रहेगा। यदि मेरुदण्ड झुक गया होगा तो इस आसन के प्रभाव से पुनः सीधा तन जायेगा। शिर में और शरीर में ओजस् तत्त्व बढ़ जायेगा। जो लोग दांतों को मजबूत बनाने की इच्छा रखते हैं; उन्हें चाहिये कि वे इस आसन को करते समय दोनों ओर—ऊपर-नीचे-के दांतों को दबाकर रखें। कर्णशूल के निवारण के लिये यह आसन अनुकूल है और कुछ लोगों का कर्णस्राव भी सम्भवतः इस आसन से मिट जायेगा। और भी अनेक लाभ इस आसन से मिलते हैं, जिन का अनुभव इस के अभ्यास से ही किया जा सकता है।

तोलांगुलासन (तुलासन)

(चित्र-संख्या १८; पूर्ण संख्या ४०)

पृष्ठसंख्या ४८ देखिये)

पद्मासन पर बैठने के पश्चात् पीठ के बल जमीन पर लेट जायें। दोनों कूल्हों के नीचे दोनों हाथों की मुष्टिकायें (मुठिया) रखें। पीठ के भागको हाथों के आधार पर जमीन से उठायें और पैर तथा शिर के भाग को अधिक उठाकर रखें। इस आसन को करते समय शिर और पैरों को ऐसी आकृति में रखना चाहिये, जैसे तराजू के दोनों पल्ले समान सतहपर रहते हैं। आखों को खुला रखें। शरीर को ढीला न रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। इस दशा में शरीर के हिल उठने की भी सम्भावना है। परन्तु शिर, पैर और हाथों के बलपर शरीर को स्थिर रखने का प्रयास करें।

समय

७ दिन तक आध मिनट। ८ से १५ दिन तक १ मिनट। १५ दिन के पश्चात् आयु, बल और लाभ के अनुसार ३ मिनटतक अभ्यास बढायें।

लाभ

इस आसन के अभ्यास से नाभिस्थान में स्थित मणिपूर चक्र सतेज होता है। भूख बढ जाती है। वायुरोग प्रभावित होता है। कण्ठमणि मजबूत होती है। गले के स्वर में सुधार होता है। स्वरकी कर्कशता मिटकर उसमें माधुर्य आता है और आंखों की दृष्टि भी अच्छी रहती है और कूल्हे के भाग की सूजन दूर होती है। कमर की शक्ति बढ़ती है। हाथों और कन्धों में नवीन शक्ति का सञ्चार हो उठता है।

एकपाद शलभासन

(चित्र-संख्या १९; पूर्णसंख्या ४१)

(पृष्ठसंख्या ४९ देखिये)

अधास्य शेते करयुग्मवक्षे भूमिमवष्टभ्य करयोस्तलाभ्याम् ।
पादौ च शून्ये च वितास्ति चोर्ध्वे वदन्ति पीठं शलभं मुनीन्द्राः ॥

— घेरंडसंहिता २.३८.

पेट के बल जमीनपर लेट जायें। दोनों हाथों को शरीर के अगल-बगल कमर के पास स्थापित करें। हाथों की मुट्ठियाँ बँधी रहें। ठुड्डी भूमिका स्पर्श करती रहे। पैरों की उँगलियोंको जमीनपर सीधा रखें। तदुपरान्त दोनों नासापुटों से श्वास फेफडोंमें भरकर दाहिने पैर को जमीन से ऊपर उठायें। सरलता के साथ पैर जितना ऊपर उठ सके, उतना ही उसे ऊपर ले जायें। दाहिने हाथ के बलपर ही दाहिने पैर को उचित सतहतक उठाना चाहिये। पैर को जमीन से ऊपर उठाये रखने की स्थिति में ही ५ बार श्वास को खींच कर फेफडो में भरें और निकाल दें। ६ ठीं बारमें श्वास को अन्दर भर कर पैर को भूमिके पास शनैः- शनैः ले आयें और उसे जमीनपर रख दें। तदुपरान्त तुरन्त ही बायें हाथके जोरपर बायें पैर को ऊपर उठायें और दाहिने पैरके समान ही श्वासोच्छ्वास की क्रिया करें। आंखें वद भी रख सकते हैं और खुली भी रख सकते हैं। शररि को साधारण खिंचाव की स्थितिमें ही रखना चाहिये। पैर को जमीन से उठाने और स्थिर रखने के समयमें ध्यान रखें कि वह कमर की सम-रेखा में रहे। पैर को बिलकुल हिलना नहीं चाहिये, स्थिर रहना चाहिये और घुटने से मुडना भी नहीं चाहिमे।

समय

४ दिनतक ३ बार। (एक-एक पैर का तीन बार)। ५ से ८ दिन तक ४ बार। ९ से १२ दिन तक ५ बार। १३ से १६ दिन तक ६ बार। तत्पश्चात् आयु, बल और लाभ के अनुसार ८ बार तक बढायें।

लाभ

जानु, नितम्ब, कमर और पेट में अधिक परिमाण में भरी हुई चरबी कम हो जाती है। बवासीर (अर्श) का रोग दूर होता है। अण्ड कोशकी नाडियां मजबूत होती हैं। पैरों के तलुवों का दर्द मिट जाता है। आन्त्रपुच्छ (एपेण्डिसाइटिस) का रोग दूर होता है। पेटका शूल मिटता है। समान वायु और अपान वायु के विकार से छुटकारा मिलता है। प्राणवायु की गति अच्छी रहती है। घुटनों का दर्द भी दूर होता है।

द्विपाद् शलभासन

(चित्र-संख्या २०; पूर्णसंख्या ४२)

(पृष्ठसख्या ५० देखिये)

चित्र – सख्या १९, पूर्ण सख्या ४१ में बताये अनुसार जमीन पर लेट जायें। श्वासको दोनों नासाछिद्रोंमें भरकर दोनों पैरो को हाथों के आधार पर जमीन से उठायें। पैर को ऊपर स्थिर रखने की स्थितिमें कम से कम ३ बार और अधिक से अधिक ५ बार श्वास को खींचें और बाहर निकालें। तदनन्तर श्वास को फेफडों में भरकर पैरों को शनैः- शनैः भूमिपर लाकर रख दें। आखें बन्द भी रख सकते हैं और खुली भी रख सकते हैं। इस आसन को करते समय पैरोंको सीधा रखने का ही प्रयास करें; घुटनेसे मुडने न दें। इस आसन को करते समय ठुड्डी भी जमीन को छूती रहे। आसन-अभ्यास के आरम्भ-काल में कई दिनतक जमीन से पैर बहुत कम परिमाण में ऊपर उठ सकेंगे। कमर में साधारण पीडा का भी अनुभव होगा। इसका कारण यह है कि शरीर में जड़ता की अधिकता है, पीठ की रीढ अर्थात मेरुदण्ड में त्रुटियां हैं। मेरुदण्ड में लाघव (लचीलापन) नहीं है और उसमें कठोरताकी अधिकता है। वीर्य-दोष, हाथ-पैरों के सांधों मे निर्बलता आदि इस आसन के अभ्यास में बाधक हैं। परन्तु इस आसन का अभ्यास निरन्तर जारी रखने से महीने-डेढ महीने में ही उपर्युक्त समग्र बाधक लक्षण शनै.- शनैः मिट जायेंगे। किसी भी आसन का अभ्यास करते समय कुछ वेदना, कुछ कष्ट और कुछ कठिनाइयों का होना स्वाभाविक है।

इसका अर्थ यह समझना चाहिये कि उस में रोग के निवारण की क्षमता अधिक है और शरीर को शास्वत सामर्थ्य प्रदान करने की क्षमता भी इस आसन में विद्यमान है।

समय

४ दिनतक दो वार। ५ से ८ दिनतक ४ वार। ९ से १५ दिनतक ५ वार। १६ से २२ दिनतक ७ वार। तत्पश्चात् यथाशक्ति आयु और लाभ के अनुसार ८ वारतक बढ़ा सकते हैं।

लाभ

पैरोंकी सूजन मिटती है। गलेमें नवीन शक्तिका संचार होता है। वातज, पित्तज और कफज गुल्म रोग नष्ट होता है। मूत्रकृच्छ्र, मधुप्रमेह, मूत्राघात और बस्तिकुण्डल आदि रोग मिट जाते हैं। महिलाओंके रजोदर्शन - कालमें कन्वस्थानमें जो वेदना होती है; वह इस आसनके अभ्यास से मिट जाती है। फुफ्फुस (फेफडे) के रोग दूर होते हैं। जलोदर रोग सदा के लिये समाप्त हो जाता है। आरम्भिक भगन्दर रोगपर इस आसन का शुभ प्रभाव होता है।

जानु-शिरासन (पहला प्रकार)

चित्र - संख्या २१ (पूर्णसंख्या ४३)

(पृष्ठसख्या ५१ देखिये)

सीधे बैठ जाने के पश्चात् बायें पैरको घुटनेसे मोडकर उसकी एड़ीको सिवनी स्थान (अण्डकोश के नीचे के भाग) में लगा रखें। पैरके तलुवेको दाहिने पैरकी जानुसे लगा दें और हो सके तो एडीको सिवनीमें लगा दें। दाहिने पैर को सामने की ओर फैला रखकर उसके अँगूठको दोनों हाथो की मध्यमा, तर्जनी और अंगूठे से पकड लें। तदनन्तर मस्तक (ललाट) को घुटनेसे लगा दे। घुटनेसे ललाट को लगाते समय घुटना जमीन से उठने न पाये आर बायें पैर का घुटना भी जमीन से उठने न पाये और न टेढ़ा होने पाये। स्वासोच्छ्वास चालू रखें। आखें बन्द रखें अथवा खुली रखें। इस अभ्यास के पूर्ण हो जानेपर दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर सिवनी–स्थान (अण्डकोश के नीचे के भाग) पर स्थापित करें और बायें पैर को सामने की ओर फैलाकर उसके अंगूठे को दोनों हाथों की मध्यमा, तर्जनी और अंगूठे से पकड लें। शेष क्रिया दाहिने पैर के अनुसार ही करें।

जानुशिरासन (दूसरा प्रकार)

चित्र - संख्या २२ (पूर्णसंख्या ४४)

(पृष्ठसंख्या ५२ देखिये)

बायें पैर को घुटने से मोड़कर जानु के ऊपर के भागपर रखें। दाहिने पैरको सामने फैलाकर दोनों हाथोंकी उँगलियोंसे अँगूठेको पकड़ रखें। शिरको दाहिने पैरके घुटने से लगायें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आंखें बन्द भी रख सकते हैं और खुली भी रख सकते हैं। तत्पश्चात् जो पैर मुड़ा हुआ है, उसको सीधा सामने की ओर फैला दें और जो पैर फैला हुआ है, उसको मोड़कर बायें पैर की जानुपर रखें। शेष क्रिया ऊपरकी विधि के समान है।

जानुशिरासन [तीसरा प्रकार]

चित्र-संख्या २३ पूर्णसंख्या ४५

(पृष्ठसंख्या २३ देखिये)

बायें पैर को सामने की ओर फैला दें। फिर दाहिने पैर के घुटने को मोड़कर जानुमूल और कन्धस्थान पर रखें। बायें हाथ की उँगलियों से फैले हुए बायें पैर के अँगूठे को पकड लें (और दाहिने हाथ को पीठ की ओर ले जाकर दाहिने पैर के अँगूठे को पकड लें। तदनन्तर ललाट को बायें पैर के घुटने से स्पर्श करें। श्वास-प्रश्वास चालू रखें। आखें खुली रखें अथवा बन्द रखें। इस अभ्यास के बाद जो पैर मुडा हुआ है, उसे सीधा फैला दें और फैले हुए पैर को मोड कर जानुपर रखें। शेष क्रिया ऊपर के समान है।

विशेष सूचना

जिन स्त्री-पुरुषों का पेट चरबी से भरा हुआ हो अथवा कमर झुकती न हो, पैर के साथे भी अधिक जड़ (कठोर) हों उन लोगों का शिर घुटनों के पास पहुंच न सकेगा। कदाचित् थोड़ा बहुत शिर नीचे झुक जाने पर पैर के घुटने का भाग उठ

जाता है, जिससे लोग इस आसन को कठिन समझ कर इस के अभ्यास को छोड बैठते है। इतना ही नहीं; ५।६ दिन तक कमर और पैरों के सांधों में कुछ अंशो में वेदना होने की भी सम्भावना रहती है। इस से भी लोग इसे छोड भागते है। ऐसे लोगों के लिये अति अनुकूल हो और वेदना भी कम से कम हो एव अभ्यास-कालमें निराशा की भावना उत्पन्न न हो, नित्य-प्रति कुछ न कुछ प्रगति के पथपर आगे बढने का लक्षण प्रतीत हो, ऐसा अभ्यास निम्नलिखित रूपमें है।

बाये पैर को मोड कर उसकी एड़ी को सिवनी-स्थानपर लगा दें। एड़ी से घुटने तक का भाग जमीन पर रखा रहे। तत्पश्चात् दाहिने पैर को ऊपर की ओर मोडकर रखें। एडी और जानु के मूल भाग में लगभग एक फीट का अन्तर रहे। तदुपरान्त दाहिने हाथ की तर्जनी और मध्यमा उँगलियों से दाहिने पैर के अंगूठे को पकड़ कर पैर को यथासम्भव आगे फैलाने का प्रयास करें। जहां तक पैर पहुच सके वहां तक ले जा कर वहां कुछ देर तक स्थापित रखें। फिर उसी पैर को सकुचित करें आगे बढाते जायें। इस प्रकार का अभ्यास वारंवार करते रहने से सांधे, कमर और पैर के सांधे, ढीले और नरम होते जायें गे और शिर भी घुटने के पास अनायास पहुचने लगेगा। यही अभ्यास पैरों को वारी-वारी से बदल-बदल कर करते रहें। सर्वसामान्य रूप से व्यवहारयुक्त जानुशिरासन का जो प्रथम प्रकार बताया गया है, वही सर्वत्र सिखाया जाता है; किया और कराया जाता है। दूसरे और तीसरे प्रकार के जो जानुशिरासन हैं; उनका अभ्यास श्रमसाध्य होने के कारण वह न तो कहीं किये जाते हैं और न सिखाये ही जाते हैं। साधक लोग नीचे लिखे अनुसार समय को पहले प्रकार के जानुशिरासन के समान ही समझें।

समय

४ दिन तक २ मिनट। ५ से १० दिन तक ३ मिनट। १० से २० दिन तक ४ मिनट। २० दिन के पश्चात् यथाशक्ति लाभ और आयु के अनुसार ६ मिनट तक बढायें। यह समय दोनों पैरों का अलग-अलग समझना चाहिये।

लाभ

वीर्य के अनेकशः रोग-जैसे कि वीर्यका पतलापन, पेशाब के साथ वीर्य का जाना, पसीने के साथ वीर्य का जाना, स्वप्नावस्था में वीर्य-स्खलन, वीर्य-दौर्बल्य के

कारण शिश्नेन्द्रिय का अकारण अकड़ जाना, अण्डकोश की दुर्बलता आदि अनेकशः व्याधियां पूर्णतः निर्मूल हो जाती हैं। यकृत मजबूत बनता है। पसलियां मजबूत बनती हैं और वीर्यकोश तथा मूत्राशय में दृढता और शक्ति आती है। पथरीके रोगियों के लिये भी यह आसन अतीव हितकर है। अतिसार (मरोड़) पाण्डु रोग और कृमिरोग इस आसन से मिट जाते हैं। दन्तरोगी इस आसन को करते समय नीचे-ऊपर के दांतों को जकड़ कर रखें, जिससे दांत के मूलों में मजबूती आती है। शिरागत वायु, मज्जा-अस्थिगत वायु और पक्षाघात के रोगियों को भी यह आसन लाभ पहुचायेगा। इस जानुशिरासन के जो अन्य दूसरे और तीसरे प्रकार बताये गये हैं; उनके करने से अनेक लाभ मिलते हैं। इससे स्त्रियों के गर्भाशय का रोग पूरी तरह से दूर हो जाता है। गला सूख जाना, अति तृषा आदि विकारों का पूर्ण रूप से प्रशमन हो जाता है।

गोमुखासन (पृष्ठभाग)

(चित्र-संख्यां २४; पूर्णसंख्या ४६)

(पृष्ठ सं. ५४ देखिये)

सव्ये दक्षिणगुल्फं तु पृष्ठपार्श्वे नियोजयेत्
दक्षिणेऽपि तथा सव्यं गोमुखं गोमुखाकृतिः

— या. सं.

बायें पैर को मोड़ कर दाहिने कूल्हे के नीचे रखें। दाहिने पैर को बायें पैर के ऊपर ले जाकर बायें कूल्हे के नीचे रखें। फिर चित्र-सख्या २२; पूर्णसख्या ४४ में बताये गये अनुसार हाथों को पीछे की ओर ले जाकर पकड़ लें। दाहिने हाथ को ऊपर उठा कर और कुहनी से मोड़कर शिरका स्पर्श करते हुए पीठ की ओर ले जायें और बायें हाथ को नचिसे ले जाकर दाहिने हाथको पकड़ लें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। शिर को तथा शरीर को सीधा रखें। आखें खुली रखें। छाती को फुला कर रखें। पेट के भाग को किंचित् सकुचित रखें। पैरों में भी साधारण खिंचाव रहना चाहिये।

गोमुखासन (अग्रभाग)

(चित्र-संख्या २५; पूर्ण-संख्या ४७)

(पृष्ठसंख्या ५५ देखिये)

दाहिने पैर को मोड़कर बायें कूल्हे के नीचे रखे और बायें पैर को मोड़कर दाहिने पैर के उपरसे ले जाकर दाहिने कूल्हे के नीचे रखें। तदनन्तर बायें हाथ को शिर की ओर उठाकर और कुहनी से मोडकर पीठ की ओर ले जायें। दाहिने हाथ को मोडकर नीचे से पीठ की ओर ले जाकर दाहिने हाथ के पंजे को पकड़ें। शेष क्रिया पहले प्रकार में बताये अनुसार है।

समय

५ दिन तक १ मिनट। ६ से १० दिन तक १॥ मिनट। ११ से २० दिन तक २ मिनट। तदनन्तर शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार ५ मिनट तक अभ्यास बढ़ा सकते हैं। यह समय दोनों ओर के लिये पृथक्-पृथक् है।

लाभ

इस आसन के अभ्याससे बगल की मांसयुक्त गाठ (कखवार) अच्छी होती है। श्वास-रोग के लिये यह आसन परम हितकारी है। पीठ का दर्द भी इस आसन से मिट जाता है। अरुचि, थकावट और निर्बलता दूर होती है। जानु का भाग मजबूत और बलवान् बनता है। पैर की पिण्डलियोंकी नस-नाड़ियों में शक्ति बढ़ जाती है। पित्त-प्रकोप से जो जलन उत्पन्न होती है, उस की शान्ति के लिये भी यह आसन नितान्त अनुकूल है।

— —

विपरीत करणी (उर्ध्व सर्वांगासन सम्पूर्ण)

(चित्र-संख्या २६; पूर्ण-संख्या ४८)

(पृष्ठसख्या ५६ देखिये)

जमीनपर चित लेट जायें। दोनों हाथों को कमर के अगल बगल सीधा रखें। तत्पश्चात् दोनों नासापुटों से श्वास को फेफड़ों में भर कर दोनों पैरों को जमीनसे एक साथ शनैः- शनैः उपर उठाते जायें। जब तक पैर कमरतक उठ न जायें, तब तक हाथों से जमीन का सहारा लेते रहें। तदुपरान्त हाथों को कमर में लगा कर हाथों के आधार पर पीठ के भाग को ऊपर उठायें। पीठ का भाग, कमर का भाग और पेट जब समरेखा में उपर की ओर स्थित हो जायें, तब समझना चाहिये कि विपरीत-करणी का अभ्यास उचित रूप में हो रहा है। उस समय ठुड्डी को कण्ठकूप में लगा कर रखना चाहिये। हाथों की कुहनियों को बहुत दूर भी न रखे और बहुत समाप भी न रखें। हाथों के पजों और उगलियों के सहारे पीठ के भाग को समरेखामें रखने का प्रयास करें। दोनों पैरों को जोडकर रखें। पैरों के पंजों को तानकर ऊपर की ओर सीधा खिंचा रखने का प्रयत्न करें। आखों की दृष्टि के सामने पैरों के अंगूठे सीधी रेखामे आयें, इस प्रकार करना चाहिये। इस समय पैर न तो हिलने पायें और न घुटनों से मुडने पायें। जिन स्त्री-पुरुषों के नेत्रों की दृष्टि क्षीण (कमजोर) हो और जो लोग अपनी आखों की दृष्टि को तेजस्वी बनाना चाहते हों, उन्हें चाहिये कि इस आसन के साधन की स्थितिमें वे पैरों के अंगूठोंपर अपनी दृष्टि स्थिर करें। आसन के अभ्यास के समय कदाचित् आखोंमें पानी आ जाये, तो भी घबराना नहीं चाहिये। उस समय आंखों को बन्द करके इस आसन को करना चाहिये। थोडी-थोडी देरमें आंखों को बन्द करते और खोलते रहना चाहिये और निम्नलिखित भावना को वारवार दुहराते रहना चाहिये- "हमारी आखों की दृष्टि दिन-प्रतिदिन सतेज होती जा रही है; आंखों की नस-नाडिया सशक्त बनती जा रही हैं। हमारी आखे बहुत अच्छी और पूर्णतया आरोग्यमय है।" पैरों के सीधे होते ही श्वास-प्रश्वास चालू रखें। इस आसन की साधना में पार-गत हो जानेके बाद हाथोंका सहारा लिये बिना भी 'विपरीतकरणी' आसनका साधन कर सकते है। विपरीतकरणी आसनको करते समय दोनों हाथोंको पैरों के आसपास सीधा रखना चाहिये। केवल ऊपर उठाते समय और पैरों को नीचे लाते समय हाथोंका आधार लिया जा सकता है।

शंकास्पद स्थिति

जिन लोगोंका शरीर अधिक स्थूल है, उनके पैर इस आसन को करते समय कमर तक ही उठ सकेंगे। ऐसे लोगोंको चाहिये कि वे पवनमुक्तासन का अभ्यास चालू रखें। इससे पेटकी स्थूलता कम होती जायेगी और पीठ तथा कमर की शक्ति भी बढती रहेगी। विपरीतकरणी के अभ्यास के लिये उन को सहारा मिल जायेगा और इस साधना के सम्बन्ध में जो निराशापूर्ण भावनायें होंगी, वे आशा और विश्वास की भावनाओं में रूपान्तरित हो जायेंगी।

समय

६ दिन तक १ मिनट। ७ से १२ दिन तक २ मिनट। १३ से १८ दिन तक ३ मिनट। १९ से २२ दिन तक ४ मिनट। तत्पश्चात् आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार ५ से ७ मिनटतक बढा सकते हैं।

लाभ

आंखों की दृष्टि-शक्ति उन्नत होती है। मस्तिष्क की शक्ति बढती है। पैर की सूजन मिटती है और प्रारम्भिक हाथीपग (श्लीपद) रोग दूर होता है। कण्ठमणि के रोग से छुटकारा मिलता है। गले की आवाज मधुर और सुरीली बन जाती है। रक्त-विकारजन्य अनेकशः रोग—फोड़े, फुन्सी, खुजली, दाद आदि—सदा के लिये पीछा छोड़ देते हैं। शरीर सौन्दर्यवान्, आकर्षक स्फूर्तिवान्, शक्तिमान्, मेधाशक्तिसम्पन्न सर्वांगसुन्दर और सुडौल बन जाता है। इन्द्रियां तेजस्वी और सामर्थ्यवान् बनती हैं। इसके सिवा अन्य बहुतेरे रोग भी भाग खड़े होते हैं। शरीरगत कई चक्र—जैसे कि मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूर चक्र, विशुद्ध चक्र आदि सजग रहते हैं। मन प्रफुल्ल रहता है। बुद्धिकी जड़ता निकल भागती है। अर्थात् इस आसन से बहुतेरे लाभ प्राप्त होते हैं। अतः यह आसन सभी स्त्री-पुरुषों—आबाल-वृद्धोंके लिये पूर्णतया साध्य और लाभप्रद है। कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने के लिये अनेक मुद्राओंमें से विपरीतकरणी मुद्रा का भी अभ्यास कराया जाता है, उस दशामें इस आसन का आधार लेना पडता है।

पद्मासन (विपरीतकरणी अवस्थामें)

(चित्र - संख्या २७ ; पूर्ण संख्या ४९)

(पृष्ठसंख्या ५७ देखिये)

चित्र - सख्या २६ [पूर्ण सं. ४८] में बताये अनुसार पहले विपरीतकरणी करे। तत्पश्चात् दोनों पैरों को दोनों जानुओंपर चढा कर पद्मासन लगायें। आंखों की दृष्टि खुली रहे तथा पीठपर हाथों का सहारा भलीभांति लें, अन्यथा गिर जाने की सम्भावना है। अभ्यास की प्रारम्भिक अवस्थापर पहुंच जाने के पश्चात् हाथों का सहारा लिये विना भी यह आसन और विपरीतकरणी आसन में स्थित पद्मासन कर सकते हैं। श्वास-प्रश्वासकी क्रिया चालू रखें। शरीर को तनिक भी हिलने-डुलने न दें। ठुड्डीको कण्ठकूपमें लगा रखें। घुटनों को सीधा रखने का प्रयत्न करें और यह प्रयत्न भी जारी रखें कि कमर का भाग बिलकुल सीधा रहे – झुकने न पाये।

समय

८ दिन तक १ मिनट। ९ से १६ दिन तक २ मिनट। १६ दिन के पश्चात् आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार ५ मिनट तक बढायें।

लाभ

जिन लोगों को कानों से कम सुनाई देता है; उनके लिये यह आसन अतीव लाभदायक है। कानों के क्रियातन्तुओं और ज्ञान-तन्तुओं की शिथिलता दूर हो कर कानों की श्रवण-शक्ति बढ़ती है। कानों से जो दुर्गन्धयुक्त द्रवपदार्थ निकलता है, वह बन्द हो जाता है। कानों की वेदना भी शान्त होती है। कन्धों में वेदना होती हो तो वह भी मिट जाती है। गले की नसें मजबूत होती है। कमर की हड्डियों के साधों की शक्ति बढती है। अण्डकोश और शिश्नेन्द्रिय की कमजोरी दूर होती है। कूल्हे का भाग अधिक स्थूल होता है। यह स्थूलता इस आसन के अभ्यास से कम हो जाती है।

विपरीतकरणी अवस्थामें :-

पद्मासन का (दूसरा प्रकार)

(चित्र-संख्या २८; पूर्ण-संख्या ५०)

(पृष्ठसंख्या ५८ देखिये)

चित्र-संख्या २६ (पूर्णसंख्या ४८) में बताये अनुसार करने के पश्चात् दोनों पैरों के घुटनों को शिर के अगले भाग के पास ले आनेका प्रयास करें और यथासम्भव दोनों घुटनों को शिरके अगल-बगल जमीन में स्पर्श करें। दोनों घुटनों से यदि एक साथ भूमि को स्पर्श करना सम्भव न हो तो प्रथम दाहिने घुटने को भू-स्पर्श करायें और तत्पश्चात् बायें घुटने को करायें। इस अवसर पर यदि कोई एक घुटना भूमि से कुछ अन्तर पर रहे तो भी कोई हर्ज नहीं, इस से भी लाभ अवश्य होगा। इस समय आखें खुली भी रख सकते है और बन्द भी रख सकते है। श्वास-प्रश्वास की गति मन्द पड़ जायेगी। पेट के निम्नवर्ती भाग पर दबाव रहेगा। इस समय फेफड़ों पर भी उत्तम प्रभाव पड़ेगा।

समय

८ दिन तक आध मिनट। ९ से १६ दिन तक ४५ सेकण्ड (पौन मिनट)। १७ से २४ दिन तक १॥ मिनट। तदनन्तर आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार २ से ३ मिनट तक अभ्यास बढा सकते हैं।

लाभ

इस आसन से चित्र-संख्या २६ [पूर्ण-संख्या ४८] के सभी लाभ तो मिलते ही हैं। इस के अतिरिक्त शरीरकी अधिक स्थूलता कम हो जाती है। बालों का झड़ना बन्द हो जाता है। बालों की जड़ें मजबूत होती हैं। शिर का गजापन (बालों का न होना) दूर हो जाता है। भुजाओंमें नवीन शक्ति का संचार होता है। हृदयविकार और हाई ब्लडप्रेशर के रोगी इस आसन का अभ्यास न करें। इस आसन से महिलाओं

का प्रदर रोग मिटता है। गर्भाशय शक्तिशाली बनता है। जिह्वा की शक्ति बढ़ती है और जिह्वा-रोग तुतलाहट, जीभ का रुकना आदि दूर हो जाते हैं। गले का पिछला, ऊपरी और शिर के नीचे का भाग सुदृढ होता है। मुख – मण्डलपर ओजस् की अभिवृद्धि होती है। शरीर में रस, रक्त, मांस, मज्जा, मेद, अस्थि, वीर्य, ओजस (स्त्रियों का रजस्) आदि सप्तधातु समपरिमाण में संतुलित रहते हैं।

नौकासन [पहला प्रकार]

(चित्रसंख्या २९; पूर्ण-संख्या ५१)

(पृष्ठ-संख्या ५९ देखिये)

पेट के बल जमीन पर लेट जायें। दोनों हाथों को कमरपर मुट्ठी बांध कर रखें। दोनों नासा-पुटों से श्वास फेफड़ोंमें भर लें। तत्पश्चात् शिर और छाती के भाग को जमीन से ऊपर उठा लें और शरीर के अन्य भागों को इस प्रकार ऊपर की ओर तान कर रखें कि जिस से शरीर का समग्र भार पेटपर ही पडे।

नौकासन (दूसरा प्रकार)

(चित्र- संख्या ३०; पूर्णसंख्या ५२)

(पृष्ठसंख्या ६० देखिये)

प्रथम प्रकार में बताये अनुसार करने के पश्चात् तुरन्त ही समग्र शरीर को द्वितीय प्रकार में बताये अनुसार बाईं ओर ले जायें। उस समय पैर, छाती, पेट, शिर आदि अंग भूमि को बिलकुल छूने न पायें। केवल घुटनों से लेकर भुजातक का ही भाग भूमि का स्पर्श करे।

नौकासन (तृतीय प्रकार)

(चित्र-संख्या ३१; पूर्ण-संख्या ५३)

(पृष्ठसंख्या ६१ देखिये)

चित्र-संख्या ३० (पूर्ण संख्या ५२) में निर्दिष्ट स्थितिपर पहुँचने के पश्चात् तुरन्त ही पेटके आधारपर अर्थात् पैर, छाती और शिर के भाग को जमीनसे लगाये विना समस्त शरीर को दाहिनी ओर ले जायें। इन तीनों चित्रों के अनुसार तीन विभिन्न स्थितियोंमें नौकासन का अभ्यास करनेपर ही सम्पूर्ण अभ्यास माना जाता है और यही लाभप्रद भी है।

विशेष सूचना

इस आसन के अभ्यास के समय श्वास को फेफड़ों में भर लेना चाहिये और यदि ऐसा सम्भव न हो तो श्वास को बाहर निकाल सकते हैं। हाथों को कमर के अगल-बगल न रखकर उठाकर शिरके अगल-बगल तान कर रखना चाहिये। उस समय हाथ उपर की ओर तने रहें। अगल-बगल घुमते समय जिस ओर घूमते हैं, उस ओर के हाथ की कुहनी तक हाथ स्पर्श कर सकता है। श्वास को जब तक रोका जा सके; तब तक रोक रखकर चालू रख सकते हैं।

समय

६ दिन तक १ मिनट। ७ से १२ दिन तक १॥ मिनट। १३ से २० दिन तक २ मिनट। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार ३ मिनट तक लगातार करते रहना पडेगा; ऐसा कोई खास नियम नहीं है, बीच में विश्राम लेकर पुनः यह आसन किया जा सकता है।

लाभ

भूख खुलकर लगती है। अपान वायु के विकार मिट जाते हैं। हिचकी और डकार के रोगियों के लिये भी यह आसन हितकर है। यदि नाभिचक्र अपने स्थान से हट गया होगा तो वह भी इस आसन के साधन से यथास्थान स्थित हो जायेगा। निरर्थक बँधा हुआ अपान वायु छूटने लगता है। पित्ताशय-कोश कलेजा, यकृत, छोटी आत, बड़ी आत आदि की विकृतियां दूर होती हैं। दमा, कफ और शरदी के रोगियों

के लिये भी यह आसन हितकर है। भगन्दर के रोगी भी इस आसन से आराम का अनुभव करते हैं। छाती पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है। पेट की अधिक चरबी कम हो जाती है। इस आसन का धर्मस्थानों में भी उपयोग किया जाता है; अर्थात् शारीरिक बीमारी या कष्ट आ पड़ने पर श्रद्धासम्पन्न धर्मावलम्बी स्त्री-पुरुषों को किसी मन्दिर के महन्त की ओरसे आदेश मिलता है कि हे भक्तप्रवर! अपना कष्ट दूर करने के लिये केवल चड्डी पहनकर और हाथों को शिर के ऊपर की ओर रखकर मन्दिर के चारों ओर १ से ५ बार अथवा अधिक बार तक प्रदक्षिणा करो। उस समय भक्तराजको वे सभी क्रियायें करनी पड़ती हैं, जो इस आसन में बताई गई हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि भक्त को गेंद के समान चारों ओर घूमना नहीं पड़ता; परन्तु शरीर के अगले भाग और अगल – बगल के स्थान को घुमाना पड़ता है। यदि कमर में स्थान अधिक हो तो शरीर को गोलाकार घुमा सकते हैं। मन्दिर का यह अनुष्ठान भी शरीर को सशक्त बनाने, मन निरोध और आत्मकल्याणके लिये बताया गया है। बताने के ढंग और तरीके अलग-अलग हैं। वायुरोगियों के लिये यह आसन आशीर्वाद के समान है।

अर्धमत्स्येन्द्रासन (पहला अपूर्ण प्रकार)

(चित्र-संख्या ३२; पूर्ण-संख्या ५४)

(पृष्ठसंख्या ६२ देखिये)

दाहिने पैर को सीधा सामने की ओर फैलाकर बैठ जायें। बायें पैर को घुटने से मोडकर दाहिने पैर के घुटने की दाहिनी ओर रखें। बायें पैर के तलुवे से भूमिका स्पर्श करें। दाहिने पैर के तलुवेको सीधा करने का प्रयत्न करें। दाहिने हाथकी बगल में बायें पैर के घुटने को भरकर दाहिने हाथ से बायें पैर के पजेको पकड रखें। बायें हाथ को पीठ की ओर ले जाकर कमर पर रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। छाती को जहांतक हो सके, प्रशस्त करते जायें—विकासित करते जायें। शरीर के किसी भी अंग को ढीला न रखें। शिरके भाग को बाईं ओर घुमाकर ठुड्डी को कन्धे पर रखें। आंखें खुली रखें। दाहिने पैर के घुटने को जमीन से उठने न दें। धीरे-धीरे पेट के भाग को बायें पैर की जानु से दबाकर रखने का पूर्णतया प्रयास करें।

अर्धमत्स्येन्द्रासन (पहला संपूर्ण प्रकार)

(चित्र-संख्या ३३; पूर्ण-संख्या ५५)
(पृष्ठसंख्या ६३ देखिये)

बायें पैरको सीधा सामने फैलाकर बैठ जायें। फिर दाहिने पैरको घुटनेसे मोड़कर बायें पैरके घुटने की बाईं ओर स्थापित करें। दाहिने पैरके तलुवे से भूमि का स्पर्श करे। बायें पैर के तलुवे को सीधा करने का प्रयास करें। बायें हाथ की बगल में दाहिने पैर के घुटने को भरकर बायें हाथ से दाहिने पैर के पंजे को पकड़ रखें। दाहिने हाथ को पीठ की ओर ले जाकर कमर पर रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। छाती को यथासम्भव फैलाते रहें-विकसित करते रहें। शरीरका कोई भी अंग ढीला न रहने पाये। शिरके भाग को दाहिनी ओर घुमाकर ठुड्डी को कन्धे पर रखें। बायें पैर का घुटना जमीनसे ऊपर तानिक भी उठने न पाये। धीरे-धीरे पेट के भाग को दाहिने पैर की जानुसे दबाकर रखने का प्रयास करें। उक्त दोनों प्रकारों को कर लेने के बाद अर्धमत्स्येन्द्रासनका अभ्यास पूरा माना जाता है।

समय

४ दिन तक १।१ मिनट। ५ से ९ दिन तक १॥-१॥ मिनट। १० से १६ दिन तक २।२ मिनट। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार ५।५ मिनट तक अभ्यास बढ़ा सकते हैं।

लाभ

जिसके कारण लोगों को पेशाबमें जलन होती है और शरीर का मास अधिक बढ गया है; ऐसी स्थितिपर पहुंचे हुए प्रमेह रोग को जालनी प्रमेह कहा जाता है और पीठ या पेटमें होनेवाली नीले रंगकी ग्रन्थिको पिडका कहते हैं। इस प्रकारके अनेक लक्षणोंवाले प्रमेह रोग इस आसन के अभ्याससे नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस आसनके अभ्यास के साथ-साथ अनिवार्य रूपसे प्राकृतिक नियमानुसार पथ्य रूपसे आहार में भी कुछ परिवर्तन करना पडता है और पुराने रोगियों को सूर्य – किरण – चिकित्सा आदि अन्य उपचारों का भी सहयोग लेना पड़ता है। इस के अतिरिक्त और भी अनेक लाभ इस आसन से प्राप्त होते हैं।

अर्धमत्स्येन्द्रासन (दूसरा अपूर्ण प्रकार)

(चित्र-संख्या ३४; पूर्ण-संख्या ५६)

(पृष्ठ सं. ६४ देखिये)

दाहिने पैर को घुटने से मोडकर उसकी एडी को सिवनी (अण्ड – कोश और मलद्वार के मध्य) – स्थान पर स्थापित करें। बायें पैर को दाहिने पैर के घुटने की दाहिनी ओर रखें। बायें तलुवे से भूमि का स्पर्श करें। दाहिनी बगलमें बायें पैर के घुटने को भर लें। बायें पैर के पंजे को दाहिने हाथसे पकड़ रखें। बायें हाथको पीठ की ओर ले जाकर ठुड्डी को कन्धेपर रखें। आंखें खुली रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। शरीर को तना हुआ रखें। छाती को आगे की ओर फुलाने का प्रयत्न करें। बायें पैर की जानु से पेटको दबाने का प्रयत्न करें।

अर्धमत्स्येन्द्रासन (दूसरा सम्पूर्ण प्रकार)

(चित्र – संख्या ३५; पूर्णसंख्या ५७)

(पृष्ठसंख्या ६५ देखिये)

बायें पैर को घुटने से मोड़कर उसकी एडी को सिवनी स्थानपर रखें। दाहिने पैर को बायें पैर के घुटने की बाईं ओर रखें। दाहिने तलुवे से जमीन का स्पर्श करें। बाईं बगल में दाहिने पैरके घुटने को भर लें। दाहिने पैरके पजेको बायें हाथसे पकड़ रखें। दाहिने हाथको पीठकी ओर ले जाकर कमरपर रखें। सिरको दाहिनी ओर ले जाकर ठुड्डी को कन्धेपर रखें। आखें खुली रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। शरीर को तना हुआ रखें। छाती को आगे की ओर उभरा हुआ रखें और उसे विकसित बनाने का प्रयत्न करें। पेट के भाग को दाहिने पैर की जानु से दबाने का प्रयत्न करें।

समय

५ दिन तक १।१ मिनट। ६ से १० दिन तक १॥–१॥ मिनट। ११ से २० दिन तक २।२ मिनट। तदनन्तर आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार ५।५ मिनट या इससे भी अधिक समय तक बढ़ा सकते हैं।

लाभ

अर्धमत्स्येन्द्रासन के पहले प्रकार में बताये गये सभी लाभ इस आसन से मिलते हैं। इसके अतिरिक्त क्षतोदर अर्थात् आहारके साथ कण, कांटा आदि के पेटमें पहुँच जाने से क्षत (घाव) हो जाता है और आंत छिल जाती है। इसके फल स्वरूप पानी के समान तरल पदार्थ का कुछ स्राव होने लगता है। वह पदार्थ मलद्वार से निकलता है। कभी अति भोजन से भी इस रोग के हो जाने की सम्भावना है। फलतः नाभि के नीचे का भाग फूल जाता है और सुई चुभनेका-सा दर्द होता है। इस रोग के निवारण के लिये यह आसन अतीव लाभदायक है। जलोदर के रोगियों को भी यह आसन काफी फायदा पहुंचाता है।

पूर्णमत्स्येन्द्रासन (बायें अंगका अभ्यास)

(चित्र-संख्या ३६; पूर्ण संख्या ५८)

(पृष्ठसंख्या ६६ देखिये)

वामोरुमूलार्पित दक्षपादं जानोर्बहिर्वेष्टित वामपादम्।
प्रगह्य तिष्ठेत्परिवार्तितांगः श्रीमत्स्यनाथोदितमासनं स्यात्॥

— घेरंडसंहिता २.२८.

दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर उसी पैर की एड़ी को बायें पैर के जानुमूलपर स्थापित करें। इस अवस्थामें पैर की एड़ी नाभि के नीचे के भागमें रहनी चाहिये। बायें पैर को दाहिने पैर के घुटने की दाहिनी ओर रखें। पैर का तलुवा जमीन का स्पर्श करता रहे। दाहिनी बगल में बायें घुटने को भरकर दाहिने हाथ से ही बायें पैर

के पंजे को पकड़ रखें। बायें हाथ को पीठकी ओर ले जाकर कमरपर रखें और यदि सम्भव हो तो दाहिने पैर को पकड़ रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। ठुड्डी को बाईं ओर के कन्धेपर रखें। आंखें खुली रखें। समग्र शरीर को तना हुआ रखें। शरीर हिलने-डुलने न पाये। इस प्रकार पूर्णमत्स्येन्द्रासन का बायें अंग का अभ्यास पूरा होता है।

पूर्णमत्स्येन्द्रासन (दाहिने अंगका अभ्यास)

(चित्र-संख्या ३७; पूर्ण-संख्या ५९)

(पृष्ठसंख्या ६७ देखिये)

बायें पैरको घुटने से मोड़कर उसी पैर की एड़ी को दाहिने पैर के जानुमूलपर रखें। उस समय पैर की एडी को नाभि के नीचे के भागमें स्थापित करें। दाहिने पैर को बायें पैर के घुटने की बाईं ओर रखें। पैर का तलुवा जमीन का स्पर्श करता रहे। बाईं बगल में दाहिने घुटने को भरकर बायें हाथसे ही दाहिने पैर के पजे को पकड़ रखें। फिर दाहिने हाथ को पीठ की ओर ले जाकर कमरपर रखें और हो सके तो बायें पैर को पकड रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। छाती को फुलाकर रखें। आंखें खुली रखें। समग्र शरीर को तना हुआ रखें। शरीर हिलने-डुलने न पाये। यह पूर्णमत्स्येन्द्रासन के दाहिने अगका अभ्यास पूरा हुआ।

समय

५ दिन तक आध-आध मिनट। ६ से १० दिनतक १।१ मिनिट। ११ से २० दिनतक २।२ मिनिट। तदुपरान्त शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार ५।५ मिनटतक बढ़ायें।

लाभ

इस आसन के अभ्यास से भूख बढती है। शुक्र-दोष दूर होते हैं। शरीरके सभी अंग सुदृढ़ और सक्षम बनते हैं। व्यसनो से उत्पन्न हुए कई रोग इस आसनके

अभ्यास के पश्चात् जब शरीरसे भागने लगते हैं, तब स्वयं अनुभव होता है कि दुर्व्यसनोंसे बचते रहना कितना जरूरी है। मन, बुद्धि चित्त और अहंकार जैसे-जैसे शुद्ध होते जाते हैं, वैसे-वैसे शरीरको हानि पहुचाने वाले पदार्थों के प्रति अरुचि उत्पन्न होती जाती है। अनीतिमय मार्ग की ओर ले जानेवाले इष्टमित्र भी दूर भागने लगते हैं तथा सदाचारी, सत्संगप्रिय और सद्विचारशील शुभचिन्तक इष्टमित्र समीपमें आने लगते हैं। शरीरमें बीमारीकी जो निशानी मालूम पड़ती थी; वह भी शनैः-शनैः दूर होती जायेगी। इस आसनसे पेट सिंहके पेट के समान सुडौल सकुचित स्थिति पर पहुच जाता है और वक्षःस्थल भी सिंहके समान प्रशस्त और ऊँचा बन जाता है—निरन्तर विकासोन्मुख रहता है। शरीरकी निरर्थक गरमी निकल जाती है। मूलाधार चक्र और मणिपूर चक्र मजबूत होते हैं। अन्य बहुतेरे लाभ भी इस आसनसे उपलब्ध होते हैं। अनेक उत्कृष्ट आसनोंमें इस आसनका भी अग्रस्थान है। मत्स्येन्द्र ऋषि इस आसन के प्रभावसे ब्रह्मपदपर पहुंचनेके लिये समर्थ हुए तब व्यावहारिक कार्यकुशल स्त्री-पुरुषोंको इस आसनके अभ्याससे कितना लाभ होगा, यह स्वय विचार कर सकते हैं।

लोलासन [पहला प्रकार]

(चित्र–संख्या ३८; पूर्ण–संख्या ६०)

(पृष्ठसंख्या ६८ देखिये)

पद्मासन लगाकर बैठ जायें। दोनों हाथों को कमर के अगल – बगल रखें। दोनों नासा–पुटों से श्वास फेफड़ोंमें भरकर हाथों के आधारपर समग्र शरीर को ऊपर उठायें। आखें खुली रखें। शरीर को ऊपर उठाने के पश्चात् श्वास को ५ बार खींचें और छोड़ें। तदनन्तर श्वास को फेफड़ोंमें भरकर शरीर को शनैः– शनैः जमीन-पर ले जायें और बैठ जाने के उपरान्त श्वास को बाहर निकाल दें। शरीर को जमीनसे ऊपर उठाने के पश्चात् सारे शरीर को तना हुआ रखें। छाती उभरी हुई रखें। पेट को अन्दर की ओर सकुचित करें। मलद्वार को भी सकुचित करें। शिर को यथा-

सम्भव ऊपर उठायें। इस समय शरीर को स्थिर रखने का पूरा प्रयास करें। अशक्ति और वायुविकार आदि कारणोंसे हाथ-पैर कांपने लगें अथवा शरीर हिलने लगे तो थोडी ही देरमें जमीनपर बैठ जाना चाहिये। शरीर को ऊपर उठाते समय कूल्हों और घुटनों को समरेखामें उठाना चाहिये। यदि शरीर को ऊपर उठाकर हाथों की कुहानियों के बराबर तक ले जाया जा सके तो अधिक लाभ होगा।

लोलासन (दूसरा प्रकार)

(चित्र-संख्या ३८; पूर्ण संख्या ६०)

चित्र-सख्या ३८ (पूर्ण-सख्या ६०) में बताये अनुसार करनेके पश्चात् शरीरके उठे हुए भागको झूलेकी तरह झुलायें अर्थात् पैरों और कमरके भाग को जो जमीनपर रखे हुए हाथोंकी कुहनियोंकी सतहतक उठा हुआ है आगे तथा पीछेकी ओर झूलेकी तरह ले जायें। इस आसनके अभ्यासको पूरा कर लेनेके पश्चात् जब जमीनपर बैठ जानेका समय आये, तब शरीरको भालभाति स्थिर करके बैठ जायें। इस आसनको दोलासन भी कहा जाता है।

समय

८ दिनतक ३ बार। ९ से १२ दिनतक ४ बार। १३ से १६ दिनतक ५ बार। तत्पश्चात् आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार ७ बार तक बढा सकते है। इतना ही नहीं; ५ से १० बारतक श्वासको खींचने और छोडनेतक शरीरको उपर स्थिर रखा जा सकता है। इस आसनको सभी स्त्री-पुरुष कर सकते हैं। हाई ब्लडप्रेशर और छाती के रोगवाले इस आसन को न करें।

लाभ

इस आसन के अभ्याससे उँगलियों, हाथों और कन्धों की शक्ति बढ जाती है। डकार और हिचकी के रोगियों को यह आसन अवश्य करना चाहिये। इससे उन्हें निस्सन्देह बहुत लाभ होगा। अपान वायुसे उत्पन्न हो जानेवाला मलावरोध (कब्ज), पेट का फूल जाना, पेटमें गुडगुडाहट होना, कभी-कभी पेटमें दर्द पैदा हो जाना, अतिसार, धातुक्षय रक्तक्षय आदि रोगों को मिटनमें यह आसन सहायभूत होता है।

मुंहमें स्वाद-हीनता मालूम होना, जँभाई आना, अंगोंका टूटना, थकावट, आलस्य और प्रमाद का अनुभव होना, तृषा (प्यास) कम लगाना, देहमें रोमाच होना आदि विकारों को मिटाने के लिये यह आसन एक सफल प्रयोग है।

लोलासन [तीसरा प्रकार]

(चित्र-संख्या ३९; पूर्ण-संख्या ६१)

(पृष्ठसंख्या ६९ देखिये)

चित्र - सख्या ३८ (पूर्ण संख्या ६०) में बताये अनुसार करने के पश्चात् दोनों पैरों को दोनों हाथों की कुहनियों के ऊपरी भागपर रखें। छाती के भाग को आगे की ओर कुछ झुकाकर रखें। आंखें खुली रखें। शरीर के किसी भी अवयव को हिलने न दें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। नीचे उतरने से पहले ही श्वास को फेफडों में भर लें। इस समय उतावली या जल्दबाजी न करें। कन्धों और हाथोंमें अच्छी शक्ति आ जानेपर ही आसन का अभ्यास सुचारु रूपसे होता है और लाभ भी मिलता है।

उत्कटासन

(चित्र - संख्या ४०; पूर्ण-संख्या ६२)

(पृष्ठसंख्या ७० देखिये)

दोनों पैरों को पीछे की ओर मोडकर उनकी एडियोंपर बैठ जायें। पैरों के पंजे उंगलियों के आधारपर जमीनसे ऊपर उठे रहें। कमर, पीठ और शिर के भाग समरेखामें रहें। आखें खुली रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। दोनों हाथों को दोनों घुटनोंपर रखें।

समय

४ दिन तक आध मिनट। ५ से १० दिन तक पौन मिनट। ११ से २० दिन तक १ मिनट। तत्पश्चात् १ से ५ मिनट तक अभ्यास बढ़ायें।

गोरक्षासन (पहला अपूर्ण प्रकार)

(चित्र-संख्या ४१; पूर्णसंख्या ६३)

[पृष्टसंख्या ७१ देखिये]

जानुर्वोरंतरे पादौ उत्तानाव्यक्त संस्थितौ ।
गुल्फौ चाच्छाद्य हस्ताभ्यामुत्तानाभ्यां प्रयत्नतः ।
कंठ संकोचनं कृत्वा नासाग्रमवलोकयेत् ।
गोरक्षासनमित्याहुर्योगिनां सिद्धिकारणम् ॥

—घेरंडसंहिता

दोनों पैरोंके तलुओंको परस्पर मिलाकर सामने रखें। एड़ियों को अण्डकोश के नीचे जमा दें। दोनों पैरोंके घुटनोंसे अथवा उनके नीचेके भागसे जमीनका स्पर्श करें। यदि कुछ दिनोंतक घुटने जमीन का स्पर्श करनेमें सफल न हों तो धीरे-धीरे घुटनोंसहित दोनों पैरोंको ऊपर-नीचे करते रहना चाहिये। ऐसा करनेसे कमरके भागमें लचीलापन आ जायेगा और दोनों घुटने आसानीसे जमीनको छूने लगेंगे। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। समग्र शरीरको समरेखामें रखें। आखोंको खुला रखें।

समय

८ दिनतक १ मिनट। ९ से १६ दिनतक १॥ मिनट। १७ से २५ दिनतक २ मिनट। तदनन्तर ३ मिनटतक अभ्यास बढायें।

● ●

गोरक्षासन (दूसरा अपूर्ण प्रकार)

चित्र-संख्या ४२; (पूर्णसंख्या ६४)
[पृष्ठसंख्या ७२ देखिये]

चित्रसंख्या ४१ (पूर्णसंख्या ६३) में बताये अनुसार करनेके पश्चात् बायें हाथसे बायें पैरके पंजे को और दाहिने हाथसे दाहिने पैर के पजे को पकड़कर दोनों पैरोंकी एड़ियोंके तलभागको मिलाकर लिंगमूलपर स्थापित करें। उँगलियां जमीनपर रहें। तत्पश्चात् बायें घुटनेपर बायां हाथ और दाहिने घुटनेपर दाहिना हाथ रखें। छातीको फुलाकर रखें। पेटको दबाकर रखें। आंखोंको खुला रखें। श्वास-प्रश्वास चालू रखें।

समय

६ दिनतक आध मिनट। ७ से १२ दिनतक १ मिनट। तत्पश्चात् दो मिनट-तक बढ़ा सकते हैं।
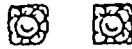
गोरक्षासन [संपूर्ण अग्रभाग]

(चित्र-संख्या ४३; पूर्ण संख्या ६५)
(पृष्ठसंख्या ७३ देखिये)

चित्रसंख्या ४२ (पूर्णसंख्या ६४) में बताये अनुसार करनेके पश्चात् दाहिने हाथको कमरके पास जमीनपर रखें। बायें हाथको सामने पैरके पास जमीनपर रखें। पैरकी एड़ियोंको लिंगमूलसे हटाये बिना शरीरको हाथोंके आधारपर शनैः-शनैः ऊपर उठाकर और भिड़े हुए पजोंको उलटाकर उन्हींपर बैठ जायें। पैरकी एड़ियोंका भाग शिश्नेन्द्रिय के मूलपर ही रहना चाहिये और शिश्नेन्द्रिय तथा अण्डकोशपर भी साधारण दबाव रहना चाहिये। दाहिने हाथकी उँगलियोंसे बायें पैरके अँगूठे को और

बायें हाथकी उँगलियोंसे दाहिने पैरके अंगूठेको पकड लेना चाहिये। श्वासोच्छ्वास चालू रखना चाहिये। इस आसनको करते समय दोनों पैरोंके एक-दूसरेके निकट आ जानेकी सम्भावना है; किन्तु ऐसा होने न पाये। पैरोंको विकासोन्मुख बनाना चाहिये। समग्र शरीरका भार दोनों घुटनोंसे लेकर पैरों के पंजोतक ही रहेगा। छातीको फुलाकर रखना चाहिये। कमर, पीठ और शिरको समान रेखामें रखना चाहिये। आखें खुली रखनी चाहिये। कमरके ऊपरके भागको साधारण तना हुआ रखना चाहिये।

समय

१० दिनतक १५ सेकण्ड। ११ से २० दिनतक ३० सेकण्ड। २१ से ३० दिनतक ४५ सेकण्ड। ३१ से ४० दिनतक १ मिनट। तदनन्तर आयु, शक्ति और लाभके अनुसार २ से ५ मिनटतक बढा सकते हैं।

卐 卐
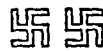
गोरक्षासन [सम्पूर्ण-पृष्ठभाग]

(चित्र-संख्या ४४, पूर्णसंख्या ६६)

(पृष्ठसंख्या ७३ देखिये)

चित्रसंख्या ४२ (पूर्णसंख्या ६४) में बताये अनुसार इस आसनकी सब विधि समय और लाभ वही है; किन्तु पाठकोंके सन्देहका निवारण करने के लिये पृष्ठ और अग्र (पीछे और आगेके) भाग दिखाये गये हैं और यह भी बताया गया है कि इस आसनके अभ्यास कालमें शरीरके पीछेका भाग किस प्रकार रहना चाहिये और पैरों के पिछले भाग किस प्रकार जमीन पर रहें। पैरोंके अंगूठोंको हाथोंकी उँगलियोंसे किस प्रकार पकड रखा जाये तथा शरीरकी स्वाभाविक स्थिति कैसी रहे। चित्रोंको देखकर यह सब समझमें आ जाता है।

लाभ

यद्यपि ऐसी सम्भावना बहुत कम है कि सर्वसाधारण स्त्री-पुरुषों को सरलतासे यह आसन तत्काल साध्य हो जाये। फिर भी, 'प्रयत्नान्ते परमेश्वर' की कहावतके अनुसार अभ्यासके सतत चालू रखनेसे दीर्घकालीन साधना के पश्चात् इस आसनका अभ्यास सरल हो जाता है। यही एक नहीं; योगाभ्यासके ऐसे अनेक आसन हैं, जिनके यथोचित साधन-स्तरपर पहुँचनेके लिये कुछ समय लग जाता है। इसी कारण महर्षि पतंजलिने अपने योगदर्शन ग्रन्थ में लिखा है-"**स तु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारसेवितो दृढ़भूमिः।**" अर्थात् दीर्घकालतक निरन्तर विश्वासपूर्वक कर्तव्य-तत्पर रहने से साधन में दृढ़ स्थिति प्राप्त होती है। इस आसनको गोरक्ष मुनिने सिद्ध किया था। इससे इसका नाम 'गोरक्षासन' पड़ा है। सचमुच गोरक्ष मुनिका श्रम सार्थक हुआ है। यह आसन निस्सन्देह अनेक उत्कृष्ट लाभोंसे साधकको पुरस्कृत करता है। रस, रक्त, मांस, मज्जा, मेद, अस्थि, वीर्य और ओजस् जितने ही शुद्ध होंगे और उनका परिमाण जितना ही उचित होगा; उतना ही शरीर तथा मनका आरोग्य बढ़ेगा और पवित्रता, सद्भावना तथा चिन्तनशक्ति बढ़ेगी। जीवन सुखी, स्वस्थ, आनन्दमय तथा उल्लसित रहेगा। वीर्य अण्डकोशमें उत्पन्न होता है और वहांसे वीर्याशयमें चढ़ जाता है। वीर्याशय कोशसे वीर्य के व्यय के दो मार्ग हैं:-एक तो यह कि वीर्य ओजस्में रूपान्तारित होकर समग्र शरीरमें फैल जाता है और मेरुदण्ड के मार्ग से मस्तिष्कमें व्याप्त होकर उसके सभी विभागों को विकसित और परिपुष्ट बनाता है। दूसरा मार्ग है शिश्नेन्द्रिय, जिसके द्वारा वीर्य बाहर निकल जाता है। वीर्य को शुद्ध और सुयोग्य बनाये रखने का उचित मार्ग यही है कि गृहस्थाश्रममें केवल सन्तानोत्पत्ति के लिये नियमानुसार वीर्य का अधोगामी उपयोग किया जाये। यह वीर्य और रजस् जितने पतले होंगे, उतने ही अशुद्ध बनकर अधोगामी बनेंगे। स्वप्नदोष, इन्द्रिय-स्पर्श और पसीने के साथ भी वह निकल जाया करेगा। फलतः हानि पहुंचती है और दुर्बलता, मन्दाग्नि, वायु-विकार, शिरोवेदना, चिन्ता, भय, क्रोध आदि मनोविकार, जीर्णज्वर, क्षय आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं और जीवन नीरस बन जाता है। किन्तु वही वीर्य जब गाढ़ा होकर शरीर के अणु-परमाणुमें व्याप्त हो जाता है; तब पंचज्ञानेन्द्रियां सदैव सशक्त और कार्यक्षम बनी रहती हैं। जो लोग 'अखण्ड योगाभ्यासी हैं और तदनुसार अलौकिक आचरणमें अहर्निश लगे हुए हैं; उनके दर्शनमात्र से जनगण पवित्र हो जाते हैं, तृप्त हो

जाते हैं। इन योगासनों का अभ्यास गृहस्थाश्रमी भी कर सकते हैं। इससे उनका वीर्य परिपुष्ट और सशक्त होगा और उनकी सन्तान सम्पूर्ण नीरोग, सबल, बुद्धिमान तथा देदीप्यमान् रहेगी। यह लाभ केवल पुरुषों को ही नहीं मिलते। पुत्र-सन्तान न होने में पुरुषों का ही दोष कारणभूत नहीं होता; स्त्रियोंमें भी दोष हो सकता है। ऐसे स्त्री-पुरुषों को यह आसन अवश्य करना चाहिये। इसके अभ्यास से समग्र शरीर के सांधों की वृद्धावस्थाजन्य कठोरता मिट जायेगी और उनमें लचीलापन आ जायेगा। पैरों की सूजन मिट जायेगी। और भी अनेकशः लाभ इस आसन से प्राप्त होते हैं।

कूर्मासन

(चित्र-संख्या ४५, पूर्ण-संख्या ६७)

(पृष्ठसंख्या ७५ देखिये)

गुल्फौ च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेण समाहितौ।
ऋजुकाय शिरो ग्रीवं कूर्मासनमितीरितम् ॥१॥

— यो. प्र.

दोनों पैरोंको घुटनोंसे कुछ मोड़कर रखें। दाहिने पैरका घुटना बायें कन्धेके पास बाहरकी ओर रहे। तदुपरान्त दाहिने हाथ को दाहिने पैरके नीचेसे ले जाकर दाहिने पैरके पंजेके पास रखें। बायें हाथको बायें पैर की पिंडली के नीचे से बाहर ले जाकर बायें पैरके पजेके पास रखें। तदनन्तर शिरको जमीनपर दोनों पैरोंके बीचमें लगा दें। तत्पश्चात् समस्त शरीरको स्थिर करें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आंखोंको बन्द रखें।

समय

८ दिनतक आध मिनट। ९ से १६ दिनतक १ मिनट। तदनन्तर शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार ३ मिनटतक बढ़ा सकते हैं।

लाभ

जैसा इस आसनका नाम है; वैसे ही इसमें गुण भी भरे हुए हैं; अर्थात् कूर्म (कछुवे) की तरह इस आसनका साधक भी अपने शारीरिक अवयवोंको स्वेच्छानुसार संकुचित और विकसित कर सकता है — करता रहता है। इस आसनसे सभी इन्द्रियों-पर नियंत्रण प्राप्त हो जाता है। कछुवेके अंग-प्रत्यगके समान साधक अपनी इंद्रियोंका भी संकोचन और प्रसारण करने लगता है। जैसे कूर्मकी आयु-सीमा अधिक है, उसी तरहकी स्थिति इस आसनके साधककी होती है। यह आसन सात्त्विक गुणोंसे भरपूर है, अतः अपनी सुरक्षित शारीरिक स्थितिसे जितना लाभ कूर्म उठाता है; उससे कई गुना अधिक लाभ सात्विक गुण-सम्पादन की दृष्टि से इस आसन के साधक को उपलब्ध होता है। इन्द्रिय-दमन की अभीप्सा रखने वाले महानुभाव अवश्य ही इस आसन का प्रयोग-परीक्षण कर देखें। अभ्यास का श्रीगणेश करने के कुछ ही दिन बाद पता चलेगा कि रजोगुण और तमोगुण का प्रभाव मिटता जा रहा है और उनके स्थानपर सत्त्व गुण और शुभ भावों की प्रतिष्ठा और सत्ता स्थापित होती जा रही है। व्यसनी गृहस्थ स्त्री-पुरुषों के लिये भी यह आसन अति अनुकूल है; अर्थात् व्यसनों में फँसे हुए स्त्री-पुरुषों कां मन रजोगुण और तमोगुणप्रधान रहता है। उनमें सत्त्व गुण का आभास बहुत कम होता है, जिससे वे अपनी इच्छाशक्ति को वश में रख नहीं सकते और व्यसनोंकी हानियों को जानते हुए भी उनमें हमेशा फँसे रहते हैं। किन्तु कूर्मा-सन तथा ऐसे ही अन्य विशिष्ट आसनों तथा प्राणायाम का साधन निरन्तर करते रहने से सभी व्यसनों से अनायास छुटकारा मिल जाता है; उनके छोड़नेमें किसी प्रकार का कष्ट नही उठाना पडता है।

❀

बकासन

(चित्र-संख्या ४६; पूर्ण-संख्या ६८)

(पृष्ठसंख्या ७६ देखिये)

जमीनपर सीधे बैठ जायें। फिर दाहिने पैर को दाहिनी बगल में और बायें पैर को बाईं बगलमें भर लें। पैर के पंजे परस्पर मिले रहें अथवा कुछ अन्तर पर रहे। जमीनसे ऊपर कुछ उठे भी रहें। तदुपरान्त दोनों हाथों के पंजों को कूल्हों के अगल-बगल जमीनपर स्थापित करें। श्वास को फेफड़ों में भरकर समग्र शरीर को हाथों के आधारपर जमीन से ऊपर उठायें। तदुपरान्त श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आंखें खुली रखें। शिर को ऊपर की ओर उठा हुआ रखें। छाती को फुलाकर और समग्र शरीर को तना हुआ रखें। यथाशक्ति ऊपर उठी हुई स्थितिमें स्थिर रहने के बाद श्वास को फेफड़ोंमें भरकर शनैः- शनैः शरीर को नीचे जमीनपर ले आयें।

समय

६ दिन तक २ बार। ७ से १२ दिन तक ३ बार १३ से २० दिन तक ४ बार। तत्पश्चात् आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार ५ बार तक बढ़ायें।

लाभ

इस आसन का साधन करनेसे शरीर का वजन न कम रहता है और न अधिक रहता है; बल्कि सतुलित परिमाणमें रहता है। समस्त शरीर के अंगोपागोंमें मेद के जितने परिमाणमें रहने की आवश्यकता है, उतना ही रहता है। पैदल चलने की वेगगामी शक्ति बहुत बढ़ जाती है। प्लूरसी रोग सदा के लिये विदा हो जाता है। मास, शिरायें, स्नायु, अस्थि और सन्धि-इन पाच मर्मस्थलोंमें कभी कुछ वेदना होने लगती है। यह वेदना इस आसनसे मिट जाती है। शिर और शरीर को मालिश करने के पश्चात् इस आसन का अभ्यास करनेसे वायुविकारजन्य विक्षिप्तावस्था का सम्पूर्ण शमन हो जाता है। जैसे बगुला (बक) पक्षी जलमें स्थिर रूपसे मन को एकाग्र किये रहता है; वही स्थितप्रज्ञभाव इस आसन के अभ्यासकाल में रखना पड़ता है। मन में चचलता होनेसे शरीर हिलेगा और अभ्यास अधिक समय तक सध न सकेगा।

जैसे बक पक्षी जलमें अपनी सभी इन्द्रियों को स्थिर करके अपनी अभीष्ट-सिद्धि कर लेता है, वैसे ही योगसाधक लोग इस आसन का अभ्यास करके मन को एकाग्र करने के अधिकारी बन जायेंगे। इन्द्रियों की शिथिलता दूर होगी, बुद्धिमें स्थिरता आयेगी और साधक कार्यकुशल बन जायेगा।

कर्णपीडनासन

(चित्र-संख्या ४७, पूर्ण-संख्या ६९)

(पृष्ठ-संख्या ७७ देखिये)

जमीन पर चित लेट जायें। दोनों नासा-पुटों से श्वास फेफड़ों में भरकर दोनों पैरों को शनैः- शनैः ऊपर उठाते हुए पीछे की ओर ले जाकर रख दें। फिर दाहिनी जानुसे दाहिने कान को और बाईं जानुसे बायें कान को दबा रखें। आखें खुली रखें। समग्र शरीर को तना हुआ रखें। दोनों हाथों को पीठ की ओर जमीनपर सीधा तना हुआ रखें। हाथों की उँगलिया परस्पर फँसी रहें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। दोनों घुटनों को जमीनपर लगा दें। आरम्भिक अभ्यासियों के पैर जमीन को छू न सकेंगे; परन्तु अभ्यास निरन्तर चालू रखने से कुछ ही दिनों में पैर जमीन को छूने लगेंगे। इस आसन के अभ्यास के समय ठुड्डी को कण्ठ-कूप से लगाये रखें। यथाशक्ति अभ्यास करने के पश्चात् श्वास को फेफड़ों में भरकर पैरों को धीरे-धीरे जमीनपर लाकर रख दें। तदनन्तर श्वासोच्छ्वास चालू रखें। जिन लोगों के पेटमे मेद का परिमाण अत्यधिक होगा; उनसे यह आसन प्रारम्भ में हो न सकेगा। परन्तु अभ्यास के सतत जारी रखने पर मेद क्रमशः कम होता जायेगा और आसन का अभ्यास यथावत् होने लगेगा।

समय

१० दिन तक १० सेकण्ड। ११ से १८ दिन तक १५ सेकण्ड। १९ से २५ दिन तक २३ सेकण्ड। तदुपरान्त शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार २ मिनट तक अभ्यास बढायें। महिलाओं के लिये भी यह आसन अनुकूल है।

लाभ

आरम्भिक कर्णशूल और आरम्भिक बधिरत्व पूर्णतया नष्ट हो जाता है। पुराने कर्णशूल और पुराने बधिरत्व (बहिरापन) का निवारण हो जाने की भी सम्भावना है। आमविकार, अजीर्ण, कफ-पित्तादिका आधिक्य, जड़ता, तन्द्रा और कभी-कभी वमन होना, शरीर में ज्वर का भान होना आदि विकारोंसे पूर्णतया छुटकारा मिल जाता है। हाथ-पैर के तलुवोंमें शीतलता रहना, शीत-स्पर्श का ज्ञान न होना, पैरोंमें वेदना होना और शून्यता रहना, जानु और उसमें अत्यन्त ग्लानि, शरीर में मेदवृद्धि आदि व्याधियों का पूर्णतया प्रशमन हो जाता है। पसलियोंमें ऐंठन, पसीने के न निकलने-पर अधिक पीडा, शराब आदि दुर्व्यसनोंसे उत्पन्न शिरोवेदना, भ्रम, संज्ञाहीन हो जाना, हृदय में पीडा, वातादिजन्य रोग, यकृत, प्लीहा, आँतों, फेफड़ों आदि का विकार मिटाने के लिये यह आसन अत्युत्तम है। और भी अनेकशः लाभ इस आसन के अभ्याससे उपलब्ध होते हैं।

* * *

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः॥

— गीता ६.१९

जिस प्रकार वायुरहित स्थानमें दीपक चलायमान नहीं होता, वैसी ही स्थिति परमात्मा के ध्यानमें लगे हुए योगी के जीते हुए चित्तकी होती है।

विशेष श्रमसाध्य आसन

पश्चिमोत्तानासन

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ संन्यस्तभालाश्चिति युग्ममध्ये ।
यत्नेन पादौ च धृतौ कराभ्यां योगीन्द्रपीठं पश्चिमोत्तानमाहुः ॥

— घे. सं. २.२२

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ दोर्भ्यां पदाग्रद्वितयं गृहीत्वा ।
जानूपरि न्यस्तललाटदेशो वसेदिदं पश्चिमोत्तानमाहुः ॥१॥

— शिवसंहिता

(चित्र-संख्या १; पूर्ण संख्या ७०)

(पृष्ठसंख्या ७८ देखिये)

सीधे बैठकर दोनों पैरों को सामने की ओर फैला दें। घुटनों से सारा पैर जमीनसे सटा रहे। तदुपरान्त तर्जनी, मध्यमा और अँगूठेसे पैर के अँगूठे को पकड़कर शिर को घुटनों पर रख दें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। छाती के भाग को जानु के पास ले जाने का प्रयास करें।

विशेष श्रमसाध्य

प्रतिद्वन्द्विता

★ सम्भवतः जगत्में प्राणि–सृष्टिका अवतरण होनेके साथ ही जीवनमें प्रतिद्वन्द्विता-मूलक भावोंका प्रादुर्भाव भी हुआ है। जीवनकी दौड़में सभी एक–दूसरे से आगे बढ जानेकी महत्त्वाकांक्षा रखते हैं। जीवनकी यह होड़ उसी सीमातक उचित मानी जाती है, जबतक कि यह होड आगे बढ जानेके लिये प्रयत्नशील है; कहीं कुछ हरकत नहीं करती। किन्तु यही प्रतिद्वन्द्विता (होड़) जब साथ दौड़नेवालोंको धकेल कर–गिराकर–आगे बढ़ जानेके लिये लालायित हो उठती है; तब उसे अनुचित कहा जायेगा–मूढ माना जायेगा।

योगविद्यामें दीक्षित साधक इस प्रकार की गर्हणीय प्रतिद्वन्द्विताको कभी प्रश्रय नहीं देगा। उसकी प्रतिद्वन्द्विता शुद्ध सात्त्विक होगी। योगी एटम बम बनानेकी होड़ नहीं करेगा। वह जगत् में सर्वोदय और अहिंसाके आधारपर मानवताके प्रति ममत्व उत्पन्न करनेमें आगे निकल जानेका प्रयत्न करेगा और इसी प्रतिद्वन्द्विताके लिये वह अन्य सहयात्रियोंको उत्साहित करेगा।

—योगिराज उमेशचन्द्रजी

पश्चिमोत्तानासनकी सरल पद्धति

जिन लोगों का पेट बड़ा हो। कुरसी, सोफा या पलंग पर ही बैठने की जिनकी आदत हो, जो जमीन पर बिलकुल ही बैठ न सकते हों और जो तामसिक एवं व्यसन (धूम्रपान, मदिरा, मांस, अधिक मिर्च-मसाला, अफीम, गांजा-भांग) में पड़ गये हों, जिनका शरीर जड़ हो गया हो और जिनके सांधों में लचीलापन नहीं है; वे लोग नीचे लिखे अनुसार सरल पद्धति का अभ्यास करते रहें। कोई भी एक हाथ आगे की ओर बढ़ायें और दूसरा हाथ शरीर के पीछे की ओर ले जायें। शिर को यथासम्भव घुटनों के पास ले जाने का प्रयास करें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। पेट बड़ा हो तो श्वास बाहर निकाल कर अभ्यास करें। जिस हाथ को आगे की ओर ले गये हैं; उसे तुरन्त पीछे की ओर ले जायें और जो हाथ पीछे है, उसे आगे की ओर ले आयें। इस तरह वारवार करते रहने से सांधों [जोड़ों] की कठोरता या अकड़ दूर हो जायेगी और उनमें लचीलापन आ जायेगा। इस का अभ्यास करते-करते जब शिर घुटनों से लगने लगे; तब हाथों की हलचल को बन्द कर दें और पैरों के अँगूठों को पकड कर शरीर को स्थिर रखें। घुटनों को तनिक भी ऊपर उठने न दें। श्वास-प्रश्वास चालू रखें। कुछ समय तक कमर में सामान्य वेदना होने की सम्भावना है और पैरों के स्नायुओंमें खिंचाव होते समय पैरोंमें भी वेदना हो सकती है। किन्तु इससे चिन्ता, भय तथा शंका न करें और न घबरायें, अभ्यास चालू रखें। कुछ दिनों तक प्रातःकाल हाथ-पैर, पीठ, कमर, पेट, छाती, गला शिर आदि शरीर के सर्वांग की किसी उत्तम तेल [बादाम का तेल, तिल का तेल, खोपरे का तेल, सरसों का तेल, नारायण तेल, रामतीर्थ ब्राह्मी तेल आदि] से मालिश करें अथवा करायें। मालिश के पश्चात् स्नान करें और स्नानानन्तर आसनों का अभ्यास प्रारम्भ कर दें। व्यसन में फँसे हों और उन्हें एक साथ छोडने में कष्ट या कठिनाई मालूम पडे तो शनैः-शनैः छोड़ दें। आसनों का समुचित लाभ उठाने के लिये व्यसनहीन रहना अनिवार्य कर्तव्य है।

सरल पद्धतिका समय

६ दिनतक २ मिनट। ७ से १२ दिनतक ३ मिनट। १३ से १८ दिनतक ४ मिनट। जबतक सम्पूर्ण आसनका अभ्यास नहीं हो जाता, तबतक सरल पद्धतिका ही अभ्यास चालू रखें।

सम्पूर्ण पश्चिमोत्तानासनका समय

५ दिनतक आध मिनट। ६ से १० दिनतक १ मिनट। ११ से २० दिनतक १॥ मिनट। २१ से ३० दिनतक २ मिनट। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभके अनुसार ५ मिनटतक अभ्यास बढ़ा सकते हैं।

पश्चिमोत्तानासनका अभ्यास सरल हो जानेपर इस आसनकी सरल पद्धतिके अभ्यासको करते रहनेकी जरूरत नहीं। सुविधाके लिये सरल पद्धतिका अभ्यास कर लेनेके पश्चात् सम्पूर्ण आसनका अभ्यास करें तो भी कोई हानि नहीं। गर्भवती स्त्रियां इस आसनका अभ्यास न करें; अन्य सभी स्त्री-पुरुष निस्सन्देह कर सकते हैं।

लाभ

पेटका अधिक मेद कम हो जाता है। जोड़ों (सन्धियों) में लचीलापन आ जाता है। कमर की वेदना और अन्य व्याधिया मिट जाती हैं। शरीरका आकार सुडौल और गठीला बन जाता है। पैरोंके स्नायु मजबूत बनते हैं। उर्ध्वश्वास (हिक्का श्वास) का रोग नष्ट होता है।

● ●

सुप्त वज्रासन [पहला प्रकार]

(चित्र–संख्या २; पूर्ण–संख्या ७१)

(पृष्ठसंख्या ७९ देखिये)

अल्पश्रमसाध्य आसनोंके अन्तर्गत चित्र–सख्या ६ (पूर्ण–संख्या १६) के अनुसार वज्रासन करने के पश्चात् हाथोंका सहारा लेकर पृथ्वीपर लेट जायें। लेटनेके समय में पीठका भाग और शिरका भाग भूमिका स्पर्श करते रहें। दोनों हाथोंको दोनों जानुओंपर रखें। हाथोंका स्पर्श भूमिके साथ न हो। इस समय घुटनों से पैरोंके फैल जानेकी भी सम्भावना है। परन्तु पैर फैलने न पायें। अर्थात

दोनों पैरोंको परस्पर सटाकर रखें। इस समय आंखोंको बन्द भी रख सकते हैं और खुला भी रख सकते हैं। श्वास-प्रश्वासकी गति चलती रहे। शरीरमें अधिक तनाव भी न रहे और अधिक शैथिल्य भी न रहे-संतुलित स्थिति रहे।

सुप्त वज्रासन [दूसरा प्रकार]

(चित्र - संख्या ३; पूर्ण-संख्या ७२)

(पृष्ठसंख्या ८० देखिये)

अल्पश्रमसाध्य आसनोंके अन्तर्गत चित्रसंख्या ६ (पूर्ण-सख्या १६) के अनुसार लेट जाने के पश्चात् पीठके भागको भूमिसे हाथोंके आधारपर उठायें। शिरोभाग का स्पर्श भूमिके साथ रहे। तदुपरान्त दोनों हाथोंको लपेटकर छातीके नीचे पसलियोंपर रखें। पीठके भागको यथासम्भव खिंचा हुआ रखें और जहांतक हो सके, शिरको कमरके पास लानेका प्रयास करें। शिर भूमिसे पूर्ववत् लगा रहे। यह आसन जब ठीक रूपसे होने लगता है, तब पैर, जानु, पेट, पसलियां, छाती, गला, मुंह, आंखें शिर आदि शरीरके ऊपरी भागके अवयवोंपर अच्छी तरह तनाव पड़ता है। जितना हीं अधिक तनाव होता है, उतना ही अधिक लाभ मिलता है। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आंखोंको चाहे बन्द रखें; चाहे खुला रखें।

सुप्तवज्रासन का समय

४ दिन तक आध मिनट। ५ से ८ दिन तक १ मिनट। ९ से १६ दिन तक १॥ मिनट। १७ से २५ दिन तक २ मिनट। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार ५ मिनट या इससे भी अधिक समयतक बढा सकते हैं। यह आसन सभी स्त्री-पुरुष कर सकते हैं। गर्भवती स्त्रियां न करें। दूसरे प्रकार का भी समय यही है।

अल्पश्रमसाध्य आसनप्रकरण के अन्तर्गत वर्णित वज्रासन के सभी लाभ सुप्त-वज्रासन प्रदान करता है।

विशेष सूचना

सुप्त वज्रासन के अभ्यास के समय पैरों के स्नायुओंमें अधिक तनाव आने के कारण बहुतेरे स्त्री–पुरुष इस आसन के अभ्यास को छोड़ भागते हैं। ऐसे लोगों को समझना चाहिये कि जैसे ज्वर कड़वी दवासे दूर होता है, उसी तरह इस आसन का अभ्यास करते समय यदि कुछ दिनों तक कुछ मात्रा में कष्ट उठाना पडे तो भी घबराना नहीं चाहिये और भविष्य में आने वाले आरोग्य, सुख और लाभ पर विचार कर इस क्षणिक कष्ट को आशीर्वाद के समान समझना चाहिये और आनन्द तथा निर्भयता के साथ इस आसन का अभ्यास निरन्तर चालू रखना चाहिये।

उर्ध्वपाद - शिरासन

(चित्र–संख्या ४; पूर्ण–संख्या ७२)

(पृष्ठसंख्या ८१ देखिये)

जमीनपर सीधे बैठ जायें। फिर दोनों पैरोंको सामने की ओर फैला दें। दोनों हाथोंके पंजोंको कमरके अगल-बगल जमीनपर रखें। तदनन्तर श्वासको बाहर निकाल कर अथवा श्वासको अन्दर भरकर पैरोंको जमीनसे ऊपर उठायें। शिरको आगेकी ओर बढ़ाकर उससे दोनों पैरोंके घुटनोंके बीचमें स्पर्श करें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आंखें बन्द रखें। पैर घुटनों से मुडने न पायें। सारे शरीर को तना हुआ रखें। इस आसन के अभ्यास–कालमें केवल कूल्हे का भाग और हाथ के पंजे ही भूमि का स्पर्श करें। शरीर के शेष सभी भाग जमीन से ऊपर उठे रहें।

समय

८ दिन तक आघ मिनट। ९ से १६ दिन तक पौन मिनट। १७ से २५ दिन तक १ मिनट। तत्पश्चात् १ से २ मिनट तक बढ़ायें।

लाभ

इस आसन के अभ्यास से बद्धोदर रोग मिटता है; अर्थात् जिस रोग से मल बाहर फेंकने की स्वाभाविक वेगगति अवरुद्ध हो जाती है, मल वहीं रुककर सड़ने लगता है, फलतः गैस उत्पन्न होकर आध्मान उत्पन्न करती है। ऐसी सडी हुई वस्तुके आन्त्रकी दीवार में लीन होनेसे विषमूलक लक्षण उत्पन्न होते हैं। जैसे कि मूर्छा, नाडियोंमें अशक्ति, शीतकाय, वमन, विद्रधि आदि लक्षण दिखाई देते हैं। यह सभी विकार और लक्षण इस आसन से मिट जाते हैं। पैरों के स्नायुओं में रक्ताभिसरण अच्छा रहता है। पीठ और हाथों को भी अच्छा लाभ मिलता है।

उर्ध्वपाद - हस्तासन

(चित्र – संख्या ५, पूर्णसंख्या ७४)
(पृष्ठसंख्या ८२ देखिये)

जमीनपर चित लेट जायें। दोनों पैरों के जानु तक का भाग भूमि से ऊपर उठायें और फिर हाथों को शिर के साथ उठाते हुए पैरों के अंगूठों के पास हाथोंको ले जाकर स्थिर करें। श्वासो-च्छ्वास चालू रखें। शरीरके सर्वांगको तना हुआ रखें। हाथ-पैरों को स्थिर करें।

समय

१० दिन तक आघ मिनट। १० से १५ दिन तक पौन मिनट। तदनन्तर १ मिनट तक अभ्यास बढ़ायें

लाभ

इस आसन के अभ्यास से उर्ध्वपाद-शिरासन के सभी लाभ तो मिलते ही हैं, साथ ही जिन के हृदयकी नाडी की गति अनियमित रहती है; अर्थात् ११ से १४ वर्ष तक ७५ से ८५ बार प्रति मिनट नाडी की गति चलनी चाहिये। किन्तु नाडी की गति इस प्रकार उचित न रहकर अनियमित हो जाती है। यह अवस्था भी एक प्रकार की व्याधि ही है। यह व्याधि इस आसन से मिट जाती है। हृदय की धड़कन समुचित और संतुलित गतिसे चलने लगती है। हृदय-रोग से पीड़ित लोग इस आसन का अभ्यास अवश्यमेव करें। निस्सन्देह लाभ होगा।

सर्वांगासन [हलासन - पहला प्रकार]

(चित्र-संख्या ६; पूर्ण-संख्या ७५)

(पृष्ठसंख्या ८३ देखिये)

जमीन पर चित लेट जायें। दोनों पैरों को हाथों के बलपर उठाकर पीछे की ओर ले जायें। पैर सीधे रहें, घुटनोंसे मुड़ने न पायें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आंखें बन्द रखें अथवा खुली रखें। हाथों को पीठ की ओर जमीन पर सीधा रखें। मेरुदण्डको यथासम्भव कमर की ओर खिंचा हुआ रखें। इस अवस्था में ठुड्डी को कण्ठकूपमें लगाकर रखें।

सर्वांगासन [हलासन - दूसरा प्रकार]

(चित्र-संख्या ७, पूर्णसंख्या ७६)

(पृष्ठसंख्या ८४ देखिये)

पहले प्रकार में बताये अनुसार करने के पश्चात् हाथों के पंजों को परस्पर मिलाकर शिर के ऊपर जमीन का स्पर्श कर के रखें।

सर्वांगासन (हलासन - तीसरा प्रकार)

(चित्र-संख्या ८; पूर्ण-संख्या ७७)

(पृष्ठसंख्या ८५ देखिये)

पहले प्रकारमें बताये अनुसार हलासन करने के पश्चात् दोनों हाथों को शिर की ओर सीधा करें और जमीन से सटाकर हाथों की उँगलियों को पैरों की उँगलियोंके पास रखें। सर्वांगासन का जो पहला प्रकार बताया गया है, उसका अभ्यास अधिक समय तक करें। शेष दूसरे और तीसरे प्रकारों को समयानुसार कम समयतक भी कर सकते हैं। जिन भाई-बहनोंको पहले प्रकार की अपेक्षा दूसरा और तीसरा प्रकार अधिक अनुकुल हो, वे दूसरे और तीसरे प्रकारका अभ्यास कर लाभ उठा सकते हैं।

समय

६ दिनतक १ मिनट। ७ से १२ दिनतक १॥ मिनट। १३ से १८ दिनतक २ मिनट। तदनन्तर शक्ति, आयु और लाभके अनुसार ५ मिनटतक बढा सकते हैं।

लाभ

'यथा नाम तथा गुणः' के अनुसार इस आसनके अभ्याससे शरीरके सर्वांगको लाभ पहुचता है। मेरुदण्डके सभी विकार नष्ट हो जाते हैं और उसमें लाघव (लचीलापन) आ जाता है। गलेकी शक्ति बढती है। पेट के अनेक विकार नष्ट होते हैं। पैरोंके तलुओंके विकार-जैसे कि सूजन, वेदना, जलन आदि-दूर होते हैं। पाण्डुरोगियोंके लिये भी यह आसन अतीव लाभकर है। रक्तपित्त के दोषवालों को यह आसन आशीर्वाद के समान है। शिश्नेन्द्रिय और गुदाके रोगोंपर यह आसन रामवाण का प्रभाव डालता है। नाक और कानके ज्ञानतन्तु एवं क्रियातन्तु बलवान होते हैं तथा अशुद्ध रक्त शुद्ध होता है। श्वास-खांसीवालोंको भी यह आसन लाभप्रद है। कन्धों और पसलियोंमें पीडा, हाथ-पैरोंमें जलन आदि व्याधियां निर्मूल हो जाती हैं। आरंभ का राजयक्ष्मा आदि

अनेक कठिन रोग इस आसन से मिट जाते हैं। अण्डकोश और शिश्न में पीड़ा, मैथुन में असमर्थता आदि विकारों से पीछा छूट जाता है और शरीर सर्वांग सुन्दर और सुगठित बन जाता है। शरीर का वजन न कम होता है और न अधिक; बल्कि आयु और आकार के अनुसार सम और संतुलित स्थिति में रहता है। बहनों के लिये भी यह आसन बहुत लाभदायक है। स्त्रियों के गर्भाशय और योनि–स्कन्ध के विकार पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं। पेट के क्रियाशील अवयव सशक्त बनते हैं। स्तन–रोगों को मिटाने के लिये भी यह आसन अनुकूल है।

* * *

विस्तृतपाद सर्वांगासन (पृष्ठभाग)

(चित्र-संख्या ९; पूर्ण-संख्या ७८)

(पृष्ठसंख्या ८६ देखिये)

सर्वांगासन के प्रथम प्रकारमें बताये अनुसार करने के पश्चात् सर्वांगासन के तीसरे प्रकारमें बताये अनुसार दोनों पैरों के पास दोनों हाथोंको रखें। तदुपरान्त दोनों पैरों से जमीन का स्पर्श करते हुए जहांतक हो सके; दोनों ओर फैलायें। उस समय पैरोंके अंगूठों को हाथोंसे दृढतापूर्वक पकड़े रहें। पैर घुटने से तनिक भी मुडने न पायें और शरीर को पीछे की ओर जाने न दें। हाथ–पैरों को तना हुआ रखें। आखें खुली भी रख सकते हैं और बन्द भी रख सकते हैं। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। ठुड्डीको कण्ठ-कूपमें लगाकर रखें। शरीर को स्थिर रखें; वह हिलने – डोलने न पाये।

विस्तृतपाद सर्वांगासन (अग्रभाग)

(चित्र-संख्या १०; पूर्ण-संख्या ७९)

(पृष्ठसंख्या ८७ देखिये)

चित्र-संख्या १० (पूर्णसख्या ७९) का अभ्यास चित्र-संख्या ९ (पूर्णसख्या ७८)के समान ही है। अन्तर केवल इतना ही है कि पाठकों और साधकों की सुविधा के लिये तथा उन्हें सन्देहमुक्त रखने के लिये इस आसन का अभ्यास करते समय शरीर के शिर, छाती, हाथ, पैर, पीठ, कमर आदि अवयवों की स्थिति कैसी रहती है, यह सब प्रत्यक्ष बताने के लिये ही दो अलग-अलग चित्र दिये गये हैं, आसन एक ही है।

समय

१० दिनतक आध मिनट। ११ से २० दिनतक १ मिनट। तदुपरान्त शक्ति, आयु और लाभके अनुसार २ से ३ मिनट तक बढा सकते हैं।

लाभ

अर्धांग वायुसे पीछा छुड़ाने के लिये इस आसन का प्रभाव अप्रतिहत है। इस से पैरोंका कम्प रोग मिटता है। शरीर की बेचैनी दूर होती है। मुँह, नाक और आखों की बीमारी के लिये भी यह आसन अतीव अनुकूल है। इसके अभ्यास से शरीर की कान्ति बढती है! चर्मरोग मिटानेके लिये भी यह आसन हितकर है। इसके अभ्याससे आरम्भ का केन्सर (नासूर) रोग दूर होता है। कण्ठ की सूजन मिट जाती है और आरम्भका टानसिल (गलगण्ड) भी भाग खड़ा होता है। मुंह के छाले मिट जाते हैं और अन्य मुख-रोगों से भी यह आसन सुरक्षित रखता है। इस के अभ्यास से ढीले दांत भी मजबूत होते हैं। आखों की दृष्टि बढती है। स्मरण-शक्ति अच्छी रहती है। स्नायु-नलिका भी मजबूत होती है। बगलों का दर्द दूर होता है। मोतीझाला को दूर करने के लिये यह आसन अनुकूल है। बगल तथा जानुमूल की गाठें नष्ट हो जाती हैं। जठराग्नि तीव्र बनती है। अत्यधिक कामवासना नियन्त्रणमें आ जाती है।

सप्तधातुओं में एकत्र अधिक परिमाणमें वात, पित्त और कफ सम अर्थात् संतुलित स्थितिमें आ जाते हैं। धनुर्वातके रोगियों के लिये भी यह आसन परम लाभकर है। स्वरभंगका विकार नष्ट होकर स्वर कोयलके समान मधुर और आकर्षक बन जाता है। इनके अतिरिक्त और भी अनेकशः लाभ इस आसनके साधनसे मिलते हैं। यह आसन जितने परिमाणमें पुरुषोंको लाभ पहुंचाता है, उतने ही परिमाणमें स्त्रियोंके लिये भी लाभकर है। इसका समुचित अभ्यास करके इसके महत्त्व, गुण और लाभोंसे परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

● ●

एकपाद-भुजासन

(चित्र-संख्या ११; पूर्ण-संख्या ८०)

(पृष्ठ-संख्या ८८ देखिये)

सामनेकी ओर दोनों पैरोंको फैलाकर बैठ जायें। तदुपरान्त दाहिने पैरको जानुमूल और घुटने से मोड़कर कन्धेपर रखें। तदुपरान्त दोनों हाथोंको कमरके अगल-बगल दृढ़ स्थापित कर उन्हींके आधारपर फैले हुए बायें पैरसहित समग्र शरीरको जमीनसे ऊपर उठाना चाहिये। बायां पैर घुटनेसे मुड़ने न पाये। दाहिने पैरको भी कन्धेसे नीचे उतरने न दें। शरीरको ऊपर ले जानेसे पहले श्वासको फेफड़ोंमें भर लें और शरीरको ऊपर उठायें। तत्पश्चात् श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आंखें खुली रखें। समस्त शरीरको तानकर रखें। शिर आगेकी ओर झुकने न पाये। दाहिनी ओरका इस प्रकारका अभ्यास पूर्ण हो जानेपर बायें पैरसे भी वैसी ही क्रिया करें; अर्थात् बायें पैरको जानुमूल और घुटनेसे मोड़कर बायें कन्धेपर चढ़ायें और दाहिने पैरको सामने फैला दें। दोनों हाथोंको जमीनपर दृढ़ स्थापित कर उन्हींके बलपर फैले हुए दाहिने पैरसहित समग्र शरीरको जमीनसे ऊपर उठायें। दाहिना पैर घुटनेसे मुड़ने न पाये और न बायां पैर कन्धेसे उतरने पाये। शेष क्रिया पहले प्रकारके समान ही है।

समय

८ दिन तक २।२ बार। ९ से १६ दिन तक ३।३ बार। तत्पश्चात् आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार ४।४ बार तक बढ़ा सकते हैं।

लाभ

मुद्दती बुखार (टाइफड) के पश्चात् शरीर फूल जाता और विकृत हो जाता है। इस आसन के अभ्यास से शरीर अधिक न फूलकर संतुलित और सुडौल रहता है। कन्धों का दर्द दूर होता है। कूल्हे और कमर के स्नायु सशक्त बनते हैं। पैरों की पिण्डलियां मजबूत होती हैं। घुटनों की सूजन मिटती है। हार्निया का विकार नष्ट होता है। यकृत विकारसे पीड़ित लोगों के लिये भी यह आसन अति अनुकूल है।

卐 卐
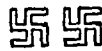
द्विपाद-भुजासन

(चित्र-संख्या १२; पूर्ण-संख्या ८१)

(पृष्ठसंख्या ८९ देखिये)

दोनों पैरों को सामने की ओर फैलाकर बैठ जायें। तदुपरान्त चित्र-संख्या ११ (पूर्णसंख्या ८०) के अनुसार दाहिने पैर को घुटने से मोडकर दाहिने कन्धेपर रखें और बायें पैर को घुटने से मोडकर बायें कन्धेपर रखें। दोनों पैरोंके तलुओं को परस्पर मिलाकर मुंह के सामने रखें। दोनों हाथों को जमीनपर दृढ स्थापित करें एवं श्वासको फेफड़ों में भरकर हाथों के आधारपर शरीर को ऊपर उठायें। तदुपरान्त श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आखों की दृष्टिको पैरोंके अँगूठों के सामने रखें। समग्र शरीर को तना हुआ रखें। हाथों को भी सीधा रखें; वे कुहनी से मुडने न पायें। हाथ तथा

शरीर हिलने-डोलने न पायें। अभ्यास पूर्ण हो जानेपर शरीर को शनैः-शनैः नीचे लाकर दोनों कुल्हों को जमीनपर रख दें। इस समय अधिक उतावली या जल्दबाजी करनेपर कूल्हों में दर्द होने की सम्भावना है।

समय

१० दिनतक १५ सेकण्ड। ११ से २० दिनतक ३० सेकण्ड। २१ से ३० दिनतक ४५ सेकण्ड। तदुपरान्त शक्ति, आयु और लाभके अनुसार ४५ से ६० सेकण्ड अथवा इससे भी अधिक समयतक बढ़ायें।

लाभ

जिन लोगोंको प्यास अधिक सताती हो; आलस्य रहता हो; अन्न देरसे पचता हो; शरीरमें भारीपन रहता हो; उनके लिये यह आसन अतीव लाभप्रद है। हाथोंमें गलेमें, कन्धोंमें शक्ति बहुत बढ़ जाती है। कानोंकी सनसनाहट मिट जाती है। पसलियों, जानुओं और उनके जोड़ों में यदि पीड़ा होती होगी तो मिट जायेगी। गुदामें कतरनी-जैसी पीड़ा होना, कभी गाढ़ा और कभी पतला मल निकलना, मलके बाहर निकलते समय गुदा-द्वारमें शब्द होना और अपान वायुके विकृत हो जानेसे मल-विसर्जन अनियमित रूपसे होना आदि विकारोंमें यह आसन निस्सन्देह नितान्त लाभप्रद सिद्ध होगा। मुहसे यदि अधिक परिमाणमें थूक या राल निकलती हो और शरदीसे गलेकी आवाजमें भी अंतर आ गया हो, कभी खट्टी, कभी मीठी और कभी कसैली डकारें आती हों तो इस आसन के अभ्यास से बिलकुल ठीक हो जाती है। कमर की पीड़ा अच्छी होती है और किन्हीं स्त्री-पुरुषों की कमरमें मेद अधिक होगा तो वह कम हो जायेगा।

● ●

चक्रासन—पहला प्रकार [अपूर्ण]

(चित्र-संख्या १३; पूर्ण-संख्या ८२)

(पृष्ठसंख्या ९० देखिये)

जमीनपर चित लेट जायें। तदनन्तर दोनों पैरोंको घुटनोंसे मोड़कर नितम्बोंके पास जमीनपर रखें। दोनों पैरोंके बीचका अन्तर ४ अंगुलसे ६ अंगुलतक रहे। दोनों हाथोंको कुहनियोंसे मोड़कर शिरके अगल-बगल भूमिपर रखें।

● ●

चक्रासन—दूसरा प्रकार (सम्पूर्ण)

(चित्र-संख्या १४; पूर्णसंख्या ८३)

(पृष्ठसंख्या ९१ देखिये)

चित्र-संख्या १३ (पूर्णसंख्या ८२) में बताई हुई स्थितिपर आनेके अनन्तर श्वासको फेफड़ोंमें भरकर कमरसे शिरतक पिछले भागको जमीनसे ऊपर उठायें और श्वासोच्छ्वास चालू रखें। शिरको यथासम्भव पीठकी ओर ले जायें। दोनों हाथोंको जहाँतक हो सके, सीधा रखनेका प्रयास करें। आँखें बंद भी रख सकते हैं और खुली भी रख सकते हैं। समग्र शरीरको स्थिर रखें, हिलने डोलने न दें। हाथ और पैर अपने स्थानसे हटने न पायें। जहाँतक हो सके, पीठके भागको ऊपर ले जानेका प्रयास करें, अर्थात् इस आसनको करते समय शरीरको चक्रके समान गोलाकार बनाना पड़ता है। यथाशक्ति अभ्यास करनेके पश्चात् उतरनेसे पहले श्वासको फेफड़ोंमें भरकर नीचे आनेका प्रयास करें और नीचे आनेके बाद श्वास प्रश्वास चालू रखें।

समय

८ दिन तक २ बार। ९ से १६ दिन तक ३ बार। १६ दिन के पश्चात् शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार इसे ५ बार तक कर सकते हैं। अभ्यास के प्रथम समयमें ही यदि अधिक समय तक कर सकते हों तो १ से २ अथवा ३ बार भी करना चाहिये। यह आसन स्त्रियों के लिये भी अनुकूल है।

लाभ

योगाभ्यास के अन्तर्गत कुछ आसन ऐसे हैं, जिनका साधन निरन्तर करते रहने से बुढ़ापा जल्दी नहीं आता और युवावस्था दीर्घकाल तक स्थिर रहती है। ऐसे ही आसनोंमें यह भी एक आसन है। पीठकी रीढ़ (मेरुदण्ड) और समग्र शरीर के सांधों (जोड़ों) में लचीलापन (लाघव) होना चाहिये। यही युवकत्वका लक्षण है। मेरुदण्ड और सांधोंमें जब नितान्त कठोरता आ जाती है, तब लचीलापन नष्ट हो जाता है और युवावस्था में ही वृद्धत्व के चिन्ह प्रकट होने लगते हैं। योगाभ्यास इन सभी स्थितियों को रोकने वाला और युवावस्था को चिरन्तन बना देने का शुभ परिणाम प्रकट करता है। अस्तु, इस आसन से आखों की दृष्टि तीव्र होती है, गलेकी आवाज में मधुरता, सुरीलापन और स्पष्टता आ जाती है। कफ-मिश्रित वायुविकार होने से जानु की सन्धियोंमें, गलेमें और गले के पृष्ठभागमें, कन्धों में और बगल में छोटे बेर के आकार की गांठें हो जाती हैं। कभी-कभी इन गांठों में पीड़ा होती है और कभी नहीं होती। कभी-कभी यह गांठें बड़ी मालूम पड़ती हैं और कभी छोटी। यह रोग जब अधिक पुराना हो जाता है, तब कुछ गांठें पकने लगती हैं। यह सब विकार इस आसन से पूर्णतया मिट जाते हैं। त्वचा में सिकुड़न आ गई हो तो वह मिट जाती है और शरीर भरावदार बन जाता है। त्वचा युवावस्था के समान सतेज और कसीली बन जाती है। गुल्म रोग के निवारण के लिये भी यह आसन परमोत्तम है। मूत्रमें रुकावट और कभी-कभी वमन की इच्छा होना, पेट का फूल जाना, कमर की पीड़ा और दमा आदि अनेक व्याधियों से पीड़ित लोग इस आसन के प्रभाव से आराम पाते हैं। कभी-कभी हाथ-पैरों में चीटियों के काटने के समान पीड़ा होती है, कभी-कभी दाह का अनुभव होता है और कभी-कभी बिच्छू के डंक मारने-जैसी पीड़ा होती है, फलतः बैठने-उठने में शान्ति नहीं मिलती। अर्थात

जीवन अशान्तिमय बन जाता है। यह सब विकार भी इस आसनसे मिट जाते हैं। बचपनमें या अधिक उम्र में बुखार या अन्य किसी रोग के पश्चात् किसी भी कारणसे अशक्ति आ जाती है, वह भी इस आसन से दूर हो जाती है। इस आसन के अभ्यास के साथ तेल-मालिश कराना भी आवश्यक होगा। भूख अच्छी लगती है। हाथ-पैरों के स्नायु बहुत मजबूत होते हैं। अष्टम धातुमें परिगणित ओजस्-तत्त्व यथेष्ट परिमाण में मस्तिष्क में प्रवेश करता है। कर्णरोगियों के लिये भी यह आसन परमोत्तम फलदायक है।

卐 卐
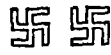
उष्ट्रासन

(चित्र-संख्या १५; पूर्ण-संख्या ८४)

(पृष्ठसंख्या ९२ देखिये)

अधश्च शेते पदयुग्म व्यस्तं पृष्ठे निधायापि धृतं कराभ्याम्।
आकुंचयेच्चैव हृदास्यमूर्ध्वमुष्ट्रं च पीठं मुनयो वदंति ॥ १ ॥

— यो. प्र.

पैरों को घुटनेसे मोडकर जमीनपर रखें और दोनों पैरोंकी एडियोंपर दोनों कूल्हे स्थापित करें। पैरों की एडियों को पास-पास रखें। तदुपरान्त दोनों हाथों से दोनों पैरों की एडियों को पकड़ लें और फेफड़ोंमें श्वास भरकर कमर के भाग को ऊपर की ओर उठायें। दोनों हाथोंको सीधा रखें और शिर को पीठ की ओर ले जायें। समस्त शरीर का भार पैरोंकी उँगलियों और घुटनों पर रहे। आंखें बन्द भी रख सकते हैं और खुली भी रख सकते हैं। सारे शरीरको तना हुआ रखें। शरीरको ऊपर ले जाने के पश्चात् श्वासोच्छ्वास चालू रखें। यथाशक्ति आसन करनेके पश्चात् श्वासको दोनों नासा पुटोंसे फेफड़ोंमें भरकर पैरोंकी पिण्डलियोंपर बैठ जायें और तदुपरान्त श्वासोच्छ्वास चालू रखें

समय

१० दिनतक २ बार। ११ से २० दिनतक ३ बार। २० दिन के पश्चात् शक्ति, आयु और लाभके अनुसार ३ से ५ बारतक अभ्यास बढ़ायें। अधिक समयतक करनेका अभ्यास हो जानेपर १ से ३ बारतक कर सकते हैं। चक्रासन और उष्ट्रासन के अभ्यास-कालमें भगवान् का नाम लेते रहने; ॐकारका जप करते रहने अथवा अपने गुरुदेव का स्मरण करते रहनेसे अधिक समयतक इस आसनको किया जा सकता है।

लाभ

कुछ लोगोंके शरीरमें अशुद्ध रक्तका प्रवाह बढ़ जाता है और मांस तथा धातुओंको भी विकारमय बना देता है, जिसके फलस्वरूप चर्म और मांसगत अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यह सब रोग इस आसनसे समूल नष्ट हो जाते हैं। अनेकशः वातज, पित्तज और कफज रोगोंको मिटाने के लिये यह आसन शुभ फलदायी है। गुदाके समीप दो अंगुलके स्थानमें पिडकायें (फोड़े-फुन्सियां) हो जाती हैं, फलतः सूजन भी हो जाती है और सूजनके पश्चात् पीड़ा भी होने लगती है। कभी-कभी सूजन बाहर मालूम नहीं होती और कालान्तरमें यही रोग भगन्दरके रूपमें प्रकट होता है। वैसे तो भगन्दर रोग कई प्रकार के होते है और सपूर्ण रूपसे यह विश्वास भी दिलाया नहीं जा सकता है कि इस आसनसे भगन्दरके यह सभी रूप मिट जायेंगे। फिर भी, वातज, पित्तज और कफज भगन्दरसे पीछा छूट जानेकी सम्भावना है। कभी-कभी इस भगन्दर का लक्षण वृषण और गुदाके बीचमें फोड़ेके रूपमें प्रकट होता है; बादमें यह फोड़ा पककर फूट जाता है। इसीको भगन्दर कहते हैं। यह आसन इन सब व्याधियोंके लिये आशीर्वाद के समान है। प्रदर और प्रमेहके रोगियोंपर भी इस आसनका शुभ प्रभाव होता है।

हंसासन [अपूर्ण]

(चित्र-संख्या १६; पूर्ण-संख्या ८५)

(पृष्ठसंख्या ९३ देखिये)

दोनों पैरों को घुटनों से मोडकर घुटनों को जमीनपर रखें। छाती और शिरको आगे की ओर झुकाकर रखें। तत्पश्चात् दोनों हाथों को टेढा कर कुहनियों को नाभि-स्थानपर रखें।

卐 卐
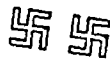
हंसासन [सम्पूर्ण]

(चित्र- संख्या १७; पूर्ण-संख्या ८६)

(पृष्ठसंख्या ९४ देखिये)

चित्र-संख्या १६ (पूर्णसंख्या ८५) में बताये अनुसार करनेके पश्चात् श्वासको फेफडोंमें भरकर पहले दाहिने पैरको पीछेकी ओर सीधा फैला दें और तुरन्त ही बायें पैरको भी दाहिने पैरकी तरह सीधा फैलाकर रखें। तदुपरान्त शनैः-शनैः शिरको नीचेकी ओर झुकाकर भूमिका स्पर्श करें। श्वास यथाशक्ति चालू रखें। इस समय हाथों की कुहनिया नाभिसे हटने न पावें। हाथ, पैर या शरीरके अन्य किसी अंगको ढीला होने न दें। पैरोंके घुटने भी मुड़ने न पावें। आखें खुली भी रख सकते हैं और बन्द भी रख सकते हैं। यथाशक्ति आसनका साधन करनेके पश्चात् पूर्ववत् एक-एक पैरको मोडकर बैठ जावें। पहले शिरको भूमिसे उठावें। तदुपरान्त पैरोंको सिकोड़ लें। पैरोंके सिकोड़ते समय कुम्भक करें, अर्थात् श्वास को फेफड़ोंमें रोक लें। इस आसन को करते समय शरीर के किसी एक ओर लुढ़क पड़ने की सम्भावना है; किन्तु ऐसा होने

न पाये। शरीर का समग्र भार हाथ, पैर और शिरपर रखें। हंसासनमें इतना ध्यान रखना चाहिये कि पैरों की उँगलियां और शिर का भाग भूमि का स्पर्श करते रहें। इसीको हंसासन कहा जाता है। किन्तु जब शिर और पैरों की उँगलियां भूमि का स्पर्श नहीं करतीं; अर्थात् ऊपर रहती हैं; उस अवस्था में उस आसन का नाम भी बदल जाता है; अर्थात् उसे मयूरासन के नामसे पुकारा जाता है। आसन के अभ्यास के पश्चात् भूमिपर उतरते समय पहले पैरों को सिकोड़ लें और फिर बैठ जायें।

हंसासन का समय

८ दिन तक २० सेकण्ड। ९ से १६ दिन तक ३० सेकण्ड। १७ से २४ दिन ४५ सेकण्ड। तदुपरान्त शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार १ मिनटसे १॥ मिनट तक बढ़ा सकते है।

लाभ

अरुचि, अग्निमान्द्य, खांसी, कोष्ठवृद्धि आदि मिट जाते हैं। टान्सिल (तालुमें सूजन आ जाना) और तालु के मास म कुपित हुआ कफ 'तालुकण्टक' नामक रोग उत्पन्न करता है। यह रोग भी इस आसन के अभ्याससे मिट जाता है। भूख बढ जाती है। यद्यपि कुछ स्त्रियोंको इस आसन के अभ्यास की आवश्यकता नहीं है; किन्तु बहुतेरी स्त्रियों के लिये यह लाभदायक है।

卐 卐
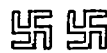
मयूरासन

(चित्र–संख्या १८; पूर्ण–संख्या ८७)

(पृष्ठसंख्या ९५ देखिये)

धरामवष्टभ्य करद्वयेन तत्कूर्परस्थापितनाभिपार्श्वः ।
उच्चासनो दंडवदुत्थित स्यान्मयूरमेतत्प्रवदंति पीठम् ॥१॥

— घे. स.

चित्र–संख्या १६ [पूर्ण–संख्या ८५] में बताये अनुसार करने के पश्चात् दोनों पैरों को शनैः-शनैः सीधा रखें। पैर जमीन को छूने न पायें और इसी प्रकार शिर का स्पर्श भी भूमि के साथ होने न पाये। समग्र शरीर का भार हाथों के पंजोंपर रहे। आखें खुली रखें। शरीर को ढीला न रखें। सर्वांग तना हुआ रहे। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। कदाचित् किसी कारणवश श्वास लेते समय शरीर के भूमि-पर गिर जानेकी सम्भावना हो तो थोड़ी–थोड़ी देर तक श्वास को रोक भी सकते हैं और चालू भी रख सकते हैं। इसी आसन का नाम 'मयूरासन' है। मयूरासन का अभ्यास करते समय शिर औरें पैर को समान अवस्थामें भी रख सकते हैं और शिर की रेखासे पैरोंको कुछ ऊपर भी ले जा सकते हैं।

समय

१० दिन तक १५ सेकण्ट। ११ से २० दिन तक ३० सेकण्ड। तदुपरान्त शक्ति, आयु, औरें लाभ के अनुसार ६० सेकण्ड अर्थात् १ मिनट तक बढा सकते हैं।

लाभ

जिस प्रकार जहर को मयूर पचा जाता है, उसी तरह इस आसन के करने वाले को लाभ प्राप्त होता है, अर्थात् जैसे प्रज्वलित अग्निपर किसी वस्तु के गिरने से वह भस्म हो जाती है; उसी तरह पेट में पहुंचा हुआ आहार भी भलीभांति पचकर विशुद्ध रस, रक्त आदि धातुओं का शरीर में निर्माण होता है। शरीर के सभी विकारों का प्रशमन हो जाता है। इसी प्रकार अशुद्ध स्वर्ण, अशुद्ध लोहा और अन्य वस्तुओं की जैसी स्थिति अग्निमें पडकर होती है, उसी तरह इस आसन के करने और शुद्ध, सात्विक आहार

ग्रहण करते रहने से शरीर में निस्सन्देह अधिकाधिक मात्रामें आरोग्यवर्धक और पोषक तत्त्व तैयार होंगे और मल-मूत्रादि विजातीय द्रव्योंका निर्माण बहुत कम परिमाणमें होगा; फलतः रक्तादि शरीरनिर्मायक धातुओंकी स्वभावतः वृद्धि होगी और शरीर बलवान् तथा परिपुष्ट होगा। अन्य कठोर व्यायाम करनेवालों को आहार अधिक परिमाणमें चाहिये; परन्तु योगाभ्यास करने वालों को अधिक आहार की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसका प्रमुख कारण यह है कि योग-साधनसे समस्त शरीरगत इन्द्रिया और अंग-प्रत्यंग रजोगुण और तमोगुणप्रधान न रहकर सात्विक गुणसे ओतप्रोत हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त सभी इन्द्रियों तथा अवयवोंमें रोगमूलक सप्तधातुओंकी अधिक मात्रामें आवश्यकता नहीं रह जाती। कठोर व्यायाम करनेवाले अनेकशः लोग मेद रोग और शारीरिक क्षीणता एवं वात-पित्त-कफादि के प्रकोपसे पीड़ित पाये जाते हैं। इतना ही नहीं; और भी अनेक लाभ इस आसनमें भरे हुए हैं। सभी रोगों का मूल कारण मलावरोध [कब्ज], अपचन, मन्दाग्नि आदि हैं। इस आसन का अभ्यास प्रारम्भ करते ही उपर्युक्त तीनों रोगोत्पादक विकार नष्ट हो जाते हैं। आखों की ज्योति भी अच्छी रहती है। पसलियोंमें, गलेमें, हाथोंमें, उंगलियोंमें असीम शक्ति बढ जाती है। उदर का वैश्वानर अग्नि प्रदीप्त हो उठता है, जिसके प्रभाव से शरीर सम-शीतोष्ण रहता है; अर्थात् जहां जितनी गरमी और शरदी की जरूरत रहती है, वहा उतनी मिलती रहती है।

मयूरासन कौन न करें ?

अतिसार के रोगी इस आसन को न करें। हाई ब्लडप्रेशर के रोगियों को भी यह आसन वर्जित है। जिनका शरीर विशेष दुर्बल हो तथा जो खासी और मूर्छासे पीड़ित हो, वे भी इस आसन को न करें। जिन के नेत्रोंमें अधिक रक्त का सचार हो, अर्थात जिनकी आखें लाल रहती हों, उन्हें भी यह आसन हानिकर हो सकता है। जिन स्त्रियों के योनिस्कन्ध, गर्भाशय और रजस्-दोष के कारण सन्तानोत्पत्ति न होती हो; उन्हें अवश्य ही इस आसन का प्रयोग-परीक्षण कर देखना चाहिये। इसी प्रकार जिन पुरुषोंमें पुरुषत्वकी हीनता हो तथा वीर्याशयकोग की दुर्बलता तथा शिश्नेन्द्रिय की नसों के शैथिल्य के कारण जो सन्तानोत्पत्तिमें नितान्त असमर्थ हैं, वे लोग भी इस आसन को अवश्य करें। हम यह दावा तो नहीं कर सकते कि इस आसन के अभ्यास स शत-प्रतिशत लाभ निस्सन्देह प्राप्त होगा। परन्तु २५ से ४० प्रतिशत लाभ पहुंचने की सम्भावना निस्सन्देह है।

मयूरी आसन

(चित्र-संख्या १९ पूर्णसंख्या ८८)

(पृष्टसंख्या ९६ देखिये)

चित्र-सख्या १८ (पूर्ण संख्या ८७) में बताये अनुसार करनेके पश्चात् उसी अवस्थामें पद्मासन लगा लें। पद्मासन लगाते समय शरीर के डावांडोल होकर गिर जानेकी सम्भावना है। परन्तु जिनकी कलाइयोंमें अधिक शक्ति होगी और जो शरीरके समग्र अंग-प्रत्यंगोंपर नियन्त्रण स्थापित करनेमें समर्थ होंगे; वही लोग इस आसनका भलीभाति साधनकर समुचित लाभ उठा सकते हैं। पद्मासनकी स्थितिमें ही शिरको और पैरोंको ऊपर उठानेका प्रयास करें। इस समय आखोंको अच्छी तरह खोलकर रखें। इस आसनके यथोचित साधनके पश्चात् जमीनमें उतरते समय पहले पैरोंको सीधा करके सिकोड़ लें और फिर बैठ जायें।

समय

इस आसनका समय वही है, जो मयूरासनका है।

लाभ

मयूरासन के सभी लाभ इस आसन से प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त इस आसन के अभ्यास से पैरोंके स्नायु मजबूत होते हैं। कमर की नस-नाड़िया सशक्त होती हैं। गुदाद्वार के संकोच-विकासकी शिथिलता दूर होती है, अर्थात् वह शक्तिवान् बनता है। अण्डकोशकी बीमारियों के लिये यह आसन अतीव लाभदायक समझा जाता है।

विस्तृतपाद वक्ष (छाती) भूमि-स्पर्शासन (पहला प्रकार)

(चित्र-संख्या २० पूर्ण-संख्या ८९)

(पृष्ठसंख्या ९७ देखिये)

जमीनपर सीधे बैठ जायें। दोनों पैरों को जहांतक हो सके, दाहिने-बायें दोनों ओर फैला दें। दोनों हाथोंको पीछे की ओर ले जाकर बायें हाथसे दाहिने हाथकी कलाई पकड़ लें। इस समय दाहिने हाथ की मुठ्ठी बँधी रहे। तदुपरान्त श्वास को फेफड़ोंमें भरकर दाहिने घुटने को मुंहसे स्पर्श करें। श्वासोच्छ्वास चालू रहे। जिन लोगोंके पेटमें चरबी अधिक हो, उन्हें पहलेसेही श्वासको बाहर निकालकर अभ्यास करना चाहिये। मुंह यदि घुटनेतक पहुंच न पाये तो जहांतक आसानीसे पहुंच सके, वहांतक ले जायें। मुहको घुटनेतक पहुँचानेका प्रयत्न निरन्तर करते रहें। ऐसा करते रहनेसे मुंह एक दिन घुटनेको छूने लगेगा। इस आसनको करते समय पैरों के घुटनोंके ऊपर उठ जानेकी सम्भावना है। परन्तु उस समय घुटनोंको भलीभांति दबाकर रखना चाहिये, जिससे वे ऊपर उठ न सकें।

विस्तृतपाद वक्ष (छाती) भूमि-स्पर्शासन (दूसरा प्रकार)

(चित्र-संख्या २१ पूर्ण-संख्या ९०)

(पृष्ठसंख्या ९८ देखिये)

चित्र-संख्या २० (पूर्णसंख्या ८९) में बताये अनुसार करनेके पश्चात् मुंह को बायें घुटनेसे लगा रखें। कदाचित् ऐसा सम्भव न हो तो चित्र-संख्या २० (पूर्णसंख्या ८९) के निर्देशानुसार प्रयत्न करते रहना चाहिये।

समय

१० दिनतक आध-आध मिनट। ११ से २० दिनतक पौन-पौन मिनट। २० दिनके पश्चात् १ से १॥ मिनटतक अभ्यास बढायें।

● ●

विस्तृतपाद वक्ष (छाती) भूमि-स्पर्शासन (सम्पूर्ण)

(चित्र-संख्या २२ पूर्णसंख्या ९१)

(पृष्ठसंख्या ९९ देखिये)

चित्र-संख्या २० (पूर्णसंख्या ८९) और चित्रसंख्या २१ (पूर्णसंख्या ९०) का अभ्यास पूरा हो जाने के पश्चात् ठुड्डी, छाती और पेटके भाग को सामने की ओर जमीनपर लगायें। आरम्भमें कदाचित् कुछ दिनतक छाती और पेटका भाग जमीनका स्पर्श कर न सकेंगे। फिर भी, अभ्यासको छोड़ना न चाहिये। जहातक हो सके; मुंह, छाती और पेटके भाग को जमीनके समीप ले जानेका प्रयास करें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आखें खुली रखें। हाथोंको पीछेकी ओर ले जाकर कमरपर मुट्ठी बांधकर पकड़ लें। सारे शरीरको तना हुआ रखें; ढीला न रखें।

समय

१५ दिनतक २० सेकण्ड। १५ दिनसे १ महीनेतक ४० सेकण्ड। तदनन्तर शक्ति, आयु और लाभके अनुसार १ मिनट या इससे भी अधिक बढ़ा सकते हैं। यह आसन सभी स्त्री-पुरुषोंके लिये अनुकूल है।

विस्तृतपाद वक्ष (छाती) भूमि–स्पर्शासन (पहला प्रकार)

(चित्र–संख्या २० पूर्ण–संख्या ८९)

(पृष्ठसंख्या ९७ देखिये)

जमीनपर सीधे बैठ जायें। दोनों पैरों को जहांतक हो सके, दाहिने–बायें दोनों ओर फैला दें। दोनों हाथोंको पीछे की ओर ले जाकर बायें हाथसे दाहिने हाथकी कलाई पकड़ लें। इस समय दाहिने हाथ की मुट्ठी बँधी रहे। तदुपरान्त श्वास को फेफड़ोंमें भरकर दाहिने घुटने को मुंहसे स्पर्श करें। श्वासोच्छ्वास चालू रहे। जिन लोगोंके पेटमें चरबी अधिक हो, उन्हें पहलेसेही श्वासको बाहर निकालकर अभ्यास करना चाहिये। मुंह यदि घुटनेतक पहुंच न पाये तो जहांतक आसानीसे पहुच सके, वहातक ले जायें। मुंहको घुटनेतक पहुँचानेका प्रयत्न निरन्तर करते रहें। ऐसा करते रहनेसे मुंह एक दिन घुटनेको छूने लगेगा। इस आसनको करते समय पैरों के घुटनोंके ऊपर उठ जानेकी सम्भावना है। परन्तु उस समय घुटनोंको भलीभांति दबाकर रखना चाहिये, जिससे वे ऊपर उठ न सकें।

विस्तृतपाद वक्ष (छाती) भूमि–स्पर्शासन (दूसरा प्रकार)

(चित्र–संख्या २१ पूर्ण–संख्या ९०)

(पृष्ठसंख्या ९८ देखिये)

चित्र–संख्या २० (पूर्णसंख्या ८९) में बताये अनुसार करनेके पश्चात् मुंह को बायें घुटनेसे लगा रखें। कदाचित् ऐसा सम्भव न हो तो चित्र–संख्या २० (पूर्णसंख्या ८९) के निर्देशानुसार प्रयत्न करते रहना चाहिये।

समय

१० दिनतक आध-आध मिनट। ११ से २० दिनतक पौन-पौन मिनट। २० दिनके पश्चात् १ से १॥ मिनटतक अभ्यास बढ़ायें।

विस्तृतपाद वक्ष (छाती) भूमि-स्पर्शासन (सम्पूर्ण)

(चित्र-संख्या २२ पूर्णसंख्या ९१)

(पृष्ठसंख्या ९९ देखिये)

चित्र-संख्या २० (पूर्णसंख्या ८९) और चित्रसंख्या २१ (पूर्णसंख्या ९०) का अभ्यास पूरा हो जाने के पश्चात् ठुड्डी, छाती और पेटके भाग को सामने की ओर जमीनपर लगायें। आरम्भमें कदाचित् कुछ दिनतक छाती और पेटका भाग जमीनका स्पर्श कर न सकेंगे। फिर भी, अभ्यासको छोड़ना न चाहिये। जहातक हो सके; मुंह, छाती और पेटके भाग को जमीनके समीप ले जानेका प्रयास करें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आखें खुली रखें। हाथोंको पीछेकी ओर ले जाकर कमरपर मुट्ठी बाधकर पकड़ लें। सारे शरीरको तना हुआ रखें; ढीला न रखें।

समय

१५ दिनतक २० सेकण्ड। १५ दिनसे १ महीनेतक ४० सेकण्ड। तदनन्तर शक्ति, आयु और लाभके अनुसार १ मिनट या इससे भी अधिक बढ़ा सकते हैं। यह आसन सभी स्त्री-पुरुषोंके लिये अनुकूल है।

लाभ

इस आसनसे शरीरके सर्वांगको यथेष्ट परिमाणमें व्यायाम मिल जाता है। कभी-कभी अधिक मार्ग चलनेसे, अधिक मैथुनसे, नमक, खटाई, इमली, लालमिर्च-मसाला अधिक खानेसे, कड़ी धूपमें अधिक घूमनेसे, शोकाघात और अधिक चिन्ता, अधिक कठोर व्यायाम या कठोर श्रम करनेसे पित्त प्रकुपित हो उठता है। यह कुपित हुआ पित्त शरीरसे बाहर निकलनेके लिये दो मार्ग अपनाता है-एक तो कान, नाक, मुह, आंख आदि उपरिवर्ती मार्ग से अथवा गुदा, लिंग, योनि आदि अधोमुखी मार्ग से वह बाहर निकलनेका प्रयास करता है। पित्त का अधिक प्रकोप होनेसे भी पित्त रुधिरके साथ मिश्रित होकर रोमकूपोंके द्वारसे बाहर निकलता है। इसीको रक्तपित्त रोग भी कहते हैं। इस आसनके समयमें यकृत, प्लीहा, अन्नाशय-कोश, गुर्दे आदि सभी अवयवोंपर यथोचित रूपमें शुभ प्रभाव पड़ता है और यह सब अंग अपने-अपने कार्यको योग्यतापूर्वक सुचारु रूपसे सम्पादित करने में समर्थ होते हैं। फलतः उपर्युक्त सभी रोगोंका पूर्णतया निवारण हो जाता है और यकृत, प्लीहा आदि अनेक नाजुक तथा महत्त्वपूर्ण अवयव नीरोग होते हैं। पैर, कमर, हाथ आदि शरीर के प्रत्येक सांधे (जोड़) में लचीलापन आ जाता है। रुधिराभिसरण का ढंग ऐसा उत्तम होता है, जैसा कि बालकके शरीरका होता है। वृद्धावस्थाकी व्याधिसे सुरक्षित रखनेवाले अनेक आसनोंमेंसे यह भी एक महत्त्वपूर्ण आसन है। इस आसनके सम्बन्धमें इतना और बता देना आवश्यक तथा पाठकों को प्रेरणा तथा प्रोत्साहनप्रदायक है कि श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में भूतकालमें योगाभ्यास की अभीप्साको लेकर आये हुए श्रद्धालु और विश्वासु साधक स्त्री-पुरुषोंमें से जिन साधकोंने मानसिक दृढ़ता और बौद्धिक स्थिरताके साथ यथोचित विधिपूर्वक अभ्यास किया है; उन्होंने इस आसनसे बहुत लाभ उठाया है। वर्तमान समयमें भी श्रद्धालु साधक यथावत् लाभ उठा रहे हैं। ब्रह्मचारियों, वानप्रस्थों और ऋषि-मुनि, संन्यासियों को इस आसनसे जितना लाभ प्राप्त होता है, उतने ही परिमाण में गृहस्थ लोगोंने भी इस आसनसे अपने स्थूल और सूक्ष्म शरीरका परिष्कार किया है।

सिंहासन

(चित्र-संख्या २३ पूर्ण-संख्या ९२)

(पृष्ठसंख्या १०० देखिये)

दोनों पैरोंको घुटनोंसे मोड़कर पीछेकी ओर ले जायें और उनकी एड़ियोंपर बैठ जायें। एड़ियां कूल्होंके अगल-बगल रहें। घुटनोंको ६ इंचके अन्तरपर रखें। दाहिने हाथके पंजेको दाहिने पैरके घुटनेपर और बायें हाथके पंजेको बायें पैरके घुटनेपर रखें। पेटको दबाकर रखें। छातीको फुलाकर रखें। मुंहको खोलकर जहांतक हो सके, जीभ को बाहर निकाल लें। आंखें खुली रखें और भौंहोंको ऊपर की ओर चढ़ानेका प्रयत्न करें। श्वास कण्ठसे लें और छोड़ें। पेटका संकोच और विकास करते रहें। हाथोंसे पैरोंके घुटनोंको अच्छी तरहसे दबाकर रखें। सारे शरीरको तना हुआ रखें। हाथोंकी उँगलियोंको भी यथासंभव आगेकी ओर खींच कर रखें। मेरुदण्डको आगेकी ओर दबा रखें। इस आसनके अभ्यासी कुछ दिनतक मुंहको अधिक न फैलायें और जीभको भी अधिक बाहर न निकालें। आखोंको भी तानकर न खोलें। अभ्यास हो जानेके पश्चात् आंखोंको यथाशक्ति खोल सकते हैं। दुराग्रहपूर्वक दांतों के जबड़ोंको अधिक खोलनेसे जबड़ों के सांधोंके खुल जानेकी सम्भावना है। सभी स्त्री-पुरुष इस आसनको कर सकते हैं।

समय

१० दिनतक आध मिनट। ११ से २० दिनतक पौन मिनट। तदुपरान्त शक्ति, आयु और लाभके अनुसार १ मिनिटतक बढा सकते हैं। किसी कारणवश यदि लगातार १ मिनिटतक अभ्यास करना सम्भव न हो तो दो-तीन बारतक कर सकते हैं।

लाभ

जैसे सिंहका कटिस्थान पतला तथा वक्षःस्थल (छातीका भाग) प्रशस्त, उन्नत शक्तिवान् और विकासोन्मुख रहता है, उसी तरह की शारीरिक गठन इस आसन के साधक की हो जाती है। तन्दुरुस्त शरीर के लक्षण अनेक हैं; उनमें से एक यह भी

है कि छाती विशाल होती है और पेट छाती के नीचे दबा, चिपटा और संकुचित रहता है। जैसे इस आसन के चित्रमें प्रत्यक्ष रूपमें गले के उपर की ज्ञानेन्द्रियों को देखते हैं; वैसे ही इनका गुण सचमुच ही है; अर्थात् जीभ सशक्त बनती है। तोतलापन मिटता है। उपजिह्वा भी सशक्त बनती है। जिन लोगों की जीभ को स्वादका बिलकुल अनुभव नहीं होता, उन्हें यथोचित स्वाद का आनन्द मिलने लगता है। जीभके चारों ओर अमीरस (लार) उत्पन्न करनेवाली रस–ग्रन्थि सशक्त बनकर अपना कार्य सुचारु रूपसे करने लगती है। अन्न के समुचित परिपाक के लिये जिस पाचक अमीरस की आवश्यकता होती है, वह उचित मात्रामें उत्पन्न होता है और पाचनशक्ति बढ़ाने में सहायता पहुंचाता है। अधरोष्ठों और गालोंपर आरोग्य की तेजस्विता आभासित हो उठती है। वायुविकारसे मुंह और ओष्ठोंमें कम्पन होता है। यह आसन इन सब लक्षणों को मिटा देता है। अर्धांगवायु (लकवा) से पीड़ित रोगी के लिये भी यह आसन हितकर है। मुंह सुन्दर होता है और शरीर की त्वचा युवावस्था की कान्ति से चमक उठती है। वृद्धावस्था के सभी लक्षण दूर भागते फिरते हैं; पास नहीं आने पाते। कानों के पर्दे भी मजबूत बनते हैं। गले के ऊपर की नस–नाड़ियां सशक्त होकर नियन्त्रण में आ जाती है। आंखों की ज्योति ठीक रहती है। मस्तिष्क को इससे अच्छा व्यायाम मिलता है। कपाल और सारे शरीर की त्वचा तेजस्वी रहती है। वृद्धावस्था की सिकुड़न त्वचा में आने नहीं पाती। विशेष रूपसे गले के सभी अवयव सशक्त और विकासोन्मुख रहते हैं।

● ●

गरुड़ासन

(चित्र–संख्या २४; पूर्ण–संख्या ९२)

(पृष्ठसंख्या १०१ देखिये)

जमीनपर सीधे खड़े हो जायें। बायें पैरको सीधा रखें और दाहिने पैरको घुटनेसे मोड़कर बायें पैरसे लपेट लें और बायें तथा दाहिने हाथको भी परस्पर लपेट लें। दोनों हाथोंके अँगूठोंको मिलाकर नासाग्र भागमें लगायें। आंखें खुली रखें। श्वासोच्छ्वास

चालू रखें। जहांतक हो सके; शरीर को सीधा रखें। बायां पैर घुटनेसे मुड़ने न पाये। इसी प्रकार दूसरे अंगसे भी करें।

समय

८ दिनतक १५ १५ सेकण्ड। ९ से १६ दिनतक ३०।३० सेकण्ड। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार १।१ मिनटतक बढायें।

लाभ

सभी स्त्री-पुरुष इस आसनको कर सकते हैं। इसके अभ्याससे पैरोंके स्नायु नवीन शक्तिसे भरपूर हो जाते हैं। शरीरकी गठन संतुलित स्थितिमें आ जाती है। जानुओं और पिण्डलियों की पीड़ा मिटती है। हाथोंकी कमजोरी दूर होती है। मन को एकाग्र बनानेमें यह अतीव सहायक होता है। जो लोग चंचल मनोवृत्तिके हैं, उन्हें यह आसन हितैषी मित्र की तरह सहयोग प्रदान करेगा और मनको सुस्थिर बनायेगा। आसनके अभ्यास-कालमें मनमें शुभ विचार रहने चाहिये। इस आसनसे शरीरकी निर्बलता दूर हो जायेगी।

पादांगुष्ठासन

(चित्र-संख्या २५, पूर्ण-संख्या ९४)

(पृष्ठसंख्या १०२ देखिये)

पैरोंकी उँगलियोंके आधारपर जमीनपर बैठ जायें। पैरों के तलुवों और एडियोंको उठा कर रखें। दाहिने हाथ की उँगलियोंको दाहिने पैर के पंजेके पास और बायें हाथ की उंगलियोंको बायें पैरके पंजेके पास रखें। दाहिने पैरको बायें पैरके घुटनेपर

रखें, और बायें पैरको सिवनी–स्थानपर रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। कमर, पैर और शिरको समान रेखामें सीधा रखें। दोनों हाथों की उँगलियोंको जमीन के ऊपर उठाते रहें। जब शरीर समतोल स्थितिमें आ जाये, तव दोनों हाथोंको कमरपर रखें। इस आसन को करते समय शरीरके हिलने–डोलनेकी सम्भावना है। जब मन स्थिर होगा, तव शरीर के समग्र अवयव स्वतः स्थिर हो जायेंगे; बुद्धि भी स्थितप्रज्ञ होगी; तव इस आसन की साधना भलीभांति की जा सकेगी। यह आसन जितना देखने में आसान जान पडता है, उतना करने में आसान नहीं है। क्योंकि समग्र शरीर का भार पैर की उँगलियों और तलुवे के अग्रभागपर तथा सिवनी (अण्डकोश और मल–द्वारके बीच) पर रहता है। आखें खुली रखें। शरीर को साधारण तना हुआ रखें। यह बायें अंगका अभ्यास है। इसी प्रकार दाहिने अंगसे भी अभ्यास किया जाये, तव आसनका अभ्यास पूरा माना जाता है। अन्तर इतना ही है कि ऊपरके पैरको नीचे ले जाना पडता है और नीचे के पैर को ऊपर। पैरोंका हेरफेर करते समय हाथों से भूमिका सहारा लेना पडता है।

समय

१० दिनतक १५।१५ सेकण्ड। ११ से २० दिनतक ३०।३० सेकण्ड। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभके अनुसार २।२ मिनटतक अभ्यास बढ़ायें।

लाभ

मनको स्थिर रखने के लिये यह आसन अत्युत्तम है। इसके साधनसे पैरोंकी उँगलिया बहुत मजबूत होती हैं। वीर्यवाहिनी नाडी और मूत्रमार्गमें मजबूती आती है। गृहस्थाश्रमी लोगोंको १ मिनिटसे अधिक यह आसन नहीं करना चाहिये।

एकपाद-शिरासन

(चित्र-संख्या २६ पूर्ण-संख्या ९५)

(पृष्ठसंख्या १०३ देखिये)

बायें परको सीधा सामने फैला दें और बायें पैरको कन्धेके ऊपरसे ले जाकर गलेके पीछेके भागपर स्थापित करें। तत्पश्चात् दोनों हाथोंको जोड़कर छातीके सामने रखें। छाती और शिरके भागको फुलाकर रखें। बायें पैरको बिलकुल सीधा रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आखें खुली रखें। सारे शरीरको तना हुआ रख। यह एकांगी साधन है। इसके बाद इसी प्रकार दूसरे अंगसे भी करना चाहिये; अर्थात् दाहिने अंगको फैला देना चाहिये और बायें पैरको कन्धेके ऊपरसे ले जाकर गर्दनके पिछले भागपर रखना चाहिये। शेष समग्र क्रिया पूर्ववत् है।

समय

८ दिनतक १५।१५ सेकण्ड। ९ से १६ दिनतक ३०।३० सेकण्ड। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभके अनुसार १।१ मिनट तक अभ्यास बढ़ायें।

लाभ

जिन महिलाओंको वारवार गर्भस्राव होता है और जिनका गर्भाशय अशक्त है, उनके लिये यह आसन नितान्त अनुकूल है। अण्डकोशोंका सूज जाना और उनमें पीड़ा होना तथा बवासीर (मूलव्याधि) के रोग भी इस आसनके अभ्याससे दूर होते हैं। भोजनमें अरुचि, हाथ-पैरोंमें शोथ (सूजन) और श्वासनालिकाकी निर्बलता आदि रोगोंसे पीड़ित लोगोंके लिये भी यह आसन अत्युत्तम फलदायक है।

卐 卐

द्विपाद शिरासन (अग्रभाग)

(चित्र-संख्या २७ पूर्ण-संख्या ९६)

(पृष्ठसंख्या १०४ देखिये)

दाहिने पैरको पीछे की ओर ले जाकर बायें कन्धेपर (शिरके पिछले भागपर) स्थापित करें। दोनों हाथोंको सामनेकी ओर भूमिपर दृढ़ स्थापित करें और हाथों के आधारपर ही समस्त शरीर को जमीनसे ऊपर उठायें। आंखें खुली रखें। शिर और छातीके भागको यथासम्भव ऊँचा रखें। श्वासको फेफड़ों में भरकर शरीरको ऊपर उठायें और शरीरके ऊपर उठ जानेके बाद श्वासोच्छ्वास चालू रखने का प्रयास करें। समग्र शरीरको तना हुआ रखें। तत्पश्चात् श्वासको फेफड़ोमें भरकर शनैः-शनैः जमीनपर बैठ जायें।

समय

१० दिनतक १० सेकण्ड। ११ से २० दिनतक १५ सेकण्ड। २१ से ३० दिनतक ३० सेकण्ड। तदनन्तर शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार १ मिनटतक अभ्यास बढ़ायें।

लाभ

हाथोंके स्नायु बलवान् होते है। पीठकी रीढ (मेरुदण्ड) की कमजोरी दूर होती है। कन्धोंकी शक्ति बढ़ जाती है। पैरोंकी पिण्डलियोंमें बल बढ़ता है। दोनों ओरकी पसलियों का विकार दूर होता है। शरीरकी कृशता, कठोरता, कभी-कभी अंगोंका फड़कना, बलकी कमी आदि समग्र विकार और निर्बलता दूर होती है। शरीरमें स्फूर्ति बढती है। इन्द्रियां नवीन शक्तिसे भरपूर हो जाती हैं। गुर्देका भाग मजबूत होकर उसके सभी विकार नष्ट होते हैं। मलमूत्रका मार्ग शुद्ध होता और शरीरका भारीपन मिट जाता है।

द्विपाद–शिरासन (पृष्ठभाग)

(चित्र-संख्या २८ पूर्ण-संख्या ९७)

(पृष्ठसंख्या १०५ देखिये)

चित्र-संख्या २८ (पूर्णसंख्या ९७) चित्रसंख्या २७ (पूर्णसंख्या ९६) का ही अभ्यास है। पाठकों को केवल पैरों की और पीठकी स्थिति बतानेके लिये ही आसनका यह पिछले भाग का रूप दिखाया गया है। वैसे द्विपाद–शिरासनके अग्रभाग और पृष्ठभाग एक ही आसनके अगले और पिछले रूप है। इन दोनोंका समय और लाभ भी एक ही है।
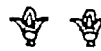
सुप्त द्विपाद–शिरासन

(चित्र-संख्या २९; पूर्ण–संख्या ९८)

(पृष्ठ–संख्या १०६ देखिये)

प्रथम जमीनपर लेट जायें। तदुपरान्त चित्र–संख्या २७ (पूर्णसंख्या ९६) में बताये अनुसार पैरोंको शिरके पिछले भागपर रखें। फिर दोनों हाथोंकी उँगलियोंको परस्पर फँसाकर कमरके नीचेके भागपर रखें। इस समय छातीके नीचे शिरके दब जानेकी सम्भावना है। किन्तु ऐसा होने न पाये और शिरसे पैरोंको दबानेका प्रयत्न करें। आंखें खुली रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। जिन स्त्री–पुरुषोंके पेटमें मेद अधिक परिमाणमें होगा, वे इस आसन को भलीभाति कर न सकेंगे। परन्तु ऐसे लोग भी एक-एक पैर को शिरपर चढ़ाने का प्रयास करेंगे तो महीने–दो महीने में यह आसन उन्हें सम्पूर्णतया सिद्ध हो जायेगा।

समय

८ दिनतक १० सेकण्ड। ९ से १६ दिनतक २० सेकण्ड। १७ से ३० दिनतक ६० सेकण्ड, अर्थात् १ मिनट। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभके अनुसार १॥ मिनटतक बढायें।

लाभ

चित्र-संख्या २७ (पूर्णसंख्या ९६) में बताये गये सभी लाभ यह आसन प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त यह भी लाभ है कि इस आसन का साधन करनेसे पीठका दर्द और मेदका आधिक्य दूर होता है। शिर के पिछले भाग को सुदृढ़ और सशक्त बनाने के लिये यह आसन अत्युत्तम है। इससे गहरी और शान्त निद्रा आती है। शारीरिक स्फूर्ति बढ़ जाती है। मलावरोध (कब्ज) से पीड़ित लोग इस आसन का अभ्यास अवश्य करें; इससे उन्हें अत्यधिक लाभ होगा। कमर, उरु और जानु-सधिकी पीड़ा मिटती है। इनके अतिरिक्त और भी अनेकशः लाभ इस आसन से प्राप्त होते हैं।
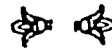
कुक्कुटासन

(चित्र-संख्या ३० पूर्ण-संख्या ९९)

(पृष्ठसंख्या १०७ देखिये)

पद्मासनं समासाद्य जानूर्वोरंतरे करौ।
कूर्पराभ्यां समासीनो मंचस्थः कुक्कुटासनम् ॥ १ ॥

—यो. प्र.

प्रथम जमीनपर पद्मासन लगाकर बैठ जायें। फिर दाहिने हाथको दाहिने पैरकी जानु और पिण्डलीके बीचमें कुहनीतक ले जायें। इसी प्रकार बायें हाथको बाईं जानु और पिण्डलीके बीचमें कुहनीतक ले जायें। श्वासको फेफड़ोंमें भर लें। दोनों

हाथोंके पंजोंको जमीनपर रखें और फिर हाथोंके आधारपर समग्र शरीरको भूमिसे ऊपर उठायें। शरीरको जमीनसे ऊपर उठा लेनेके बाद श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आंखें खुली रखें। शरीरको भलीभांति स्थिर रखें; वह हिलने-डोलने न पाये। छाती और शिरोभागको ऊपर ले जायें। दोनों पैरोंको हाथोंकी कुहनीतक ले जानेका प्रयास करें। शरीरको यथाशक्ति भूमिसे उठाकर ऊपर स्थिर रखनेके पश्चात् दोनों नासापुटोंसे श्वासको फेफड़ोंमें भरकर शनैः-शनैः शरीरको जमीनपर रख दें।

समय

१० दिनतक १० सेकण्ड। ११ से २० दिनतक २० सेकण्ड। २१ से ३० दिनतक ३० सेकण्ड। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार १ मिनटतक अभ्यास बढायें।

लाभ

सभी स्त्री-पुरुषोंके लिये यह आसन अनुकूल है। जिन लोगों के पेट में कृमियों का संग्रह हो गया हो; उनके लिये इस आसनका अभ्यास बहुत लाभकर है। इसके अतिरिक्त स्त्रियों के मासिक रजोदर्शनमें गड़बड़ी, जानुओंमें कठोरता और भारीपन आदि इस आसनका अभ्यास करते रहनेसे दूर होते हैं। पैरोंकी कुरूपता और कमजोरी मिटती है; हाथोंकी शक्ति बढती है। पेटके छोटे-बड़े सभी अवयवोंपर बहुत ही शुभ प्रभाव पड़ता है और वे निर्विकार एव सशक्त होते है। शरीर गठीला स्नायुबद्ध, सुन्दर सुडौल और आकर्षक बन जाता है। इस आसनका निरन्तर अभ्यास करते रहनेसे युवावस्थाके सभी लक्षण यथावत् स्थिर रहते हैं। शरीरकी नस-नाड़ियोंकी निर्बलताके कारण जिन लोगोंमें क्रोध और मोहका विकार विशेष रूपमें रहता है, उनके लिये इस आसनका अभ्यास अत्यावश्यक और लाभदायक है; क्योंकि इससे शरीर की नस-नाड़ियां मजबूत होती है और मन शक्तिशाली, शान्त एव आत्मवशी होता है। महिलाओंके स्तन-रोग को दूर करने में यह आसन सहायभूत होता है। दोनों बाहुओं और गले में नवीन शक्तिका संचार होता है। स्नायु-शूलकी व्याधि का प्रशमन होता है।
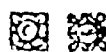
गर्भासन

(चित्र-संख्या ३१; पूर्ण-संख्या १००)
(पृष्ठसंख्या १०८ देखिये)

चित्र-संख्या ३० (पूर्णसंख्या ९९) में बताये अनुसार दोनों पैरोंकी पिण्डलियों और जानुओं के बीचमें से दोनों हाथों को ले आनेके पश्चात् हाथोंको कुहनियोंसे मोड़कर दाहिने हाथ की उँगलियोंसे दाहिने कान को और बायें हाथ की उँगलियोंसे बायें कानको पकड़ रखें। आंखें खुली रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। शरीरको तना हुआ और स्थिर रखें। शरीर हिलने-डुलने न पाये। शिरको ऊपर की ओर रखनेका प्रयास करें। शरीरका समग्र भार कूल्होंपर रहे। इस आसनके आरम्भिक अभ्यासियोंके शरीरके जमीनपर लुढ़क पड़नेकी सम्भावना है। परन्तु कुछ दिनतक जमीनका सहारा लेकर करनेसे यथोचित अभ्यास हो जायेगा और फिर गिर जानेकी आशंका बिलकुल नहीं रहेगी। दीवार का सहारा आरम्भिक साधक लोग ही ले सकते हैं। हमेशा दीवारका सहारा लेते रहना उचित नहीं।

समय

१० दिनतक ८ सेकण्ड। ११ से २० दिनतक १५ सेकण्ड। २१ से ३० दिनतक २० सेकण्ड। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार १ मिनटतक अभ्यास बढ़ायें।

लाभ

जब बालक माता के गर्भाशय में रहता है, उस समय उसकी स्थिति वैसी ही रहती है, जैसी कि इस आसनको करते समय इस आसन के साधककी होती है। इसीलिये इस आसन को गर्भासन के नामसे पुकारा जाता है। अन्तर केवल इतना ही रहता है कि दोनों पैरों के बीच में गर्भस्थ बालक के हाथ नहीं रहते हैं। जैसे बालक का शरीर सुकोमल और लचीला रहता है, उसी तरह का आकर्षक शरीर इस आसन के साधक का हो जाता है। वायु-विकार से बहुतेरी

व्याधियां शरीर में घर बनाकर बैठ जाती है और जीभ के ऊपर कांटे से निकल आते हैं। कभी-कभी जीभ में जलन होने लगती है और जीभ स्थूल हो जाती है। कभी-कभी मांस के अंकुर भी जीभपर उभर आते हैं। इन सब विकारों को पूर्णतया मिटा देने में यह आसन पूरी मदद करेगा। ओठों के रोगोंके लिये भी यह आसन अतीव अनुकूल है। ओष्ठोंके रोगसे पीड़ित स्त्री-पुरुषों को मुंहमें हवा भरकर मुहका सकोचन-प्रसारण करते रहना चाहिये। कफ और वायुप्रधान शरीरवालोंके लिये यह आसन अतीव लाभप्रद है। जिन युवा स्त्री-पुरुषोंके मुंहपर फुसिया निकल आती हैं, वे इस आसन का अभ्यास अवश्य करें; निस्सन्देह लाभ होगा। आन्त्रपुच्छ रोग और कोलाइटीज रोग से ग्रस्त लोगोंके लिये यह आसन रामबाण इलाज है। इससे पाचनशक्ति बहुत बढ़ जाती है। उदरगत वायुविकार मिट जाता है। स्त्रियोंके मासिक रजोदर्शनके समयमें पेटके निचले भागमें जो पीड़ा होती है, वह मिट जाती है। मूत्रमार्ग स्वच्छ और शुद्ध होता है।

वीर्यस्तम्भनासन

(चित्र-संख्या ३२ पूर्ण-संख्या १०१)

(पृष्ठसंख्या १०९ देखिये)

पहले सीधे जमीनपर खड़े हो जायें। दोनों पैरोंको लगभग ३॥। या ४ फीटके अन्तर पर रखें। तत्पश्चात् दोनों हाथोंको कमरके पिछले भागपर ले जाकर बायें हाथसे दाहिने हाथकी कलाई पकड़ लें। श्वासको फेफड़ोंमें भर लें। तदुपरान्त बायॅं पैरको घुटनेसे मोड़कर रखें और उसके अंगूठेसे नाकका स्पर्श करें। श्वास-प्रश्वास चालू रखें। यथाशक्ति इस स्थितिमें रहनेके पश्चात् श्वासको फेफड़ोंमे भरकर सीधे खड़े हो जायें। पैरके अँगूठेका नाकसे स्पर्श कराते समय दाहिने पैरको बिलकुल सीधा रखें; वह घुटनेसे मुड़ने न पाये। छाती को फुलाकर और समग्र शरीर को तना हुआ रखें। आंखें बन्द रखें। पेटको दबाकर रखें। दोनों पैरोंको भलीभांति स्थिर रखें; वे हिलने-डोलने न पायें। ऊपर आनेके बाद श्वासोच्छ्वास चालू रखें। यह

वीर्य-स्तम्भनासनका बायें अंगका अभ्यास हुआ। इसी विधिसे दाहिने अंगका अभ्यास पूरा होनेपर ही यह आसन सम्पूर्ण होता है।

समय

१० दिनतक ६।६ सेकण्ड। ११ से २० दिनतक १०।१० सेकण्ड। २१ से ३० दिनतक २०।२० सेकण्ड। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभके अनुसार ३०।३० सेकण्ड तक अभ्यास बढ़ायें।

लाभ

यह आसन अतीव महत्त्वपूर्ण है। यह वृद्धावस्थाको भगा देनेवाला और युवावस्थाको प्रेमपूर्वक संरक्षण प्रदान करनेवाला है। इस आसनसे स्थूल और सूक्ष्म इन्द्रियां सतेज होती हैं और ओजस् यथेष्ट रूपमें बढता जाता है। धातुक्षयके कारण कुपित वायुसे और मिठाई आदि शर्कराप्रधान वस्तुओंके अधिक परिमाणमें खानेसे जो मधुमेह उत्पन्न हो जाता है, वह मिट जाता है। निद्रानाश, लघुश्वास, देहमें दुर्गन्धि, अंगोंमें ग्लानि, गलेमें घरघराहट, अकस्मात् श्वास का अवरोध, कभी शरदी और कभी गरमीका अचानक परिवर्तन होते रहना, बिना कारण अतिक्षुधा लगना, शरीर में बेचनी-जैसी मालूम पड़ना, जीर्णज्वर, स्थूल काया, सूखी खांसी, मलबद्धता आदि अनेक विकार इस आसन के अभ्यास से मिट जाते हैं। इसका जैसा नाम है, उसी तरह वीर्य-स्तम्भन के लिये यह आसन अप्रतिम है। इसके अतिरिक्त इस आसन के अभ्यासी की सन्तान नीरोग, वीर्यवान्, ओजस्वी, तेजस्वी, और बुद्धि-प्रतिभासे सम्पन्न होती है। प्लीहोदर, बद्धोदर, जलोदर आदि अनेक रोगोंको मिटाने के लिये यह आसन अतीव उपयोगी है। अतिनिद्रा रोग, उबकाई, अशक्ति, शरीरमें रक्ताल्पता, हाथ-पैरोंके तलवे शीतल रहना, वीर्यका पतलापन, अशुद्ध वीर्य आदि अनेक व्याधियां मिट जाती हैं। कुपित हुआ तथा शूल और शोथ उत्पन्न करनेवाला अधोगामी वायु अण्डकोशोंमें पहुंच कर जानु और शिश्नेन्द्रिय की सन्धि में अण्डकोशवाहिनी धमनी आदि स्थानोंमें जाकर और उन्हें दूषित बनाकर अण्डकोशकी वृद्धि करता है। यह रोग भी इस आसन से पूर्णतया मिट जाता है तथा अन्य अनेक लाभ इस आसन से प्राप्त होते हैं। स्त्रियां भी इस आसन को निरापद कर सकती हैं। उन्हें भी इससे यथोचित लाभ मिलेगा।
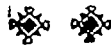
सुप्त धनुरासन

(चित्र-संख्या ३२, पूर्ण-संख्या १०२)

(पृष्ठसंख्या ११० देखिये)

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ करौ च पृष्ठे धृतपादयुग्मम् ।
कृत्वा धनुस्तुल्यपरिवर्तिताङ्गं निधाय योगी धनुरासनं तत् ।

—घे. सं. २·१८

पेटके बल जमीनपर लेट जायें। दोनों पैरोंको घुटनोंसे मोड़ कर बायें हाथसे बायें पैरकी पिण्डली और दाहिने हाथसे दाहिने पैरकी पिण्डलीको पकड़ रखें। श्वासको फेफड़ोंमें भर लें। शिर, छाती और नाभिके नीचेके भाग (कन्धस्थान) तथा पैरोंको जमीनसे ऊपर उठा रखें। केवल पेटका भाग जमीनसे लगा रहे। तत्पश्चात् श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आखें खुली रखें। शरीरको तानकर रखें। इस समय पैरोंके कमरके पास आ जानेकी सम्भावना है; किन्तु उन्हें आने न दें और शरीरको धनुषके आकारके समान बना रखें। पैरों में और हाथोंमें तनाव अच्छी तरह रखें। तत्पश्चात् श्वासको फेफडोंमें भरकर, हाथोंसे पैरोंको छोडकर सारे शरीरको जमीनपर लिटा दें। आसनका अभ्यास परिपक्व हो जाने के पश्चात् आसन की स्थितिमें शरीरके अगले और पिछले भागको झूलेकी तरह नीचे और ऊपर ले जा सकते हैं और अगल-बगल घुमा भी सकते हैं।

समय

१० दिनतक २ बार : ११ से १५ दिनतक ३ बार। १६ से २२ दिनतक ४ बार। तत्पश्चात् शक्ति, आयु और लाभके अनुसार ६ बारतक बढ़ा सकते हैं।

लाभ

इस आसनसे समग्र शरीरको यथेच्छ रूपमें व्यायाम मिल जाता है। विशेषकर गला, मेरुदण्ड और कमरकी कमजोरी मिटानेके लिये यह आसन अत्युत्तम है। इससे छातीका भाग विकसित और विशाल होता है। यकृतविकार, मूत्रपिण्ड, मूत्राशय और अण्डकोशका विकार, शिश्नेन्द्रियकी निर्बलता आदि अनेक व्याधियां दूर हो जाती हैं। पथरी रोगसे मुक्ति दिलानेमें यह आसन बड़ी मदद करता है। पेशाबका रुक-रुक कर आना, पेशाबमें जलन तथा पेशाबके वेगको रोक रखनेमें असमर्थता आदि व्याधियां

दूर हो जाती हैं। अधिकांश लोगोंका शरीर वृद्धावस्थामें झुक जाता है, किन्तु इस आसनके अभ्याससे वृद्धावस्थामें भी शरीर कसीला और तना हुआ रहता है। युवावस्थाके प्रायः सभी लक्षण वृद्धावस्थामें भी विद्यमान रहते हैं। बवासीरके रोगियोंको भी यह आसन अतीव लाभ पहुंचाता है और वायुप्रकृतिप्रधान स्त्री-पुरुषोंके लिये तो यह आसन आशीर्वाद के समान है। पसीने और मुंहकी दुर्गन्ध, गलेका दर्द, भोजनमें अरुचि आदि विकार सदाके लिये समाप्त हो जाते है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक लाभ इस आसनका अभ्यास करते रहनेसे प्राप्त होते हैं।
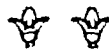
वृक्षासन

(चित्र-संख्या ३४; पूर्ण-संख्या १०३)

(पृष्ठसंख्या १११ देखिये)

जमीन पर सीधे खड़े हो जायें। दोनों हाथोंको शिरके अगल-बगल ऊपर उठायें। पैरकी उँगलियों के आधारपर ही खड़े होना चाहिये। पैरोंके तलुवे जमीनको छूने न पायें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आखें खुली रखें। समग्र शरीरको तानकर ऊपरकी ओर खींचकर रखें। यथाशक्ति अभ्यास करनेके पश्चात् हाथों को नीचे लाकर कमरके अगल-बगल रख दें और तलुवोंके आधारपर स्थिर खड़े रहें।

समय

८ दिनतक २० सेकण्ड। ९ से १४ दिनतक ४० सेकण्ड। १५ से २२ दिनतक ६० सेकण्ड (१ मिनट)। तत्पश्चात् आयु, शक्ति और लाभके अनुसार १॥ मिनट-तक अभ्यास बढ़ायें।

लाभ

हाथ-पैरोंका कम्प, नाड़ियोंकी कमजोरी, छातीका दर्द, पसलियोंकी दुर्बलता, गले की कमजोरी, पैरोंके तलुवोंका दर्द, पैरोंकी उँगलियों की अशक्ति आदि अनेक विकारोंके निवारण के लिये यह आसन अत्यन्त अनुकूल है। यदि शरीरकी ऊँचाई बढानेकी इच्छा हो तो २५ वर्ष की आयुतक इस आसन का अभ्यास करते रहें, निस्सन्देह इच्छापूर्ति होगी। ऊँचाई बढानेवाले और भी अनेक आसन हैं। जैसे पश्चिमोत्तानासन, हलासन, भुजंगासन, उर्ध्व सर्वांगासन आदि। वृक्षासनका साधन महिलाओंके लिये भी अनुकूल है।

★ ★

रोग निवारणार्थ
यौगिक, मनोवैज्ञानिक
एवं प्राकृतिक चिकित्सा

जीवो जीवस्य जीवनम्

☆ जीव ही जीवका जीवन है अर्थात् अन्य जीव के आधारपर ही जीव का जीवन चलता है। बलवान् जीवों को निर्बल जीवो की रक्षा करनी चाहिये, किन्तु सर्वसामान्य जीवों के नियमों से पता चलता है कि जीव जीव का रक्षक नहीं, भक्षक है। बडी मछलिया छोटी मछलियों को खा जाती है। सर्पिणी अपने अण्डो को और सिंहिनी अपने बच्चों को खा जाती है। यह हिंसक पशुओं और जीवों का स्वभाव है और इस दृष्टिसे '**जीवो जीवस्य भक्षणम्**' की उक्ति को अतिशयोक्ति नहीं कहा जा सकता। किन्तु मानव-स्वभाव इससे भिन्न है। मानवमे कोई हिंसावादी हैं; कोई अहिंसावादी। पशुओंमें भी हिंसा और अहिंसा के पालक हैं। किन्तु मानव-प्राणी की विचित्रता यह है कि सरक्षक की भावना और कर्म में अत्यन्त न्यूनता आ गई है। सहारक भावना और कर्म ही आज प्रायः दिखाई दे रहे हैं। फलतः दुःख का कोई पार नहीं रहा। सुखका आभासमात्र दिखता है। आज के सुख की व्याख्या मृगतृष्णा से अधिक और कुछ नहीं। मध्यान्ह काल में मरुभूमि (रेत) में सूर्य-किरणो की चमक जलाशय का जो काल्पनिक दृश्य उपस्थित करती है; आज का सुख उसी तरह का है। निष्काम कर्म, उपासना, योगाभ्यास और ज्ञान से ही सच्चा सुख प्राप्त होता है।

—योगिराज उमेशचन्द्रजी

नीरोग होनेपर भी
शरीर और मनको
यथावत् बनाये रखनेके लिये
मलशोधन-कर्म, आसन और प्राणायाम

प्रतिदिन सायंकाल अथवा प्रातःकाल निम्नलिखित योगाभ्यास करते रहनेसे भविष्यमें आप सभी रोगों से सुरक्षित रहेंगे। कोई भी रोग कभी पास आ न सकेगा। शक्ति, आयु, ऋतु और लाभके अनुसार निरन्तर अभ्यास करते रहें। रोगियोंके लिये इसी ग्रन्थमें अन्यत्र नियम-संयम समझाये गये हैं।

आसन	मिनटसे	मिनटतक
(१) शीर्षासन	१०	६०
(२) शवासन	५	०
(३) एकपाद उत्थानपादासन	२	४
(४) उत्थानपादासन (द्विपाद)	१	२
(५) भुजंगासन	१	२
(६) एकपाद शलभासन	१	२
(७) शलभासन	१	२
(८) जानु-शिरासन	१	०
	१	३

आसन	मिनटसे	मिनटतक
(९) पश्चिमोत्तानासन	१	१॥
(१०) पूर्ण पद्मासन	१	१॥
(११) मत्स्यासन	१	२
(१२) लोलासन	आध	१
(१३) सुप्त वज्रासन	१	५
(१४) विपरीतकरणी	२	५
(१५) सुप्त धनुरासन	१	२
(१६) हलासन	१	३
(१७) पूर्णमत्स्येन्द्रासन	१	३
(१८) अथवा अर्धमत्स्येन्द्रासन	१	३
(१९) चक्रासन	१	२
(२०) द्विपाद-शिरासन	१	२

अन्य आनुषंगिक अभ्यास

अभ्यास-क्रम	मिनटसे	मिनटतक
नवलि-कर्म	१	२
अनुलोम-विलोम प्राणायाम	३ से	६ बार
कभी-कभी नेति और धौति कर्म भी करें।		
नवलि-कर्म		३ बार

नेति-धौतिका समय निश्चित नहीं।

उपर्युक्त सभी आसनों और आनुषगिक कर्मोंका अभ्यास सर्वसाधारण स्त्री-पुरुषों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यके लिये बताया गया है। यदि समयाभावसे उक्त

सभी आसनों और कर्मोंका अभ्यास सम्भव न हो तो जितना भी साधन हो सके, लाभदायक होगा।

रोग-निवारण के लिये प्रकृति, आयु और शक्तिके अनुसार निम्नलिखित योगाभ्यास और प्राकृतिक चिकित्सा निस्सन्देह लाभप्रद हैं:—

(१) शिरोवेदना

(पित्तविकार, अनिद्रा, अनुचित आहार, वीर्यदोष, रजस्दोष, क्रोध और मानसिक चिन्ताके कारण हो तो) शीतल जलसे स्नान, जलनेति और चन्द्रभेदन प्राणायाम।

आहार-व्यवस्था

गरम मसाला वर्ज्य। नीबू, शर्बत आदि लेने चाहिये। टमाटर, खट्टी छाछ, दही, तेल आदि अग्राह्य।

आसन-व्यवस्था

उत्थानपादासन ३ मिनट। अर्धमत्स्येन्द्रासन २ मिनट। मत्स्यासन २ मिनट। ऊर्ध्व सर्वांगासन ५ मिनट।

तैलाभ्यंग

कमसे कम सप्ताहमें एकबार रामतीर्थ ब्राह्मी तेलसे समग्र शरीरकी मालिश करें अथवा करायें और १५ मिनटके बाद स्नान करें।

शिरोवेदना—(चिन्ता, शरदी, मलबद्धता, नासापुटोंका संकोचन अथवा अन्य कारणोंसे उत्पन्न हो तो) सूत्रनेति, कपालभाति, सूर्यभेदन प्राणायाम [उमेश-योगदर्शनके द्वितीय खण्डमें प्राणायामकी विधि विस्तारपूर्वक बताई गई है] और कूर्मासन भी इस रोगमें लाभप्रद है।

आहार-व्यवस्था

प्रातःकाल दन्तधावनके पश्चात् १४ औंस जलमें एक छोटे चम्मच भर शहद मिलाकर पी लें। शरदीके दिन हों तो जलको साधारण गरम कर लें और गरमीके दिनोंमें शीतल जलका उपयोग करें। भोजनमें हाथसे कूटे हुए चावलोंका भात, चोकरयुक्त आटेकी रोटी और हरी शाक-भाजी उपादेय हैं। भोजनके बाद पपीता ग्रहण करें। ७ दिनोंतक रातमें केवल भुने हुए चनों और काली द्राक्षका उपयोग आवश्यक है। सायंकाल दूधको पानी मिलाकर पतला बना लें और ६ बजेतक पी लें।

(२) मलबद्धता (कब्ज)

साधारण मलबद्धता हो तो प्रातःकाल दन्तधावनादिसे निवृत्त होकर १२ औंस जल (अधिक शरदी हो तो साधारण गरम जल और गरमीके दिनोंमें शीतल जल)का सेवन करें। जल मिट्टी के बर्तनका ही होना चाहिये। तांबेके बर्तन के जल से पित्तप्रकृति-प्रधान मानव-शरीर में तापमान बढ जाने की आशंका है। अपनी वात-पित्त-कफप्रधान प्रकृति का ज्ञान और अनुभव सर्वसाधारण को न होने से तांबेके बर्तन का पानी व्यक्तिगत रूपमें भले ही किसी को अनुकूल हो, परन्तु सर्वसाधारण के अनुकूल नहीं होता। मृत्तिकापात्र (मिट्टी के घड़े) का जल सर्वसाधारण के लिये अतीव हितावह है। उत्तम गुणप्रदायक जल—जैसे कि सूर्य की किरणों में तापायमान एवं प्रवहमान नदी का जल, अथवा जहां की मिट्टी शुद्ध हो; ऐसे स्थानपर निर्मित कुएँका जल, अथवा पर्वतों से निर्झरित झरनोंका का स्वच्छ पवित्र जल अत्यन्त उपादेय होगा। यदि उपर्युक्त किसी भी प्रकारके जलको प्राप्त करने की सुविधा न हो तो एतदर्थ अन्य उपाय भी बताये गये हैं। बड़े-बड़े नगरोंके निवासियोंके भाग्य में तो नलका जल ही अनिवार्य कर दिया गया है। स्वास्थ्य-रक्षाके लिये यह जल अनुकूल नहीं। कारण यह है कि लोहे के पाइपोंमें होकर यह जल कई मीलोंके अन्तरसे नगरोंमें पहुंचता है। लोहेके यह विशाल पाइप प्रचण्ड सूर्य-किरणों से उत्तप्त होकर जलके जीवनतत्त्वों को परिवर्तित कर देते हैं। जल में संनिहित जीवनतत्त्वोंको यथावत् सुरक्षित रखने और जल को विशुद्ध बनाने के लिये उसमें क्लोराइन नामक औषधि डाली जाती है। एक दृष्टिसे देखा जाये, तो सर्वसाधारण जनताकी स्वास्थ्य-रक्षाके लिये नगरपालिका (म्युनिसिपैलिटी)

अथवा पचायत-राज्यकी ओरसे उत्तम प्रबन्ध किया जाता है। परन्तु इस जल के उपयोग से रक्तविकार, मलबद्धता, खुजली आदि विकारोंके उत्पन्न होनेकी सम्भावना रहती है। अतः उक्त सभी खतरोंसे मुक्त रहनेके लिये हमें प्रयत्नशील रहना ही पड़ेगा। वह प्रयत्न यह है कि जल के द्वारा हमें विशेष लाभ भले ही उपलब्ध न हो, किन्तु उससे हानि भी होनी न चाहिये। अतएव नीचे लिखे तरीकेसे जलको शुद्ध बना लेना चाहिये। जैसे कि अग्नि में भलीभांति उबल जानेके पश्चात् जल को छानकर मिट्टीके बर्तनमें भर रखें और ठण्डा हो जानेके पश्चात् उसे पीनेमें उपयोग करें।

卐 卐

जलको उपादेय बनानेकी पद्धति

शहरोंमें पाइप द्वारा उपलब्ध जलको भी जीवनतत्त्वयुक्त बनाकर उसका सेवन कर सकते हैं। जलको गरम करनेकी विधिको सम्पन्न करनेके बाद रेत और लकड़ीके कोयलेसे उसे शुद्ध करना पड़ेगा। मिट्टीके तीन बर्तन लेकर एकके ऊपर एक–इस प्रकार तीनों बर्तन रखें। सबसे ऊपरके घड़ेमें छिद्र करें और घड़ेका आधा भाग रेतीसे भर दें। बीचके घड़े में भी वैसा ही छोटा-सा छिद्र करें और आधे घड़ेमें लकड़ीका कोयला भर दें। सबसे नीचेके घड़ेका मुंह श्वेत स्वच्छ वस्त्रसे बाध दें। जिस घड़ेके अर्धभागमें रेत भरी गई है और जो सबसे ऊपर है; उसमें गरम किये हुए जलको भर दें। वही जल छिद्रों द्वारा कोयलेवाले घड़ेमें बूंद-बूंद टपकेगा और वही जल कोयले में शुद्ध होता हुआ घड़ेके छेदसे सबसे नीचेके घड़ेमें टपकेगा, जिसका मुंह कपड़ेसे बँधा हुआ है। कमसे कम १० से १५ दिन और अधिक से अधिक ३० दिनके बाद रेत और कोयले को बदलना पड़ेगा। यह जल अत्यन्त पवित्र गंगाजलके समान गुणकारी और लाभदायक बन जायेगा।

अनेक अल्पकष्टदायक और अतिकष्टदायक रोगोंका मूल कारण मलबद्धता है

मलावरोध की दुष्ट व्याधिसे मुक्त होनेके लिये ऊपर जो प्रयोग बताया गया है, वह अनुभवसिद्ध है। श्रीरामतीर्थ योगाश्रममें आनेवाले अनेकशः रोगी

और नीरोगी स्त्री-पुरुष इस प्रयोगसे लाभान्वित हुए हैं। इसके अतिरिक्त उक्त योगाश्रम में शनिवारको सायंकाल और रविवारको प्रातःकाल आयोजित प्राकृतिक चिकित्सा-सम्बन्धी भाषणोंको सुनकर बहुतेरे लोगोंने इन प्राकृतिक उपायोंका अपने घरमें अभ्यास किया और उन्हें इससे समुचित लाभ पहुंचा है। इसका पहला प्रयोग जल बताया गया है और यथोचित रूपसे समझाया गया है कि नगरोंके अप्राकृतिक उपकरणोंको किस प्रकार प्राकृतिक रूप देकर उनसे समुचित लाभ उठाया जाये।

दूसरा प्रयोग

रातमें एक मुट्ठीभर चनोंको (चने किसी भी जातिके हों) धोकर साफ कर लेनेके बाद किसी बर्तनमें पानीमें भिगो दें। प्रातःकाल उन्हीं चनोंको अच्छी तरह चाब-चाबकर—यहांतक कि वे रस रूपमें परिणत हो जायें—पेटके अन्दर ले जायें। सम्भव है कि वायुप्रधान प्रकृतिके व्यक्तिको वायुके लक्षण मालूम हों; अतः ऐसे लोग—केवल वायु-प्रकृतिके लोग—चनेके साथ पिसे हुए जीरेका उपयोग करें। कफ-प्रधान प्रकृतिके लोगोंको इन चनोंके साथ जीरेकी जगह सोंठ के चूर्णका उपयोग करना चाहिये। यदि पित्तप्रधान प्रकृति हो तो जीरा, सोंठ आदि कुछ भी न लेकर केवल चने खा लें। क्योंकि चना पित्तशामक होता है। जिस पानीमें चने भिगोये गये हों; उस पानीको फेंकना नहीं चाहिये; बल्कि पी लेना चाहिये। एक मुट्ठी चनोंका प्रयोग यदि मलबद्धतापर लाभकर न हो तो थोड़ी-थोड़ी मात्रामें बढ़ाकर चनोंको दो मुट्ठी कर देना चाहिये। यह भी सम्भव है कि एक मुट्ठीमें ही कुछ स्त्री-पुरुषों या बालकोंको अधिक पतले दस्त होने लगें। ऐसे लोग आधी मुट्ठी चनोंसे ही प्रारम्भ करें और लाभके अनुसार धीरे-धीरे बढ़ाते जायें। ऊपर बताये गये जल-प्रयोगके साथ-साथ चनेका प्रयोग भी किया जा सकता है। लेकिन दोनों प्रयोगोंके बीच एक या डेढ़ घण्टेका अन्तर अवश्य रहना चाहिये। यदि जल-प्रयोगसे यथोचित लाभ मिल रहा हो तो चने के प्रयोग की आवश्यकता नहीं। ये दोनों ही प्रयोग लाभदायक हैं। प्रयोगमें हरे चनोंका उपयोग भी लाभदायक होगा। आयु, प्रकृति और लाभके अनुसार इन चनोंको उचित मात्रामें ग्रहण करना चाहिये।

* *

उपाय तीसरा (कटिस्नान)

टीन के एक टबमें आधा पानी भर कर उस टबमें आरामकुरसीकी तरह बैठ जायें। पैर टब से बाहर रहें। जल का स्पर्श नाभि और जानुतक होता रहे। दाहिने हाथ को नाभि के चतुर्दिक् गोलाकार घुमाते रहें। पहले दिन ५ मिनट। दूसरे दिन ६ मिनट–इस प्रकार प्रतिदिन १। १ मिनट बढ़ाते हुए २० मिनटतक बढ़ायें। तदुपरान्त गरमीके दिनोंमें शीतल जल से और शरदी के दिनोंमें गरम जल से स्नान करें। यदि प्रकृति के अनुकूल हो तो शीतल जल अधिक लाभ पहुंचाता है।

● ●

चौथा प्रयोग (मालिश)

जमीनपर चित लेटकर और पैरोंको मुड़ा रखकर पेट में तेल की मालिश करें। अपनी प्रकृति, देश तथा ऋतुके अनुसार खोपडा तिल, एरण्डा, सरसों आदि के तेलों में से किसी भी तेल को मालिश करने के उपयोग में लाया जा सकता है। पहले दिन १ मिनट। दूसरे दिन २ मिनट–इस प्रकार ३ मिनट तक बढायें। पेट में तनाव या वेदना होने न पाये। दाहिनी ओरसे ऊपर की ओर ले जाते हुए हाथ को चारों ओर घुमाते रहें।

卐 卐
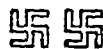
पांचवां उपाय [आहार]

भोजनके समयमें प्रतिदिन कच्चे आहार का उपयोग विशेष रूपसे करें। जैसे पत्ता-गोभी, टमाटर, प्याज (कांदा), गाजर, मूली, मूलीके पत्ते, भिण्डी, नारियल आदि वस्तुओंको कच्चे रूपमें ही और उनमें हरी धनिया की पत्तियां (कोथमीर) मिलाकर उन्हें भोजनके साथ लेना चाहिये। भोजनके समय में प्रत्येक ग्रासको २०।२५ बार अच्छी तरह चाबकर गलेके नीचे उतारना चाहिये अर्थात् चाबनेके समय नैसर्गिक औषधिरूप अमीरस (लार) ग्रासके साथ मिलकर पेटमें पहुंचता है और उदरगत अन्नादि वस्तुओं को भलीभांति पचाकर मलबद्धताके निवारणमें सहायता पहुंचाता है। भोजनके समयमें अन्नाशय कोशको ठूंस-ठूंसकर भर न देना चाहिये। नैसर्गिक नियमानुसार भोजनके समय डकारके आते ही समझ लेना चाहिये कि अन्नाशय-कोश को जितना आहार आवश्यक है, उतना पहुँच गया है। शेष स्थान को जल तथा वायु-सचार की सुविधाके लिये खाली रखना चाहिये। भोजनके साथ जल पीना लाभकर नहीं। जल पीनेकी विशेष इच्छा होनेपर ही २।४ घूंट पी सकते हैं। भोजन के एक घण्टे के पश्चात् पानी पीना चाहिये। दिनभरमें ६ गिलास पानी पीना आवश्यक है। भोजनके पश्चात् कुछ फल भी लेने चाहिये। यदि पपीता पेडपर पका न हो तो उसकी छालको ग्रहण न करें। सन्तरा (नारंगी) मीठा हो, खट्टा न हो। कफप्रधान प्रकृति के व्यक्ति खट्टा सन्तरा भी ले सकते हैं। किन्तु वायु और पित्तप्रकृतिवालोंके लिये खट्टी नारंगी वर्ज्य है। नारंगी और उसकी छाल पाचनशक्ति बढ़ाने, षट्रसोंको शुद्ध करने और उन्हें प्रभावपूर्ण बनाये रखने, मलावरोध मिटाने और विकारयुक्त वायुको पेटसे निकालने के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। नारंगी न मिलनेपर मोसम्बीका उपयोग करें। मोसम्बीको रेशेसहित ही ग्रहण करना चाहिये, अन्यथा उसके उचित लाभ से वंचित रहना पड़ेगा। केवल जीभ के स्वाद के लिये इन वस्तुओंका उपयोग अनुचित है। चीकू भी छिलकेसहित खाना चाहिये। जिस ऋतुमें जो फल उपलब्ध हों, उस ऋतुमें वे फल प्रकृति के अनुसार पर्याप्त मात्रामें लेने चाहिये। वास्तविक जीवनतत्त्व फलोंमें, पानी में, मिट्टीमें, वायुमें और कच्चे अन्नादि पदार्थों में भरपूर रहता है। हम लोग कितने अज्ञानान्धकार में पड़े हुए हैं, इसके दृष्टान्त रूपमें हम किसी अच्छे से अच्छे बीज को भून करके उत्तम से उत्तम उर्वरा उपजाऊ मिट्टी में डाल दें और उसमें अच्छी से अच्छी खाद डालें तथा उसपर शुद्ध वायु एवं मुक्त सूर्यप्रकाश भी पड़ने दें।

फिर भी, वे बीज क्या कभी अंकुरित हो सकते हैं ? यह तो सर्वसामान्य बात है और शिक्षित-अशिक्षित सबकी समझ में भी आ सकती है फिर भी, आश्चर्य की बात तो यह है कि महान् विद्वान् और डिग्रीधारी महानुभाव भी स्वाद का रस लेने के लिये इन्द्रियों के वशीभूत होकर शरीर और मन को विकृत कर रहे हैं।

अस्तु, जिस प्रकार यह भुना हुआ बीज उपजाऊ जमीनमें भी उग नहीं सकता, उसी तरह संस्कार किया हुआ या पकाया हुआ अन्न भी शरीरको समुचित जीवनतत्त्व प्रदान करनेमें असमर्थ होता है। क्योंकि भूनने, तलने या अधिक समयतक उबालते रहनेसे आहारके अधिकांश प्राकृतिक जीवनदायक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। इन्द्रियोंकी तृप्ति अथवा रूढ़िके वश होकर ही प्रायः लोग ऐसा करते हैं; परन्तु यह अनुचित है और ऐसा करने से शरीरको समुचित जीवनतत्त्वोंसे वंचित रह जाना पड़ता है। इतना ही नहीं, यह अन्य रूपमें भी हानिप्रद है। जैसे कोई निर्जीव पदार्थ किसी स्थानपर पड़ा हो तो उसमें यह शक्ति नहीं रहती कि वह स्वयं प्रवृत्तिशील रहे और दूसरेको भी प्रवृत्तिशील बना सके। यही हालत भुने, तले और पकाये हुए पदार्थोंकी भी है। वे जहां कहीं भी होंगे, मृतवत् पड़े रहेंगे। इन पदार्थोंमें जीवनी शक्ति बहुत कम होती है, अतः शरीर में किसी-न-किसी रूप में विकार उत्पन्न होते रहते हैं। उदाहरणस्वरूप गावों में रहनेवाले लोग खेतों, बागों और अन्य मुक्त वायुमण्डल में घूमते-फिरते और प्रसन्नतापूर्वक काम करते हैं। वे उत्तम स्वादिष्ट हरे ऋतुफल, गन्ने, मूगफली, हरे शाक एवं तरकारिया, आम, तरबूज, जामुन आदि स्वादिष्ट एवं प्राकृतिक आहार का सेवन करते हैं; फलतः वे दीर्घायु होते हैं। उनका मुखमण्डल तेजस्वी होता है। उनके अंग-प्रत्यंग हृष्ट-पुष्ट और सुदृढ होते हैं। शारीरिक वजन भी सम-प्रमाणमें रहता है, अर्थात् वे सर्वांग रूपमें सुडौल, सुगठित और सौन्दर्य से भरपूर रहते हैं। गावोंमें रहनेवाले मानवमात्र ही नहीं, अपितु पशु-पक्षी भी प्राकृतिक 'जीवन-व्यवहार करते हैं। इसके विपरीत नागरिक जीवन नाना प्रकारकी व्याधियोंसे पीड़ित देखा जाता है। सच्चा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेवाले स्वस्थ व्यक्ति इन लोगोंको देखकर आश्चर्य-चकित हो उठते हैं। भारत के नागरिकों को अपनी इस दयनीय दशापर विचार करना चाहिये।

शरीर और मनका विकार ही वस्तुतः रोग है और जैसा कि मैं पहले बता चुका हूं, सभी रोगोंका मूल कारण इसी विकार से प्रारम्भ होता है। भोजनके

लिये जीना व्यर्थ है। जीवन के लिये उचित भोजनका उपयोग करना मानवमात्रका आवश्यक कर्तव्य है। रातका भोजन अल्प मात्रामें हो। भोजनके दो घण्टेके बाद ही सोना उचित होगा। आहारमें गाय अथवा बकरीका दूध उपादेय होगा।

६ ठां उपाय (गणेश-क्रिया)

मल-विसर्जनके समय अधिकांश स्त्री-पुरुषोंके मलका अग्रभाग कठिन होकर मलद्वार में उसी तरह रुक जाता है, जैसे शीशीके मुंहपर बुच डटा रहता है। यह मल कठोर होनेके कारण बाहर निकल नहीं पाता। अपान वायुके साथ मल को बाहर निकलना चाहिये; वह वायु भी अन्दर ही रुका रहता है। वायुप्रकृति, कडी शरदीकी ऋतु, पित्तप्रधान प्रकृतिवाले व्यक्तिको भी यह लक्षण प्रतीत होते हैं, जिससे वह मूलव्याधि (बवासीर) में रूपान्तरित हो जाता है। अपवादरूपमें कफप्रधान प्रकृति के व्यक्तिको भी यह व्याधि उत्पन्न हो जाती है। किन्तु गणेशक्रियाके प्रयोगसे मलावरोधका निवारण निस्सन्देह हो जायेगा।

गणेश-क्रियाकी विधि

मल-विसर्जनके लिये बैठनेके बाद बायें हाथकी तर्जनी अथवा मध्यमा उँगलीमें कोई तेल अथवा पानी लगाकर उँगली को मलद्वारमें प्रवेश, करायें और जो मल कठोर है, उसे उँगलीसे बाहर निकाल दें। तुरन्त ही शेष मल अपान वायुके साथ बाहर निकल आयेगा और पेट हल्का मालूम पड़ेगा। ऐसा कोई अनिवार्य नियम नहीं है कि यह प्रयोग प्रतिदिन करना ही चाहिये। जब कभी शंका हो कि मल अनायास नहीं निकलेगा, तभी यह क्रिया करनी चहिये। सम्भव है कि मलविसर्जनके पश्चात् भी कुछ मल मलद्वारके पास रह जाये ऐसे मलको भी इसी प्रकार निकाल देना चाहिये। यह प्रयोग कुछ स्त्री-पुरुषोंको लज्जास्पद और प्रतिकूल मालूम हो सकता है। उन्हें इस क्रियाका महत्त्व समझाना मेरा कर्तव्य है। हमारे श्रीरामतीर्थ योगाश्रममें रोगनिवारण के लिये आनेवाले कुछ स्त्री-पुरुषोंको कई वर्षोंतक २।३ दिनके पश्चात् मल-विसर्जन

होता था। वे सदैव उग्रतम जुलाब लेते रहते थे। फिर भी, दस्त साफ नहीं होता था। इन लोगोंको यह प्रयोग बतानेके पश्चात् पर्याप्त लाभ पहुँचा। मलको मलाशय-कोशमें रखकर सड़ाने और दुर्गन्धयुक्त बनानेकी अपेक्षा यदि हम अपने मलको अपनी उँगली से निकाल लेते हैं तो इसमें किसी प्रकारकी लज्जा और ग्लानि की बात कहां रही? योगविद्या के मतानुसार मलद्वारमें गणेशजी विराजमान हैं अर्थात् गण (समग्र इन्द्रियों) के ईश अर्थात् स्वामी गणेशजीका निवास मलद्वारमें रहता है। अतः इस स्थानको सदैव स्वच्छ और शुद्ध रखनेका प्रयास यदि हम नहीं करते तो यह मानव-बुद्धिकी विडम्बना करते है। भोजनके ८ घण्टेक पश्चात् भोजनका कुछ अंश जो मलरूपमें परिवर्तित हो जाता है, उसे दस्तके रास्ते बाहर निकाल देना चाहिये; अर्थात् दो बार भोजन करनेवालोंको दो बार मलविसर्जन भी करना चाहिये। आरोग्यके नियमोंमें मलका यथा-समय और यथाविधि विसर्जन भी एक अनिवार्य नियम है।

शहरोंमें प्राकृतिक जीवन बितानेकी कला

आरोग्यकी सम्पूर्ण सुरक्षाकी दृष्टिसे नागरिकोंका कर्तव्य है कि वे पका हुआ अन्न कमसे कम सेवन करें और मिर्च, मसाला, इमली आदिका उपयोग भी बहुत कम मात्रामें करना उचित होगा। वनस्पति तेल (कथित घी) सम्पूर्ण वर्ज्य है। शाक-भाजी आदि में. तिल और नारियल का तेल अधिक लाभदायक होगा। गाय और बकरी का दूध अच्छा लाभ पहुँचाता है। भैंस का दूध चरबी बढाता है और बुद्धि को मन्द कर देता है। रंग-बिरंगे आकर्षक वस्त्र-परिधान से सदैव बचते रहें। शुद्ध खादी का वस्त्र ही आबाल-वृद्ध स्त्री-पुरुषों के लिये अनुकूल है। नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, शरीर-स्वास्थ्य-शास्त्र, मानसशास्त्र, वेदान्त, महात्माओंके जीवनचरित्र और नैतिक उर्ध्वगमन की स्थितिपर पहुचानेवाले ग्रन्थों के पठन का अनिवार्य नियम बना लें। रातमें जल्दी सो जाना चाहिये और प्रातःकाल जल्दी शय्या-त्याग कर देना चाहिये। कमसे कम ८ घण्टे की निद्रा लेना चाहिये। नित्य प्रातःकाल तैलाभ्यंग अवश्य करें। यदि नित्य सम्भव न हो तो सप्ताह में एकबार तैलाभ्यंग अवश्य ही करें।

प्रतिदिन कमसे कम आध घण्टे और सम्भव हो, तो २ से ३ घण्टेतक योगाभ्यास करें। पेशाब करना, मल-विसर्जन आदि जैसे दैनिक अनिवार्य कर्म हैं, उसी तरह योगाभ्यास भी अनिवार्य कर्तव्य है। घर को देव-मन्दिरके समान स्वच्छ रखें। दीवारोंपर देवताओं और महात्माओंके चित्र लगा रखें, जिससे जीवन को उन्नत सतहपर पहुँचानेकी प्रेरणा प्राप्त हो। धूपबत्ती, चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थोंका उपयोग प्रसन्न वातावरण उत्पन्न करेगा। प्रातः-सायं-दोनों समय मल-विसर्जनके नियमका पालन यथोचित रूपसे करें। पारिवारिक जनों और इष्ट-मित्रोंके साथ शुद्ध, सात्विक भावनासे मिलनसार स्वभाव रखें। प्रातःकाल विस्तर से उठते ही ५१ बार विचार करें कि "मेरा आजका समस्त दिन शुभ, सद्भावनापूर्ण और अनुकूल रहे। मैं जीवनको शुभ, शुद्ध विचार और आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक पथपर अग्रसर करूंगा; पवित्र बनाऊंगा। व्यवहार और परमार्थमें निपुण रहूगा। आत्मोन्नतिकी ओर मेरा अभियान निरन्तर गतिशील रहेगा।" मध्याह्नकालमें निम्नलिखित विचारोंमें तल्लीन हों-"मेरा जीवन पवित्रतासे भरपूर हो रहा है—क्रमशः उन्नत बनता जा रहा है। शारीरिक और मानसिक शक्तिया यथेष्ट रूपमें संचित और सुस्थिर हो रही हैं। मेरे आचार और विचार शुद्ध और उन्नत स्थितिपर पहुँच रहे हैं।" रातमें सोते समय स्वच्छ होकर, हाथ-पैरोंको भलीभांति धोकर अथवा स्नान करके बिछौनेपर बैठ जायें। पासमें अगरबत्ती आदि सुगन्धित पदार्थ जला लें और सुखासन पर बैठ जायें। कपालभाति-क्रियाके समान १० बार गहरे श्वास-प्रश्वास खींचें और छोड़ें, साथ ही सोचें कि- "समग्र दिनमें जो कुछ सारासार विचारों के साथ कर्म हुआ है, उनसे मै परिचित हुआ हू। अब मैं असार कर्मोंसे मुक्त रहूँगा और शुभ कर्मों में अहर्निश लगा रहूँगा। दैवी सम्पत्ति के रूपमें व्यय करने और उदर-पूर्ति, परिवार-पालन, समाजसेवा और सुपात्रों को दान देनेके लिये हमारे पास लक्ष्मी का शुभागमन हो रहा है-हमारे घर में लक्ष्मी का स्थिर निवास हो रहा है। मैं सर्वदा ऐश्वर्यसे भरपूर हूँ। मेरी बुद्धि निरन्तर उन्नत और प्रकाशमान होती रहेगी। शुद्ध, सात्विक गुण मेरे जीवनमें ओतप्रोत बन रहे हैं। मानसिक शान्ति यथोचित रूपमें प्राप्त हो रही है। मेरा जीवन पवित्र बनता जा रहा है। मैं सफलताकी ओर निरन्तर आगे बढ़ रहा हूं और सत्-चित्-आनन्दस्वरूप परमात्मामें प्रवेश कर रहा हूँ।" मानसिक पवित्रता और विश्वास के साथ उक्त भावनाओंको ५१ बार दुहराकर सो जायें। मन यदि स्थिर नहीं है और इधर-उधर भटक रहा है

तो अपनेको सुनाई दे, इतने उच्च स्वरसे उपर्युक्त संकल्पको कमसे कम ५१ बार कहें। मनके आधारपर ही सारा संसार सुख-दुःखमय भासित हो रहा है; इसलिये जबतक मानसिक विचारोंको उच्च सतहपर प्रतिष्ठित किया नहीं जायेगा; तबतक शान्ति नहीं मिलेगी और धन-सम्पत्ति अभीष्ट मात्रामें उपलब्ध होनेपर भी (किसी विशेष कारणवशात्) वह दुःखमय होगी। ऐश्वर्यका वास्तविक सुखोपभोग आप बिलकुल कर न सकेंगे।

बस्ति-कर्म

मलशोधन-कर्मके अन्तर्गत बस्ति-कर्म भी एक प्रमुख कर्म है। बस्ति-कर्म नित्य-कर्म नहीं है। जब कभी आवश्यकता हो, तभी इसे करना चाहिये। आजकल लोग एनिमाका भी प्रयोग करते हैं। लेकिन बस्ति-कर्मकी तुलना में इसका अधिक महत्त्व नहीं। बस्ति-कर्मका विस्तृत विवरण जानने के लिये इसी ग्रन्थमें अन्यत्र मलशोधन-कर्म के अन्तर्गत बस्तिकर्मका विधान पढ़ें। बस्ति-कर्म मलावरोध (कब्ज) को मिटानेमें पर्याप्त सहयोग प्रदान करता है।

नवलि-कर्म

मलशोधन-कर्म के अन्तर्गत नवलि-कर्मका भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है; अतः उसे पढकर यथोचित लाभ उठायें। जहां वायु-प्रवाह मुक्त रूपसे आ रहा हो, ऐसे प्रशस्त मैदान अथवा उच्च स्थान पर्वतादि की मुक्त वायुमें टहलने जाने से, दौड़ने से, भगवान्‌की मूर्तिकी प्रदक्षिणा करने से, सूर्य-नमस्कारसे, हाथसे पेटपर तेल की मालिश करने से कब्जसे सम्पूर्ण सुरक्षा प्राप्त होगी।

आसन-प्रयोग

पूर्णपद्मासन २ मिनट। शलभासन २ मिनट। पवनमुक्तासन २ मिनट। मत्स्यासन २ मिनट करें।

(३) कामला

पानीमें भीगे हुए आधी मुठ्ठी चने प्रातःकाल और सायंकाल खायें। दिनमें ११ बजे गन्ना चूसें। यदि गन्ना चूसना सम्भव न हो तो गन्नेका रस-पान करें। गायका धारोष्ण दुग्ध-पान करें। यदि सवेरे दुग्ध-पान करें तो चनाका उपयोग सायकाल करें। ऐसे प्रयोग निरन्तर चालू रखें, जिससे कब्ज होने न पाये। गरम मसाला, लहसुन, हींग, तेल और घी अथवा तेलमें तले हुए पदार्थ पूर्णतया वर्ज्य हैं।

आसन-प्रयोग

भुजंगासन २ मिनट। उत्थानपादासन १ मिनट। जानु-शिरासन २ मिनट। विपरीतकरणी ३ मिनट। अनुलोम-विलोम प्राणायाम प्रातःकाल ६ बार। यदि समयाभावसे प्रातःकाल सम्भव न हो तो सायंकाल करें।

आहार-व्यवस्था

भोजनमें हाथ से कूटा हुआ चावल, मक्खन निकाला हुआ मीठा तक्र, मूंगकी दाल, गाजर, हरी तरकारिया आदि का खूब उपयोग करें। भोजनके पश्चात् आम, अंजीर, मुनक्का आदि ग्राह्य है।

(४) मुखमें दुर्गन्ध

अजीर्ण और कब्जसे यह रोग होता है। दातोंको भलीभांति स्वच्छ न रखना भी इस रोगकी उत्पत्तिका एक प्रमुख कारण हो सकता है।

धौति-कर्म

इस रोगमें धौतिकर्म एक सफल प्रयोग है। इसकी क्रियाविधि मल-शोधन-कर्मके प्रकरणमें विस्तारके साथ समझाई गई है। नवलि-कर्म भी २ बार करें। उड्डीयान बन्ध १ मिनट करें। सप्ताहमें दो बार ऋतुके अनुसार किसी लाभदायक तेलसे समग्र शरीरकी मालिश करें अथवा करायें। ठण्डे अथवा साधारण गरम जलसे कटि-स्नान ५ से २० मिनटतक करें।

आसन-व्यवस्था

पश्चिमोत्तानासन १ मिनट। सुप्तधनुरासन १ मिनट। अर्धमत्स्येन्द्रासन २ मिनट। सिंहासन १ मिनट। मयूरासन आध मिनट। लोलासन आध मिनट। बकासन १ मिनट। त्रिकोणासन १ मिनट।

आहार-व्यवस्था

प्रातःकाल १ गिलास शीतल जल पियें। सवेरे ९ बजे गायके ६ औंस धारोष्ण दूधमें ३ औंस जल और १० मुनक्के डालकर अच्छी तरह उबाल कर पी लें। दूधमें शक्कर डालनेकी जरूरत नहीं है। हाथों से कूटे हुए चावलका भात, चोकर (भूसा) सहित आटेकी रोटी, कचुम्बर आदिका उपयोग लाभप्रद है। रातका भोजन हलका हो और सोनेसे ३ घण्टे पहले भोजन कर लें। भोजनमें मूग या तुवरकी दालकी खिचड़ी अथवा चावल की काजी आदिका उपयोग अनुकूल होगा।

(५) अग्निमान्द्य

अग्निमान्द्यका रोग हो जानेपर पाचक रस अर्थात् आमाशय रसका निर्माण यथोचित परिमाणमें नहीं होता। आमाशय-रसके उत्पादनमें दो पाचक अवयव विशेष काम करते हैं-एक है लवणांग अर्थात् हायड्रोक्लोरिक और दूसरा पाचकाग है

पैप्सीन। पैप्सीन हायड्रोक्लोरिककी उपस्थितिमें ही काम कर सकता है। इसके अभाव में पेप्सीनका होना न होना बराबर है; अतः पाचक रसके निर्माणमें हायड्रोक्लोरिक एसिड (लवणांग) का ह्रास या अभाव ही सदा आमाशय-रसके ह्रास या अभाव को प्रदर्शित करता है। भय, शोक, क्लेश, निन्दा घृणा, ईर्ष्या, द्वेष आदि विकारों से प्रभावित अवस्थामें पाचकरस अत्यल्प परिमाणमें बनता है।

आसन-चिकित्सा

अर्धमत्स्येन्द्रासन २ मिनट। पूर्णमत्स्येन्द्रासन १ मिनट। सुप्तधनुरासन १ मिनट। विपरीतकरणी २ मिनट। मयूरासन आध मिनट। सूर्य-भेदन प्राणायाम ४ से ६ बार करें।

आहार-व्यवस्था

गरिष्ठ आहार या पचने में अति भारी आहार कुछ दिनोंतक न लें। दूध, शाक-भाजी, फल, मूंगकी दाल और जौ की रोटी ले सकते है। छाछका उपयोग नित्य करते रहें।

तेल-मालिश

तिलका तेल, खोपरेका तेल, सरसोंका तेल (शीतकालमें), बदामका तेल, रामतीर्थ ब्राह्मी तेल आदिमेंसे किसी भी एक तेल से नित्यप्रति मालिश करें अथवा करायें। प्रातःकाल खुली हवा में दूर-दूर तक टहलने जाना भी लाभदायक है। ऊँचे स्थानों, टेकरियों और पहाड़ोंपर चढ़नेसे भी जठराग्नि प्रज्वलित होती है। नवलिकर्म भी अग्नि-मान्द्य से मुक्ति दिलाता है।

(६) क्षय (T. B.)

क्षय रोगको राजरोग भी कहते हैं। इसके कई प्रकार हैं। अस्थिक्षय, फेफड़ेका क्षय, मांसक्षय, रक्तक्षय, ओजक्षय आदि इसके अनेक लक्षण हैं। यह शरीरके किसी भी संचालक अंगमें लग जाता है। इसके प्रभावसे ज्वरका लक्षण उत्पन्न होकर शरीरका वजन घटने लगता है। कफके साथ मिश्रित कुछ रक्तांश भी दिखाई देता है। शरीरमें बेहद बेचैनी मालूम होती है। अशक्ति के कारण रोगी शय्याशायी होने लगता है। शरीर और मन किसी कामके लिये उत्साहित नहीं होते; सिर्फ शय्यामें पड़े रहनेकी इच्छा होती है।

कुछ आवश्यक नियम

गीली, गन्दी और अशुद्ध वायुसे रोगीको दूर रखना चाहिये। पेड़ोंकी, उच्च स्थानोंकी और पर्वतोंकी सूखी हवा का सेवन करना चाहिये। बकरीकी लैंडी भी रोगीके समीप रखें और सम्भव हो तो बकरीको भी रोगीके कमरेमें रखें। बकरीका धारोष्ण दूध भी पाव-पावभर दिनमें ३ या ४ बार लेते रहें। गाय और भैसका दूध वर्ज्य है। बकरी भी ऐसी हो, जो जंगलोंमें घूम-फिरकर सैकड़ों वनस्पतियोंकी पत्तिया खाती हो और जिसके शरीरमें सूर्यका प्रकाश पड़ता रहता हो। भोजनके समयमें तली हुई वस्तुओं तथा अचार, पापड़ और इमलीका सर्वथा बहिष्कार कर दें। किसी भी उत्तेजक पदार्थ—सिगरेट, बीडी, चाय, गांजा, भाग, अफीम, शराब आदि— से दूर रहें और भोजनके समयमें जो पदार्थ तैयार किये जाते हैं, उनमें मसालेका उपयोग बहुत कम किया जाये। यदि बिलकुल न किया जाये तो अतीव हितकर होगा। जिस प्रान्तमें अन्न, फल आदि जिन खाद्य पदार्थों की प्राकृतिक नियमानुसार उपलब्धि होती है, उन्हींको यथोचित परिमाणमें ग्रहण करें। पकाये हुए अन्नकी अपेक्षा फलोंपर अधिक आधार रखना चाहिये। फल ऋतुके अनुकूल हों और परिपक्व रूपमें तैयार होनेके पश्चात् मीठे हो गये हों। साधारण कड़वे हों; कसैले (तूरे) हों और तीखे भी हों; अर्थात् फलों में षट्रसका पूर्ण परिपाक हो गया हो। ऐसे फल विशेष लाभ-

दायक होते हैं। फिर भी, अम्लता की न्यूनता और क्षारतत्त्वोंका आधिक्य अभीष्ट है। जैसे कि मीठी नारंगी या सन्तरोंको छिलके सहित, पपीता छिलके सहित, मीठा दाडिम (अनार) छिलके सहित, अनन्नास मीठा आदि फल छिलके सहित सेवन करने चाहिये। कुएँका पानी (ऐसे स्थानका हो, जहां बस्ती कम हो) और प्रवहमान नदीका पानी क्षय रोगीके लिये विशेष अनुकूल है।

मानसिक उपचार

क्षय रोगियोंका मन उदासीन, उत्साहहीन और निराशापूर्ण रहता है। मानसिक शक्ति-संवर्धन के लिये निम्नलिखित विचारोंको श्रद्धापूर्वक मनन करना पड़ेगा। जबतक मानासिक शक्ति नहीं बढ़ेगी, तबतक शारीरिक शक्तिमें किसी प्रकारका परिवर्तन दिखाई नहीं देगा। आप दृढ़ श्रद्धापूर्वक विश्वस्त विचारोंमें लीन हों—"मेरे फेफड़े निरन्तर मजबूत बन रहे हैं। हड्डियोंमें शक्ति बढ़ रही है। मैं प्रतिदिन स्वस्थ होता जा रहा हू। मैं रोगमुक्त हो रहा हूं। मानसिक स्फूर्ति दिन-प्रातिदिन बढ़ रही है। पाचन-शक्ति बलवान् बन रही है। अब मै आशापूर्ण जीवन बितानेका अधिकारी बन गया हूं। आशा मेरी चिरसहचरी बन गई है।"

आसन-व्यवस्था

शरीरमें अशक्ति, कफ में पीलापन अथवा रक्तवर्ण हो; जीर्णज्वर हो; ऐसे लोग लेटे रहकर भी आसनोंका अभ्यास करें और जिन लोगोंको केवल क्षय रोगका आरम्भकाल है, वे शीर्षासन भी कर सकते हैं। जानुशिरासन १ से ३ मिनटतक। आकर्ण धनुरासन १ से १।। मिनट। वज्रासन १ से १।। मिनट। मत्स्यासन १ से २ मिनट। एकपाद शलभासन १ से २ मिनट। भुजगासन १ से १।। मिनट। नौकासन आधसे १ मिनट। उष्ट्रासन आधसे १ मिनट।

प्रातःकाल अथवा सायंकाल ५ से १० मिनटतक सूर्यकी किरणें लें। नवलिकर्म ३ बार और बस्तिकर्म भी करें। शरीरमें ज्वर न रहता हो तो तेल-मालिश भी करें।

(७) वीर्य-विकार

इसके अनेक रूप हैं। जैसे कि पतला हो जानेपर पेशाब, पसीना तथा स्वप्नदोषके द्वारा वीर्य निकल जाता है। वीर्यके पतला हो जानेका कारण है गरम मसाला, मिर्च आदिका अत्यधिक उपयोग। अश्लील और कामोत्तेजक उपन्यास, नाटक, कहानी आदिका पढ़ना; भय, चिन्ता, क्रोध, मोह, मद, मत्सर आदि मनोविकारोंका उद्वेग, सिनेमा-नाटक आदिका देखना; बीड़ी, सिगारेट, तम्बाकू। मांस-मछली, मद्य आदिका सेवन तथा हस्तमैथुन और अतिमैथुन करनेसे भी वीर्य पतला और निर्बल हो जाता है। गन्दे वातावरणमें रहना, कुसंगमें पड़ जाना, मलबद्धता (कब्ज) भी इस रोगके कारण हैं। उपर्युक्त कारणों से पुरुषोंकी तरह स्त्रियोंको भी रजःविकार हो जाता है। स्त्रियोंमें यह रोग कमरकी पीड़ा, शिरोवेदना, मेदवृद्धि, जीर्णज्वर, वजन घट जाना, मानसिक रोग, हृदयविकार, अनियमित मासिकधर्म, रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर आदिके रूपमें प्रकट होता है।

आहार-व्यवस्था

इस रोगकी विभीषिकासे मुक्त होनेके इच्छुक लोगोंको शुद्ध, सात्विक, हलका और उत्तेजनाहीन आहार लेना अनिवार्य है। यह आहार कब्ज करनेवाला न हो। रातका भोजन हलका होना चाहिये। मानसिक और वैषयिक चिन्ताओं से मुक्त रहना आवश्यक है। वीर्याशय-कोशके समीप ही मलाशयकोश है; अतः मलकी गरमीसे उत्तप्त (गरम) होकर वीर्य पतला पड़ जाता है। वीर्य पतला होने के कारण सन्तान बलशाली और वीर्यवान् नहीं हो सकती। इस रोगके उपचारस्वरूप शीतल जलसे स्नान करें। नीबूका शरबत दिनमें एक बार पियें। नीबूका अधिक उपयोग न करें। जिन व्यक्तियों के लिये अनुकूल हो और जो कब्जसे पीड़ित हों, ऐसे लोगोंको शरबतमें थोड़ा-सा नमक भी मिला लेना चाहिये। पेशाबके वेगको कभी न रोकें। मल-त्याग की इच्छाका अवरोध भी कभी न करें। प्रातः-साय दो बार मलत्याग करना आवश्यक है। प्रकृतिके अनुसार दिनमें ३।४ गिलास ठण्डा जल पीनेका अभ्यास रखें। ऐसा करने से मूत्राशय-कोशकी गर्मी शीतल रहेगी, फलतः वीर्याशय-कोश भी शांत और शीतल रहेगा।

रातको ८ घण्टे नींद लेना आवश्यक है। शारीरिक, मानसिक और नैतिक सामर्थ्य से पुरस्कृत करनेवाले रामायण, महाभारत, गीता आदि धार्मिक ग्रन्थो तथा दिव्य जीवन वितानेवाले महापुरुषोंके जीवनचरित्रोंके पठनको दैनिक स्वाध्यायका नियम बनाना चाहिये। सत्संगमें रहकर सदाचारके नियमोंका पालन करनेकी उदात्त प्रेरणा प्राप्त करें। यदि लगोट बांधनेकी आदत हो तो उसे बहुत कसकर न बांधें। क्योंकि उस स्थानमें शुद्ध वायुका स्पर्श न होनेसे गरमी उत्पन्न होती है; फलतः दाद हो जाती है और वीर्यपर भी उसका अशुभ प्रभाव होता है। वीर्य पतला पड़ जाता है। केवल योगाभ्यास, व्यायाम और मल्लयुद्ध (कुश्ती) के समयमें लंगोट पहना जा सकता है। २४ घण्टे स्थानीय अवयवोंको लंगोट से जकड़ रखना हितावह न होगा। रंग-विरंगे वस्त्र-परिधानों से बचना जरूरी है। शुद्ध खादीका वस्त्र मनको शान्ति देनेके लिये सभी ऋतुओंमें अनुकूल है।

आसन-व्यवस्था

शीर्षासन १० मिनटसे १ घण्टेतक। शीर्षासनके नये साधक १ मिनटसे प्रारम्भ करें और प्रतिदिन १।१ मिनट बढ़ाते हुए १ घण्टे की साधनातक पहुच सकते हैं। उचित लाभ उठाने के लिये कमसे कम १० मिनटका अभ्यास आवश्यक है। दीवारका आधार लिये बिना ही यह आसन करना चाहिये; अन्यथा अभीष्ट की सिद्धि सम्भव नहीं। जानुशिरासन २ मिनट। वीर्य-स्तम्भनासन १ मिनट। एकपाद-शलभासन २ मिनट। शलभासन १ मिनट। वज्रासन २ मिनट। सुप्तवज्रासन १ मिनट। अर्ध-मत्स्येन्द्रासन ३ मिनट। मत्स्येन्द्रासन २ मिनट। उष्ट्रासन १ मिनट। लोलासन १ मिनट। चक्रासन १ मिनट। एकपाद-शिरासन २ मिनट। द्विपाद-शिरासन १ मिनट। शवासन ५ मिनट। गोरक्षासन १ से २ मिनट। अनुलोम-विलोम प्राणायाम ६ बार प्रातःकाल और ६ बार सायंकाल।

मानसिक इलाज

वीर्यविकारग्रस्त मानवका मन सदैव अस्थिर और अशान्त रहता है। अतः मनको शान्त और सुस्थिर बनानेके प्रयास सदैव करते रहें। प्रातःकाल स्नान करनेके पश्चात् सन्ध्या-वन्दनके समयमें अथवा नाम-जपके पश्चात् मनको निम्नलिखित उच्च विचारोंकी प्रेरणा प्रदान करें:—"मेरा वीर्य गाढ़ा और बलवान् बनता जा रहा है। मनोबल निरन्तर बढ रहा है। अब मैं दुर्व्यसनोंसे मुक्त हो रहा हूँ। बुद्धिमें पवित्रता आ रही है। मैं अब दिव्य पुरुष बनूंगा। मेरा जीवन दिन-प्रतिदिन पवित्र होता जा रहा है और उसपर सत्सग का शुभ प्रभाव नित्य पड़ रहा है। अब मैं दुःखद स्थितियोंसे मुक्त होकर स्वर्गीय सुखके साम्राज्य में प्रवेश कर रहा हू।"—इस प्रकार के दिव्य विचारोंका नित्य ५१ बार मनन और अनुशीलन करते रहें तथा इन्हीं विचारोंको रातमें शयनके समयमें बिछौनेपर बैठकर ५१ बार बोलें। तत्पश्चात् निश्चिन्त मन होकर निद्रादेवी की गोद में बैठ जायें। धूपबत्ती, चन्दनादिका सुगन्धित और पवित्र धूम्र भी पवित्रता और दिव्य विचारोंका उत्प्रेरक है। ठण्डे जलका कटिस्नान भी ५ से २० मिनटतक लेना चाहिये। तीन महीनेतक रामतीर्थ ब्राह्मी तेल अथवा किसी अन्य तेलसे समस्त शरीरकी मालिश करने के पश्चात् स्नान करें। जब यथोचित लाभका अनुभव होने लगे, तब सप्ताह में दो बार मालिश करने के बाद स्नान करें। यह प्रयोग निस्सन्देह लाभदायक सिद्ध होगा।

(८) दृष्टिक्षीणताके कारण और उपचार

आजकल किशोरावस्थामें ही अनेक बालक-बालिकाओंकी आँखोंपर चश्मा चढ जाता है। दृष्टिक्षीणताके कारण उन्हें चश्मेके उपयोगके लिये बाध्य होना पड़ता है। बचपनमें दृष्टिमन्दताका यह अभिशाप लग जाना सचमुच दुर्भाग्यपूर्ण और दुःखद है, जिसका प्रमुख कारण है पोषक और सुपाच्य आहारका अभाव। माता-पिताके रजस् तथा वीर्यकी निर्बलता भी दृष्टिमन्दता उत्पन्न कर देती है। स्कूल, हाई स्कूल और कॉलेज के छात्रोंकी आंखें अल्पायुमें ही चश्मेसे ढक जाती है। इसका

मुख्य कारण है अश्लील साहित्य का पठन, माता-पिता, गुरु एवं पारिवारिक गुरुजनोंकी आज्ञाका उल्लंघन। दुश्चरित्र और दुर्व्यसनी मित्रोंके साथ रहना और तादृश वीर्यनाशमूलक आचरण करना भी चश्मा लगाने के लिये बाध्य कर देता है। कुछ स्त्री-पुरुष अपने मुखकी शोभा बढ़ाने के लिये भी उसे चश्मे से सुसज्जित करते हैं। लोगोंकी यह धारणा भ्रान्तिमूलक है कि ४० वर्ष की आयुके बाद चश्मे का उपयोग स्वाभाविक स्थिति है; अर्थात् इन लोगोंकी मान्यता है कि ४० वर्ष की आयु हो जानेपर नैसर्गिक नियमानुसार लोगों की दृष्टि मन्द पड़ जाती है; फलतः वे चश्मेका उपयोग करने लगते हैं। किन्तु वस्तुतः ऐसा होता नहीं है। १०० वर्षतक दृष्टिशक्तिको यथावत् स्थिर रखा जा सकता है। दृष्टिके क्षीण होने में दिवा-शयन (दिनमें सोना) और रात्रि-जागरण भी एक कारण है। क्रोध, शोक और रोदन करने, शिरमें चोट लगने तथा अतिमैथुन करने से भी दृष्टि मन्द पड़ जाती है। मदिरापान, सिगरेट, तम्बाकू, तपकीर, चुरुट और गांजा, चरस आदि मादक वस्तुओंका धूम्रपान भी दृष्टिको निर्बल बना देता है। इसके अतिरिक्त ऐसे ही अनेक आचरण और व्यसन हैं; जो नेत्रोंकी ज्योतिको क्षीण बना देते हैं; लेकिन ग्रन्थ-विस्तार के भयसे यहां उनका दिग्दर्शन कराना सम्भव नहीं।

आसन-व्यवस्था

शीर्षासन १० मिनटसे १ घण्टेतक। शवासन ५ मिनट। सिंहासन १ मिनट। पूर्णपद्मासन १॥ मिनट। मत्स्यासन के दोनों प्रकार ३ मिनट। उर्ध्व सर्वांगासन ३ से ६ मिनट। उर्ध्व सर्वांगासन करते समय दृष्टिको पैरोंके अगूठोंपर स्थिर रखें। आंखोंमें जल आ जानेके बाद उन्हें बन्द कर लें। सुप्त वज्रासन २ मिनट। भुजंगासन १॥ मिनट। नवलिकर्म ३ बार। नेतिकर्म (जलनेति अथवा सूत्रनेति) भी करें। कपालभाति ६ बार करें।

आंखोंके लिये कुछ विशेष लाभदायक उपचार

आंखोंको धोनेके लिये विशेष रूपसे बनाये गये कांच के छोटे गिलास (आई-ग्लास) में गुलाबजल अथवा वस्त्रसे छना हुआ कूपजल अथवा हरड़, बहेड़ा और आमलेके चूर्ण के साथ उबाला हुआ और वस्त्र से छना हुआ जल उपर्युक्त आई-ग्लासोंमें भरकर ग्लासोंको आंखों के ऊपर लगा दें और आंखोंको खोलते तथा बन्द करते रहें। यह क्रिया २५ वार करें। आंखोंमें पानी आ जाने या जलन होनेपर घबरायें नहीं। तदुपरान्त दोनों हथेलियोंसे दोनों आंखोंको हलके रूपमें मलते रहें। इसके बाद आंखोंकी पुतलियोंको दाईं और बाईं ओर घुमायें। आंखें खुली रहें। तदनन्तर शीतल जलसे आखों को धो डालें। यह क्रिया ८ दिनतक लगातार करें। इस प्रयोगके पश्चात् आंखोंकी पुतलियोंको ऊपर-नीचे तथा दाहिने बायें-चारों ओर घुमायें। आंखोंको दोनों हाथों से बन्द रखकर मन में विचार करें:-"मेरी आंखोंकी ज्योति दिनानुदिन बढ़ती जा रही है। आंखों की नस-नाडिया मजबूत हो रही हैं। रक्त-प्रवाह सुयोजित रूप से हो रहा है।" ऐसे विचार कमसे कम एक मिनट तक करें। फिर आंखोंको शीतल जलसे धो डालें। आखोंकी दृष्टि बढाने के लिये मानसिक आन्दोलन भी एक सफल उपचार है.

सूर्य - किरण - चिकित्सा

हरे रंगकी स्वच्छ बोतल के पौन भाग को स्वच्छ, जलसे भर दें। सवेरे १० बजे इस बोतलको लकड़ी के टुकड़े पर सूर्यकी धूपमें रख दें। चार बजे बोतलको धूपसे उठा लें और कागज या कपड़ेमें लपेटकर रख दें। बोतलके इस जलको सवेरे ८ बजे, ११॥ बजे, ३ बजे और सायकाल ६ बजे — इस प्रकार ४ बार एक-एक औंस पीते रहें। नील अर्थात् बैंगनी रंगकी बोतल में उपर्युक्त विधिसे सूर्यकिरणों में जलको तैयार कर रखें। इस जलको सवेरे ९ बजे, १ बजे, ४ बजे और सायकाल ७ बजे १। १ औंसके हिसाबसे पीते रहें। प्रातःकाल शरीरमें सूर्य-किरणों का स्पर्श कराना भी अत्यधिक लाभदायक है। गरमीके दिनोंमें सवेरे ८ बजेतक और शरदीकी ऋतुमें ९ बजेतक

सूर्यकिरणों में बैठें । सूर्य के सामने आंखें बन्द करके बैठें और विचार करें कि आंखों का तेज बढ रहा है, और दृष्टि निरन्तर दीप्तिमान बन रही है । इसके बाद आंखोंकी पलकोंको हथेलियों से मल दें। इस प्रकार का प्रयोग २।३ महीनेतक निरन्तर करते रहें। यह प्रयोग लम्बी और निकट की दृष्टि के लिये भी अनुकूल है। रात में सोते समय शिरमें रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से मालिश करें और तेलसे आंखोंको आंजें। आंखोंकी दृष्टि बढ़नेके लिये त्राटक भी एक लाभदायक प्रयोग है। त्राटक करने के नियम मल-शोधन-कर्मके प्रकरणमें पढ़कर समझ लें।

आहार-व्यवस्था

प्रातःकाल गायके दूधमें इलायची, केसर, बदाम छोड़कर पियें । दोपहरमें भोजनके समयमें दाल, भात, रोटी, शाक आदिके साथ अनेक प्रकारके द्विदल धान्यमें से कोई एक धान्य बदल-बदलकर हमेशा लेते रहें। कचुम्बर-जिसे सलाद भी कहते हैं और जिसमें टमाटर, गाजर काकडी, पत्तागोभी, कोथमीर (हरी धनियाकी पत्तियां), नारियल आदि वस्तुओंका मिश्रण किया जाता है-भी आंखोंकी दृष्टि बढ़ाने के लिये उत्तम है । गाजर दृष्टिमान्द्यके लिये सर्वोत्तम औषधि है । इसका अधिकाधिक उपयोग करें। अगर गाजर साबुत खानेमें कठिनाई हो तो उनका रस निकालकर पियें। गाजरका व्यवहार दिनमें दो बार अवश्य करें। भोजनके पश्चात् फल भी उचित मात्रामें ग्रहण करना आवश्यक है। रातके भोजनमें तक्रका उपयोग बिलकुल न करें। भात या रोटीके साथ गायके घीका उपयोग विशेष लाभदायक होगा। सलादके साथ धनियाकी हरी पत्तियों (कोथमीर) अथवा धनियाका उपयोग करनेसे आंखों की दृष्टि बढ़ती है।

(९) स्मरण-शक्ति-संवर्धन

यह रोग पुरुषोंके वीर्य और स्त्रियोंके रजसमें विकार उत्पन्न होने, मानसिक दुर्बलता, अत्यन्त मेदवृद्धि अथवा अत्यन्त दुर्बल शरीर, अनिद्रा रोग, मस्तिष्कके अवयवोंकी निर्बलता, ज्ञानतन्तुओंमें शैथिल्य आदि अनेक कारणोंसे हो जाता है। स्मरणशक्ति को कम कर देनेमें उपर्युक्त दोष मुख्य काम करते हैं।

आसन-व्यवस्था

शीर्षासन १० मिनटसे आध घण्टे। शवासन ५ मिनट। सुप्तधनुरासन २ मिनट। पादांगुष्ठासन १ मिनट। विस्तृतपाद सर्वांगासन २ मिनट। कूर्मासन १ से १॥ मिनट। कर्णपीडनासन २ मिनट। नौकासन १ मिनट। एकपाद-शलभासन १ मिनट। शलभासन १ मिनट।

आहार-व्यवस्था

प्रातःकाल गाय अथवा बकरीका धारोष्ण दूध पीना हितकर है। दोपहरके पश्चात् ३ बजे गाय अथवा बकरी के ताजे गरम किये हुए दूध में शखावली का चूर्ण १ तोला छोड़कर पीना चाहिये। जीवनतत्त्व (विटामिन) से परिपूर्ण खाद्यपदार्थ ग्रहण करने चाहिये। भोजनके समयमें स-नाल (डण्ठलसहित) ब्राह्मी वनस्पतिकी चटनीका उपयोग करें। दिन में एकबार गाय अथवा बकरीके दूधमें २ बादाम, २ से ४ पिस्ते, आधा अजीर, सौंफ, काली द्राक्ष (सूखी) ६ दाने, और खसखस (पोस्तेके बीज)—इन सब वस्तुओंको पानीके साथ पीस कर और दूधमें मिलाकर पी जायें। आहार में गेहूके आटे (चोकरसहित) की रोटी, हाथ से कूटे हुए चावलोंके भात और छाछ का उपयोग करें।

मानसोपचार

रातमें शय्यापर बैठकर ५ बार गहरे श्वास खींचें और छोड़ें एवं साथ ही मनमें विचार करें:— "मेरी स्मरणशक्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है— उन्नत हो रही है। मस्तिष्कका प्रत्येक अवयव विकसित हो रहा है। मुझे गहरी निद्रा आ रही है। मानसिक विचार आशापूर्ण और सन्तोषप्रद हो रहे हैं।" इस प्रकार ५१ बार विचार करके निद्रामें शान्तिपूर्वक तल्लीन हो जाना चाहिये।

(१०) अनिद्रा रोग

मानसिक चिन्ता, क्रियातन्तुओं और ज्ञानतन्तुओं की निर्बलता, शरीरको अत्यधिक आराम देने, रातमें अधिक मात्रामें भोजन करने, शक्तिसे बाहर श्रम करने, चाय–कॉफी आदि व्यसनमूलक वस्तुओं के अधिक सेवन, शरीरमें मेदके अधिक बढ जाने, जीर्णज्वर रहने, तमोगुण और रजोगुणप्रधान अन्तःकरण रहने एवं वात, पित्त, तथा कफके विकारोंसे अनिद्रा रोग हो जाता है।

आसन–चिकित्सा

सर्वप्रथम नौलिकर्म १ मिनट करना चाहिये। तत्पश्चात् सुप्त वज्रासन १ मिनट। शीर्षासन १० मिनट। शवासन ५ मिनट। सुप्त उर्ध्व हस्तासन १ मिनट। भुजंगासन २ मिनट। मत्स्यासन २ मिनट। तोलागुलासन (तुलासन) १ मिनट। जानुशिरासन १ मिनट। लोलासन, पहला प्रकार १ मिनट; दूसरा प्रकार १ मिनट। चक्रासन १ मिनट करना लाभप्रद है।

प्राणायाम--व्यवस्था

शरीरकी प्रधान प्रकृति यदि वातमूलक हो तो शीतऋतुमें सूर्यभेदन प्राणायाम और ग्रीष्म तथा वर्षाकालमें चन्द्रभेदन प्राणायाम हितकर होगा। प्राणायाम प्रातःकाल ६ बार और सायकाल ६ बार करें। (प्राणायामकी विधि जाननेके लिये 'उमेश–योगदर्शन' का द्वितीय खण्ड अवलोकन करें।) कफ और पित्तप्रकृतिप्रधान स्त्री–पुरुषोंको सभी ऋतुओंमें भस्त्रिका प्राणायाम नं. १ करना चाहिये अथवा उज्जायी प्राणायाम ४ बार करें।

आहारोपचार

प्रातःकाल आसनादि क्रियाओंसे निवृत्त होनेके पश्चात् रातमें भिगोकर रखे गये मुट्ठी-भर चने खायें। कुछ देर के पश्चात् पावभर दूध पी लें। भोजन के समय में मूंगकी दाल, भात, रोटी और शाकका उपयोग करें। शाक-भाजी की छौंकमें घीका उपयोग करें; तेल का उपयोग वर्ज्य है। हींगका व्यवहार भी इष्ट नहीं; जीरेका उपयोग करें। दिन ४ बजे मोसम्बी के ६ औंस रस में २ औंस पानी मिलाकर पीना चाहिये। सायकाल ७ बजे अल्पाहार कर लेना चाहिये। सम्भव हो तो भोजन के पश्चात् कुछ देरतक टहलना भी चाहिये।

अन्य लाभदायक उपचार

इसके अतिरिक्त रात में शय्यासीन होते समय (लेटते समय) मस्तक और शिरके चारों ओर रामतीर्थ ब्राह्मी तेलसे मालिश करना भी एक लाभदायक प्रयोग है। पैरोंके तलुओंकी मालिश भी इसी तेल सें करें। शिर और तलुओंकी मालिश कमसे कम ५ मिनट करें। दिनमें ५ से ६ गिलास पानी अवश्य पीना चाहिये। रातमें शवासन करें। शवासन की स्थितिमें श्वेत वस्त्र को शीतल जलमें भिगोकर नाभि-स्थानपर रखें। नींदके समय में उसे हटा सकते है और न हटायें तो भी कोई हानि न होगी।

मानसोपचार

लेटनेके सयममें शवासन की स्थितिमें मनको एकाग्र कर विचार करेंः—"मुझे गहरी नींद आ रही है। शरीरका प्रत्येक अवयव और उसकी प्रत्येक हलचल रजोगुण और तमोगुणके प्रभावसे मुक्त होकर सतोगुणसे सराबोर हो रही है। मैं सुख और शान्ति के साम्राज्यमें प्रवेश कर रहा हू। तन-मन-धनसे समृद्ध हो रहा हूं। मैं आत्म-

शान्तिका अनुभव कर रहा हूं। हर समय मेरा मन शुभ विचारोंसे साथ ओतप्रोत रहता है।" इस प्रकारके विचार कमसे कम ५१ बार करें। इस अवस्थामें किसी प्रकारके भी सांसारिक अथवा व्यावहारिक विचारोंको मनमें घुसने न दें।

जलोपचार

जो लोग अधिक समय से अनिद्रा रोगसे पीड़ित हैं, उनका कर्तव्य है कि वे प्रातःकाल स्नानसे पहले किसी अनुकूल तेलसे मालिश करके या कराके १५ मिनटके पश्चात् टीनके टब में गरमी में ठण्डा पानी और शरदी में साधारण गरम पानी भरकर पहले दिन ५ मिनट कटिस्नान लें। दूसरे दिनसे प्रतिदिन १।१ मिनट बढाते हुए आध घण्टेतक कटिस्नान करें। कटिस्नान के पश्चात् स्नान करें। कटिस्नान के समय पेटके चारों ओर गोलाकार हाथ घुमाते रहें।

卐 卐

(११) हृदय-विकार

नौकरी अथवा धन्धे में एवं हर समय उसीकी चिन्ताओंमें व्यस्त रहना, मानसिक कष्ट पहुंचानेवाले झंझटोंमें फँसे रहना, अनियामित भोजन और भोजनको पचानेके लिये औषधियोंका उपयोग, वनस्पति घीका उपयोग, सिगारेट, बीड़ी, चाय और अन्य अनेक घातक दुर्व्यसन, रातमें देरसे सोना, अतिमैथुन, मेदरोग, फेफड़ोंकी कमजोरी, मानसिक चिन्ता, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद-मत्सरादि मनोविकारोंका उफान, व्यायामका अभाव, वायुविकार आदि अनेक कारण हृदयविकार के मूलमें हैं। पेटमें मेद अधिक होने और हृदयमें अशक्ति आ जानेसे श्वासोच्छ्वास की गतिमें विक्षेप होता है। फलत: हृदय का कार्य अनियमित हो जाता है और कभी-कभी तो प्राणोत्क्रमण तककी नौबत आ पहुंती है।

आसनोपचार

एकपाद उत्थानपादासन २ मिनट। उत्थानपादासन १ मिनट। एकपाद पवन-मुक्तासन २ मिनट। पवनमुक्तासन १ मिनट। शरीर में मेद अधिक हो तो दोनों नासापुटोंसे श्वास को बाहर निकाल कर आसन करें जब हृदयमें शक्ति बढने लगे और उसका क्रमिक विकास होने लगे, वेदना का अनुभव न हो, तब श्वास को अल्परिमाणमें फेफड़ोंमें भरकर आसन करना चाहिये। बद्धपद्मासन का अपूर्ण प्रकार १ से २ मिनट। वीरासन १ मिनट। त्रिकोणासन १ मिनट। आकर्षण धनुरासन १ मिनट। अर्धमत्स्येन्द्रासन २ मिनट। उष्ट्रासन १ मिनट।

आहार–व्यवस्था

जिन स्त्री–पुरुषोंके शरीरमें भेद अधिक हो, वे हृदयाविकार रहनेतक घी–दूधको छोड़ दें अथवा इनका उपयोग बहुत कम मात्रामें करें। प्रातःकाल १४ औंस जलमें एक छोटा चम्मच मधु (शहद) और आधे नीबू का रस डालकर पी लें। आसनादि कर लेनेके पश्चात् ४ औंस मोसम्बीके रस और २ औंस सन्तरेके रसमें २ औंस पानी और थोडी-सी जीरेकी बुकनी डालकर पी लें। दोपहरके भोजनमें गेहूकी रोटी, मूगकी दाल और शाक–भाजीका व्यवहार करें। कचुम्बर (मिश्रित सलाद) का उपयोग अवश्य करें। पके हुए अन्नकी अपेक्षा कच्चे अन्नका व्यवहार अधिक उपादेय होगा। भोजनके बाद सन्तरा, पपीता, दाडिम आदि फलोंका भी उपयोग करें। ४ बजे पावभर दूधमें आधपाव पानी और काली द्राक्ष मिलायें और एक बर्तनसे दूसरे बर्तनमें हिलाकर भली-भांति फेनिल हो जानेपर पी लें। रात में अल्पाहार जल्दी ही कर लें। फलाहार भी ठीक होगा। ८ दिन अथवा १५ दिन के बाद १ दिनका उपवास रखना भी लाभकर होगा। उपवास में मोसम्बीका रस अथवा नीबू का शर्बत ग्रहण करें।

मानसिक उपचार

प्रातःकाल स्नान, सन्ध्या, जप आदिसे निवृत्त होकर बैठें और नेत्र बन्द करके मनमें विचार करें—"मैं आज से उदासीनता, निराशा और चिन्तामूलक विचारों से मुक्त हो रहा हूँ। मेरे हृदयमें व्याप्त विकार और व्याधियां अब हमें पीड़ा पहुंचा न सकेंगी। मैं उनसे पूर्णतया मुक्त हो रहा हूँ। मेरे हृदय और फेफड़े विकसित, बलवत्तर और नीरोग हो रहे हैं।" –इस प्रकार के विचारोंको कमसे कम ५१ बार दुहरायें। इन विचारोंको रात में बिस्तरपर बैठकर भी मनन करें।

प्राणायाम

अनुलोम–विलोम प्राणायाम भी इस रोगसे पीछा छुड़ाने का एक सफल प्रयोग है। प्रातःकाल, सायंकाल अथवा जपके समय में ३ अथवा ६ बार प्राणायाम करें। (प्राणायाम–विधि 'उमेश–योग–दर्शन' के द्वितीय खण्डमें पढ़कर समझ लें।

● ●

(१२) दमा (श्वास–अस्थमा)

दमा रोगके आरम्भमें जुकाम वारंवार होता रहता है। दमा (अस्थमा) के अनेक रूप हैं। किसीको यह रोग शीतकालमें परेशान करता है; किसीको ग्रीष्मकालमें यन्त्रणा देता है; किसीको वर्षाकालमें उत्पीड़ित करता है और किसीको प्रत्येक ऋतुमें यह रोग बेचैन किये रहता है। कब्जके विशेष बढ़ जाने, कफ और शीतप्रधान आहारका सेवन करनेसे दमा उग्र रूप धारण कर लेता है। किसी–किसीको शुक्ल और कृष्ण पक्षकी एकादशीसे प्रतिपदातक विशेष कष्ट पहुंचाता है। किसीको चिन्ताके कारण भी यह उग्र हो उठता है। अल्पविटामिनयुक्त अथवा अल्पपोषक आहार भी इस रोगका मूल कारण बन जाता है। किसीको रातमें यह इतना अधिक जोर पकड़ता है कि रोगीको रातभर बैठे रहना पड़ता है, मुंह खुल जाता है और श्वासकी गति धौंकनीकी की तरह चलती रहती है। आखोंकी स्थिति विकृत हो जाती है।

आसन-व्यवस्था

प्रातःकाल मलशोधनकर्म अर्थात् सूत्रनेति और धौतिकर्म करें। वस्त्रधौतिके स्थानपर दण्डधौति भी कर सकते हैं। दमाके रोगसे पूर्णतया मुक्ति मिल जानेपर नेतिकर्म, धौतिकर्म और दण्डधौतिकर्म हमेशा न करें; महीने में केवल एकबार करें। (नेति, धौति, दण्डधौति आदि की विधि इसी ग्रन्थके मल-शोधन-कर्म-प्रकरणमें पढकर समझ लें)। उड्डीयान बन्ध १० बार और नौलिकर्म १ मिनट करें। तदुपरान्त आसनोंका अभ्यास करें। यदि शरीरमें अशक्ति अधिक हो तो लेटे रहकर आरामसे जितना भी आसनाभ्यास किया जा सके, उतना ही करें; अर्थात् एकपाद उत्थानपादासन २ मिनट, उत्थानपादासन १ मिनट, एकपादपवनमुक्तासन १ मिनट, पवनमुक्तासन १ मिनट, भुजगासन १ से २ मिनट, नौकासन (पहले, दूसरे और तीसरे प्रकारसहित) ३ मिनट तक आरामसे करते रहें। उपर्युक्त साधनासे शरीरमें समुचित शक्ति आ जानेके पश्चात् निम्नलिखित आसनोंका अभ्यास करें:—उर्ध्व सर्वांगासन २ से ४ मिनट। सर्वांगासन १ से २ मिनट। एकपाद-भुजासन आध मिनट। द्विपाद-भुजासन आध मिनट। लोलासन एक मिनट।

आहार-व्यवस्था

प्रातःकाल उठकर और दन्तधावन आदिसे निवृत्त होकर १४ औंस जलमें एक छोटे चम्मच भर शहद (मधु) मिलाकर पी जायें। आसनादिके अभ्याससे निवृत्त होनेके पश्चात् मोसम्बी के ४ औंस रस में २ औंस गरम जल तथा थोडा-सा जीरा और सोंठ का चूर्ण डालकर पियें। दोपहर में भोजन के समय में हरी पत्तिया—यथा मूलीकी पत्तिया, चौलाईकी पत्तिया, पालक की पत्तिया, पुनर्नवाकी हरी पत्तिया—अल्प मात्रामें खायें। अभ्यास हो जानेपर अधिक मात्रामें भी खा सकते हैं। भोजनमें तेल, हींग, तली हुई वस्तुयें, मिठाइया, खटाई आदि वर्ज्य हैं। दाल, भात, रोटी, शाक आदि का सेवन उचित होगा। आटेमें भूसा (चोकर) भी अधिक परिमाण में रहे। भोजन के पश्चात् सूखे अथवा हरे अञ्जीर, काली द्राक्ष, और छिल्कारहित पपीता (पेड़ में पका हुआ) खायें। ४ बजे पावभर गाय अथवा

मानसिक उपचार

प्रातःकाल स्नान, सन्ध्या, जप आदिसे निवृत्त होकर बैठें और नेत्र बन्द करके मनमें विचार करें—"मैं आज से उदासीनता, निराशा और चिन्तामूलक विचारों-से मुक्त हो रहा हूँ। मेरे हृदयमें व्याप्त विकार और व्याधियां अब हमें पीड़ा पहुचा न सकेंगी। मैं उनसे पूर्णतया मुक्त हो रहा हूँ। मेरे हृदय और फेफड़े विकसित, बलवत्तर और नीरोग हो रहे हैं।" –इस प्रकार के विचारोंको कमसे कम ५१ बार दुहरायें। इन विचारोंको रात में बिस्तरपर बैठकर भी मनन करें।

प्राणायाम

अनुलोम–विलोम प्राणायाम भी इस रोगसे पीछा छुड़ाने का एक सफल प्रयोग है। प्रातःकाल, सायंकाल अथवा जपके समय में ३ अथवा ६ बार प्राणायाम करें। (प्राणायाम–विधि 'उमेश–योग–दर्शन' के द्वितीय खण्डमें पढ़कर समझ लें।

● ●

(१२) दमा (श्वास–अस्थमा)

दमा रोगके आरम्भमें जुकाम वारंवार होता रहता है। दमा (अस्थमा) के अनेक रूप हैं। किसीको यह रोग शीतकालमें परेशान करता है; किसीको ग्रीष्मकालमें यन्त्रणा देता है; किसीको वर्षाकालमें उत्पीड़ित करता है और किसीको प्रत्येक ऋतुमें यह रोग बेचैन किये रहता है। कब्जके विशेष बढ़ जाने, कफ और शीतप्रधान आहारका सेवन करनेसे दमा उग्र रूप धारण कर लेता है। किसी–किसीको शुक्ल और कृष्ण पक्षकी एकादशीसे प्रतिपदातक विशेष कष्ट पहुंचाता है। किसीको चिन्ताके कारण भी यह उग्र हो उठता है। अल्पविटामिनयुक्त अथवा अल्पपोषक आहार भी इस रोगका मूल कारण बन जाता है। किसीको रातमें यह इतना अधिक जोर पकड़ता है कि रोगीको रातभर बैठे रहना पड़ता है, मुंह खुल जाता है और श्वासकी गति धौंकनीकी की तरह चलती रहती है। आखोंकी स्थिति विकृत हो जाती है।

आसन-व्यवस्था

प्रातःकाल मलशोधनकर्म अर्थात् सूत्रनेति और धौतिकर्म करें। वस्त्रधौतिके स्थानपर दण्डधौति भी कर सकते हैं। दमाके रोगसे पूर्णतया मुक्ति मिल जानेपर नेतिकर्म, धौतिकर्म और दण्डधौतिकर्म हमेशा न करें; महीने में केवल एकबार करें। (नेति, धौति, दण्डधौति आदि की विधि इसी ग्रन्थके मल-शोधन-कर्म-प्रकरणमें पढ़कर समझ लें)। उड्डीयान बन्ध १० बार और नौलिकर्म १ मिनट करें। तदुपरान्त आसनोंका अभ्यास करें। यदि शरीरमें अशक्ति अधिक हो तो लेटे रहकर आरामसे जितना भी आसनाभ्यास किया जा सके, उतना ही करें; अर्थात् एकपाद उत्त्थानपादासन २ मिनट; उत्त्थानपादासन १ मिनट, एकपादपवनमुक्तासन १ मिनट, पवनमुक्तासन १ मिनट; भुजगासन १ से २ मिनट, नौकासन (पहले, दूसरे और तीसरे प्रकारसहित) ३ मिनट तक आरामसे करते रहें। उपर्युक्त साधनासे शरीरमें समुचित शक्ति आ जानेके पश्चात् निम्नलिखित आसनोंका अभ्यास करें:—उर्ध्व सर्वांगासन २ से ४ मिनट। सर्वांगासन १ से २ मिनट। एकपाद-भुजासन आध मिनट। द्विपाद-भुजासन आध मिनट। लोलासन एक मिनट।

आहार-व्यवस्था

प्रातःकाल उठकर और दन्तधावन आदिसे निवृत्त होकर १४ औंस जलमें एक छोटे चम्मच भर शहद (मधु) मिलाकर पी जायें। आसनादिके अभ्याससे निवृत्त होनेके पश्चात् मोसम्बी के ४ औंस रस में २ औंस गरम जल तथा थोडा-सा जीरा और सोंठ का चूर्ण डालकर पियें। दोपहर में भोजन के समय में हरी पत्तियां—यथा मूलीकी पत्तियां, चौलाईकी पत्तिया, पालक की पत्तियां, पुनर्नवाकी हरी पत्तिया—अल्प मात्रामें खायें। अभ्यास हो जानेपर अधिक मात्रामें भी खा सकते हैं। भोजनमें तेल, हींग, तली हुई वस्तुयें, मिठाइया, खटाई आदि वर्ज्य है। दाल, भात, रोटी, शाक आदि का सेवन उचित होगा। आटेमें भूसा (चोकर) भी अधिक परिमाण में रहे। भोजन के पश्चात् सूखे अथवा हरे अजीर, काली द्राक्ष, और छिलकारहित पपीता (पेड़ में पका हुआ) खायें। ४ बजे पावभर गाय अथवा

बकरी के दूध में आधा पाव पानी, थोड़ा-सा वायविडंग और ८ दाने काली द्राक्ष के छोड़कर गरम करें। तत्पश्चात् एक बर्तनसे दूसरे वर्तनमें तबतक हिलायें, जबतक उसमें फेन उत्पन्न हो न जाये। हिलाने से पहले उसे श्वेत वस्त्र से छान लेना चाहिये। फिर उस दूध को शनैः-शनैः चम्मच से पियें। इतना दूध पीनेमें कम से कम १५ मिनट लग जाने चाहिये। सायंकाल ७ बजे अंजीर, काली द्राक्ष, पपीता और आमों की ऋतुमें आम यथोचित मात्रामें लें। अधिक भूख लगे तो चौलाई, मेथी, मूली, पालक आदि की भाजियों को उबालकर और उसमें आवश्यकतानुसार नमक, जीरा मिलाकर खायें। रातमें दूध पीनेका निषेध है; पानी पीते रहे। कफ का प्रकोप हो तो रात में गरम पानीका उपयोग करें।

विशेष सूचना

जिन लोगोंको खांसी, बलगम, नाकमें पानी आते रहना आदि लक्षण हों; उन्हें उपर्युक्त उपचार के साथ-साथ निम्नलिखित उपचार भी करते रहना चाहिये:—प्रातःकाल स्नानसे पहले वाष्प-स्नान लेना चाहिये। वाष्प-स्नान पहले दिन ५ मिनट लें; फिर प्रतिदिन १।१ मिनट बढ़ाते हुए २० मिनट तक बढ़ायें। वाष्प-स्नान के पश्चात् तुलसी की ३० पत्तिया, पुदीना की २० पत्तिया हरी चायकी दो पत्तियां, काली मिर्च २, और थोड़े-से गुड़ को जलके साथ आगपर अच्छी तरह उबाल लें और छानकर २ से ४ औंसकी मात्रामें साधारण गरम पी लें। तत्पश्चात् श्वेत वस्त्र और कम्बलसे गलेके नीचेके समग्र शरीरको ढक कर लेट जायें। शिरपर शीतल जलसे भिगोया हुआ वस्त्र रख लें। पहले दिन ५ मिनट लेटे रहें। दूसरे दिन ६ मिनट; तीसरे दिन ७ मिनट—इस प्रकार प्रतिदिन १।१ मिनट बढ़ाकर २० मिनटतक लेटे रहनेका अभ्यास करें। ६।७ मिनटके अभ्यासके पश्चात् शरीरमें पसीना खूब छूटेगा; शरीर हलका जान पड़ेगा; भूख बढ़ेगी; स्फूर्ति में भी वृद्धि होगी; कफ पिघल-पिघल कर पसीने तथा मल-मूत्रके द्वारसे बाहर निकल जायेगा। रोगी कुछ दिनोंमें यह देखकर आश्चर्यचकित होगा कि उसकी मलमूत्र-त्यागकी क्रिया उचित रूपमें काम करने लगी है और कफके स्थानपर शरीरमें रस, रक्त, मांस, मज्जा, मेद, अस्थि (हड्डी), वीर्य अथवा रजस्‌का पुनर्निर्माण उचित रूपसे होने लगा है।

यदि किसीके शरीरमें मेद अधिक होगा तो वह उचित स्थितिमें आ जायेगा। यदि शरीर दुर्बल और कम वजनवाला होगा तो यथोचित सम परिमाणमें पहुंचनेतक निरन्तर बढता रहेगा। नींद भी अच्छी आयेगी।

मानसिक उपचार

रातमें शयन-कालमें और प्रातःकाल जागनेपर पद्मासन, सिद्धासन अथवा सुखासनपर बैठकर मन ही मन विचार करें कि "मेरी प्रकृतिमें उत्तरोत्तर सुधार हो रहा है। श्वासोच्छ्वासकी गति उचित रूपसे चल रही है। फेफड़ों के छिद्र उचित ढगसे काम कर रहे हैं। श्वास-नलिकामें पूर्ववत् विकासयुक्त बल बढ़ रहा है। पाचन-शक्ति प्रबल हो रही है। अब मैं निराशामय जीवनसे निकल कर आशामय जीवनमें प्रवेश कर रहा हूँ। प्राकृतिक एवं यौगिक चिकित्साके द्वारा मेरे नवीन जीवनका निर्माण हो रहा है। मेरे मनमें अब निराशापूर्ण भावनायें टिक नहीं सकतीं। मैं शरीर और मनसे नीरोग और सशक्त बन रहा हूँ।"

प्राणायाम

८ दिनतक दो वार कपालभाति करें। (कपालभातिकी विधि मलशोधन-कर्ममें देखें)। प्रातःकाल आसनों के अभ्याससे निवृत्त होकर कपालभाति करें। ८ दिनके पश्चात् प्रातःकाल दो वार और सायकाल पेट खाली रहनेपर दो वार करें। ८ से १५ दिनतक ४ वार प्रातःकाल और ४ वार सायंकाल करें। १५ दिनके वाद अनुलोम-विलोम प्राणायाम १८ दिनतक दो वार करें। १८ दिनके पश्चात् कपालभाति और अनुलोम-विलोम प्राणायाम बन्द करके प्रातः- सायं २।२ वार भस्त्रिका प्राणायाम नं. १ करें। ८ दिनके पश्चात् ३।३ वार करें। १५ दिनके पश्चात् भस्त्रिका प्राणायाम नं. १ दो-दो वार और भस्त्रिका प्राणायाम नं २ दो-दो वार करें। विशेष शीतकी ऋतु हो तो भस्त्रिका प्राणायामके साथ सूर्यभेदन प्राणायाम ३।३ वार करें। (प्राणा-

यामकी विधि, समय और तरीका 'उमेश-योग दर्शन' के द्वितीय खण्डमें पढ़कर समझ लें।) प्राणायामसे मनोबल बढ़ता है। नाड़ियां शुद्ध होती हैं और अनेक प्रकार के भयानक रोगों से छुटकारा मिलता है। यह अध्यात्म-ध्यासंगियोंके लिये अत्यन्त लाभप्रद और जीवनको उच्च दिशा की ओर अभिमुख करनेवाला प्रयोग है।

सूर्य-किरण-चिकित्सा

पीले रंगकी बोतलका पौन भाग शुद्ध जलसे भरकर लकड़ीके टुकड़ेपर दिन १० बजे धूपमें रख दें और चार बजे दिनमें उठा लें। बोतलका मुंह बन्द रखें। ४ बजे बोतल को धूपसे उठा लेने के बाद उसे ऐसे स्थानपर रखें, जहां उसपर बाहरी प्रकाश पड़ न सके। बोतल का जल शीतल हो जाने के पश्चात् १ से २ औंस तक; अर्थात् आयु, शक्ति, ऋतु और लाभ के अनुसार १ से २ औंस तक पी लें। दिन में ३।३ घण्टे के अन्तर पर जल पीते रहें और चार बार पियें। इसी विधिसे नारंगी रंग अथवा लाल रंग की बोतल में सूर्य-किरण-चिकित्सा की विधिसे तैयार किये हुए जल को दिनमें ४ बार प्रकृति, आयु, ऋतु और लाभ के आधारपर आध औंससे डेढ़ औंस तक पियें। एक दिन लाल बोतल के जलका और दूसरे दिन पीली बोतल के जल का उपयोग करें। जब तक रोगका प्रभाव अधिक रहे, तबतक दिनमें दो-दो घण्टे के अन्तर पर दोनों बोतलों का जल उपरिनिर्दिष्ट मात्रा में ले सकते हैं। कफके काबूमें आ जानेपर लाल बोतल के जल को बन्द कर देना चाहिये अथवा कम मात्रामें ग्रहण करना चाहिये। इसका परिणाम यह होगा कि कफका प्रवाह कम होगा; शुद्ध रक्त की वृद्धि होगी, स्फूर्ति भी बढ़ेगी; परन्तु कब्ज हो जाने की सम्भावना रहेगी। दमाके रोगी को कब्ज रहना हितकर नहीं। क्योंकि कब्ज से दमा बढ़ जाता है, अतः कब्ज से बचे रहनेका प्रयास हमेशा करते रहें। वात, पित्त और कफ को समान स्थितिमें लाने के लिये पीत रंगकी बोतल के जल का उपयोग बताया गया है। ध्यान रहे कि सूर्य-बिम्ब अनेक विटामिनों (पोषणतत्त्वों) से भरपूर है। इन पोषणतत्त्वों को हम सूर्य-किरणों से तैयार किये हुए जल के द्वारा, प्रातः-सायं सूर्य-किरणों के सामने बैठकर, फलों को ग्रहण करने में असमर्थ लोगों के शरीरमें बिजली के इलाज द्वारा हम जीवनतत्त्वों को यथेष्ट मात्रामें पहुंचा सकते हैं और रोगका निवारण कर सकते है। भारत-देशमें दमे का

रोग व्यापक रूपमें फैला हुआ है। वयस्क स्त्री-पुरुषोंकी तो बात ही जाने दीजिये, बालक भी इस रोगसे पीड़ित पाये जाते हैं। क्षय, मधुमेह, हृदयविकार, केन्सर आदि की तरह दमेका रोग भी व्यापक बनता जा रहा है। इसी कारण यहां इस रोगके कुछ प्राकृतिक उपचार बताये गये हैं। दमे के और भी अनेक प्रकार के इलाज हैं, परन्तु ग्रन्थ-विस्तार के भय से यहां उन सबका वर्णन सम्भव नहीं।
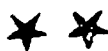
१३-मूर्च्छा रोग

वीर्यदोष, वायुदोष, मल-मूत्रादिका वेग रोकनेसे, किसी विशेष अवयवमें चोट या आघात लगनेसे, शरीरके सप्तधातुके क्षीण होने अथवा निर्बल होनेसे, चिन्तासे, शराब, गांजा, तम्बाकू सिगरेट आदिके सेवनसे, अनिद्रा रोगसे, क्रोध और मोहसे, चित्तविकार और ऐसे ही अन्य अनेक कारणोंसे मूर्च्छा रोग हो जाता है।

मूर्च्छाका पूर्व-रूप

बारबार जंभाई आते रहना, मनमें ग्लानि उत्पन्न होना, चेतनाशक्ति अल्प मालूम होना, चक्कर आना, अचानक हाथ-पैरोंके अकड़ जानेसे जमीन पर गिर जाना, मुंहमें फेन आना, आंखोंका घूमते रहना, हाथ-पैर आदि अवयवोंका लकड़ीके समान शुष्क और कठोर हो जाना, श्वासोच्छ्वासकी गति अधिक बढ जाना अथवा मन्द पड़ जाना; काम करते-करते सिर भारी हो उठना और सोनेकी इच्छा होना, रास्तेमें चलते चलते अचानक गिर जाना और बेसुध हो जाना आदि लक्षण प्रायः प्रकट होते रहते हैं। यह रोग माता-पिताके रजस् और वीर्यदोष तथा अतिमैथुनसे भी उत्पन्न होता है। धन्धा-नौकरीमें असफलता मिलने, अप्रत्याशित हानि होने तथा मानसिक आघात पहुंचनेसे भी यह रोग हो जाता है।

आसनोपचार

शरीरमें साधारण भी शक्ति हो तो शीर्षासन अवश्य ही करना चाहिये। पहले १ मिनट और तदुपरान्त प्रतिदिन १। १ मिनट बढ़ाते हुए आध घण्टेतक अभ्यास बढाना चाहिये। शवासन ५ मिनट। एकपाद उत्थानपादासन २ मिनट। द्विपाद उत्थानपादासन १ मिनट। विपरीतकरणी १ से ४ मिनट। सर्वांगासन १ से २ मिनट। चक्रासन १ मिनट। उष्ट्रासन १ मिनट। पादांगुष्ठासन १ मिनट। वीर्यस्तम्भनासन आध मिनट। सुप्तउर्ध्वहस्तासन १ मिनट। नौकासन १ मिनट।

उपर्युक्त आसनोंका अभ्यास करते समय यदि अशक्ति और थकावटका अनुभव हो तो जितने समयतक सरलतासे किया जा सके; उतने ही समयतक अभ्यास करें और शक्ति-संवर्धनके साथ-साथ तदनुसार अभ्यासका समय भी बढ़ाते रहें।

प्राणायाम-चिकित्सा

अनुलोम-विलोम प्राणायाम ३ बार और उज्जायी प्राणायाम ४ बार करें। (प्राणायामकी विधि 'उमेश-योगदर्शन' के द्वितीय खण्डमें पढ़ें।)

आहार-चिकित्सा

खटाई, मिठाई, कषाय और लवण (नमकीन), लालमिर्च आदि मसालोंका उपयोग बहुत कम करना चाहिये। यदि हो सके तो इन्हें बिलकुल त्याग देना चाहिये। प्रातःकाल आसनादिके अभ्याससे निवृत्त होनेके पश्चात् गाय अथवा बकरीके पावभर दूधमें शंखावलीका चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये। भोजनके समयमें गेहूंकी रोटी अथवा बाजरे की रोटी अथवा गेहूं, बाजरा और ज्वार की मिलावटकी रोटी अथवा जौ और गेहूं की मिलावटकी रोटी, छिलकेसहित मूंगकी दाल, भिण्डी, परवल, दोनों जातिकी तरोई, दूधी (लौकी), कोहला (पेठा) अथवा सूरनका शाक उपादेय होगा। उपरिनिर्दिष्ट वस्तुओंमें यदि कोई वस्तु अप्राप्य हो तो भी कोई चिन्ता की बात नहीं। मीठी छाछ, कचुम्बर (सलाद) एवं अनेक प्रकारकी पत्तेवाली भाजियोंका उप-

योग हितकर है। भोजनके पश्चात् द्राक्ष, सेव (सफरचन्द), दाडिम, मोसम्बी आदिमें से जो भी फल सुलभ हों, उन्हें खाना चाहिये। ४ बजे अपराह्नमें पावभर दूधमें एक चम्मच ब्राह्मी घृत मिलाकर पी जायें। रातमें ७॥ से ८ बजे तक भोजन कर लें। एक दिन मूंग की दाल की खिचडी और एक दिन तुवरकी दाल की खिचडी छाछके साथ भोजनमें ग्रहण करना चाहिये। सायंकाल पत्तीवाली भाजियोंका उपयोग अधिक मात्रामें करना चाहिये। दिनभर में पानीके स्थानपर यव (जौ) से तैयार किया हुआ जल (वार्लीका पानी) पीना चाहिये। प्याजका उपयोग भी आवश्यक है। यदि पित्त प्रकृति हो तो सफेद और कफ या वातप्रधान प्रकृति हो तो लाल प्याज लेना अनुकूल होगा।

मानसिक विचार

प्रातःकाल स्नान करने के बाद पासमें धूप-दीप आदि रखकर पद्मासन अथवा सुखासन लगाकर बैठ जायें एव आखें बन्द कर मन ही मन विचार करें कि "मेरा स्वास्थ्य दिनानुदिन सुधर रहा है। शारीरिक अवयवोंकी शक्ति बढती जा रही है। मन प्रफुल्ल हो रहा है। जीवनमें रौनक आ रही है। ससार में मेरा जन्म रोगी बनने के लिये नहीं हुआ; अपितु रोगोंका प्रतिरोध कर निरामय रहनेके लिये ही जगत्में मेरा अस्तित्व है। अब मैं आशापूर्ण जीवनमें प्रवेश कर चुका हूं। मेरे शरीरका प्रत्येक अवयव सुन्दर, सुदृढ, सशक्त एवं विकासवान् बन रहा है।" कमसे कम ५ मिनट और अधिक से अधिक ३० मिनटतक उपरिलिखित दिव्य विचारोंका मनन अवश्य करें—उनमें तन्मय हो जायें। अन्य विचारोंका आक्रमण होनेपर उन्हें मनसे दूर भगाते रहें। इसी प्रकार रात में सोते समय भी विचार करें। यदि मन ग्लानि, चिन्ता, क्रोध, क्लेश आदि दुर्भावनाओंसे अधिक आक्रान्त हो तो जहांपर अध्यात्मविषयक व्याख्यान, वाद-विवाद या चर्चा होती हो; वहा जाकर बैठें। इसके अतिरिक्त महापुरुषोंके जीवन-चारित्र तथा उपदेशोंका अध्ययन भी अवश्य करें। नन्दन निकुंज, हरी-भरी शस्यश्यामला भूमि और फल-फूलमण्डित पेड़-पौधों के बीच पहुंचकर गहरे श्वासोच्छ्वास की क्रिया करें। अपने घरमें गुरु और महात्माओंके चित्र रखें और उनकी ओर मनको वारवार पहुँचाकर दिव्य जीवनकी प्रेरणा प्राप्त करें। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि यह कार्यक्रम एक दिन आपको उच्च स्थितिपर पहुँचा देगा।

मालिश (तैलाभ्यंग)

प्रतिदिन प्रातःकाल आध घण्टेतक अपने हाथोंसे समग्र शरीर की मालिश करें अथवा अन्य किसीसे करायें। बादाम का तेल, नारायण तेल, मालकांगनीका तेल, खोपरे का तेल, तिल का तेल, शीतकालमें सरसों का तेल, रामतीर्थ ब्राह्मी तेल आदि में से जो भी अनुकूल हो, उससे समग्र शरीर की मालिश करनी चाहिये। मालिश करने के आध घण्टे के पश्चात् शीतल जलसे स्नान करें। यदि शीतल जल प्रकृतिके अनुकूल न हो तो कुछ दिनतक गरम जलसे स्नान कर सकते हैं। यदि रोग अधिक पुराना हो तो ३ महिनेतक लगातार मालिश का यह प्रयोग करते रहें। यदि रोग नया हो तो २१ दिनतक करना चाहिये। इस प्रयोग को निरन्तर करते रहना भी हानिकर नहीं; बल्कि अधिक लाभ पहुंचेगा।

सूर्य-किरण-चिकित्सा

ब्लू अर्थात् नीले रंगकी बोतलका पौन भाग जलसे भरकर सवेरे १० बजे सूर्य-किरणोंके सामने लकड़ीके टुकड़ेपर रख दें। हरे, पीले और लाल रंगकी बोतलोंमें भी उपर्युक्त विधिसे जल तैयार करें। प्रातःकाल ८ बजे नीले रंगकी बोतलका १ से २ औंस जल पी जायें। १०॥ बजे हरे रंगकी बोतलका, १॥ बजे नीले रंग की बोतलका जल उपरिनिर्दिष्ट परिमाणमें पियें। जिसके शरीरमें रक्तकी मात्रा अल्प हो; ऐसे लोग सवेरे ११॥ बजे, दोपहर ३ बजे १ से २ औंस लाल रंगकी बोतल का जल पियें। जिन लोगोंको मलबद्धता हो; वे प्रातःकाल उठते ही दन्तधावनके पश्चात् १ से २ औंस प्रातःकाल और रातमें सोते समय पीले रंगकी बोतलका जल पियें। यह सूर्य-किरण-चिकित्सा अनेक प्रकारकी है। फिर भी, मूर्च्छा रोगियोंके लिये यह प्रयोग अति लाभदायक है। चातुर्मास (वर्षाकाल) में कदाचित् सूर्यकी किरणोंमें जल तैयार किया जा न सके तो जब कभी सूर्यकी किरणें सुलभ हों, तभी ३।४ दिनके लिये जल तैयार करके रख लें और उसका उपयोग करते रहें।

卐 卐

१४ केन्सर (अर्बुद–नासूर)

मानव-शरीरका जो अवयव स्वभावतः कमजोर होता है, उस अवयवके द्वारा सप्तधातुजन्य विकारयुक्त विजातीय द्रव्य बाहर निकलनेका प्रयास करते हैं, उदाहरणार्थ जुकाम, मूलव्याधि (बवासीर), फोडा–फुन्सी, खुजली आदि अनेक रोगोंके रूपमें शरीरगत विकार स्पष्टतया प्रकट होते हैं, उसी तरह केन्सर रोग उत्पन्न कर प्रकृति शरीरमें भरे हुए विजातीय द्रव्योंको विविध अंगों–गला, गुर्दा, छाती और अन्य अंगों–द्वारा निकाल बाहर करनेका प्रयत्न करती है।

केन्सर होने का कारण

तपकीर (सुंघनी) सूंघना, बीडी, सिगरेट, चुरुट आदिका धूम्रपान, गुडाकू पीना, तम्बाकू खाना, गाजा–भांग, मांस–मछली, शराब आदिका उपयोग, सोडा–लेमन आदि पेय पदार्थ पीते रहना, पूडी, पकौडी, भजिया, सेव, गाठिया आदि खाना, दुर्गन्धयुक्त गन्दे स्थानोंमें रहना, शरीर की स्वच्छता उचित रूपसे न रखना, गन्दे कपडे पहनना, विकारयुक्त जल का सेवन आदि अनेक कारणोंसे यह घातक रोग मानव–शरीरमे लग जाता है।

लक्षण

पाचनशक्तिका मन्द पड जाना, रक्तमें अशुद्धता, खाने–पीनेमें अरुचि, रोगाक्रान्त अंगमें फोडेकी जैसी वेदना होना (वेदना कभी होती है और कभी नहीं भी होती,) गलेमें केन्सर हो तो अन्नग्रहणमें कठिनाई होना, रोगके अधिक पुराने हो जानेपर पानी पीनेतकमें तकलीफ होना, शरीर में बेचैनी–सी मालूम पडना और घबराहट के लक्षण प्रकट होना आदि इसके प्रमुख लक्षण हैं। यकृत का केन्सर हो जानेपर दाहिने स्तनस्थानके निचले भागमें पीडा मालूम होती है। शरीर दिन–प्रतिदिन शिथिल और

क्षीण होता जाता है। स्पर्श करनेपर कठिन और विषम प्रतीत होता है। कभी-कभी ज्वर भी आ जाता है और कभी-कभी पित्तविकार भी हो जाता है

आसन-चिकित्सा

जहा शुद्ध और मुक्त वायु आता हो और जिस स्थानपर हरे-भरे वृक्ष हों एवं सुगन्धित पुष्पोंसे पेड़-पौधे लदे हों; ऐसे दिव्य स्थानपर निवास करने और आसनाभ्यास करने से केन्सर का रोगी पर्याप्त राहत और लाभका अनुभव करता है। उपरिलिखित वर्ज्य और विकारयुक्त आहारों एवं जल का तुरन्त ही त्याग कर देना चाहिये। शवासन के समयमें श्वासको ५ बार लम्बा खींचना और छोड़ना चाहिये। तत्पश्चात् १ मिनटका विश्राम लेकर अर्धमत्स्येन्द्रासनका पहला अपूर्ण प्रकार २ मिनट, अर्धमत्स्येन्द्रासन का दूसरा अपूर्ण प्रकार २ मिनट, कूर्मासन १ मिनट, वज्रासन २ मिनट, सुप्तवज्रासन १ मिनट, एकपादपवनमुक्तासन २ मिनट, पवनमुक्तासन १ मिनट और वीरासन २ मिनट करें। विपरीतकरणी आसन केन्सर रोग के लिये विशेष लाभदायक है; इसे ३ से ६ मिनट करना चाहिये। सुप्तधनुरासन आध से १ मिनट किया जाये।

आहार-चिकित्सा

इस रोगके निवारणके लिये आहारकी ओर विशेष रूपसे आधार रखना उचित है, अर्थात् आहार-पदार्थ द्रव (पतला), जीवनी शक्तिसे भरपूर, पाचनमें हलका एवं मल-मूत्रके लिये अनुकूल होने चाहिये। प्रातःकाल पानीके साथ मोसम्बीका रस, १० बजे बकरीका पावभर दूध, १२ बजे मेथी तथा बथुआकी भाजी जलमें उबालकर उसमें थोड़ा-सा जीरा, सेंधा नमक और जरा-सा नींबू मिलाकर ८ औंसतक लेना चाहिये। दिन २ बजे बकरीका दूध पावभर, ४ बजे पानी मिला मोसम्बीका रस,

६ बजे (सायं) पालक और चौलाईकी भाजी, रात ८ बजे मूगको पानीमें उबालकर और उसमें थोड़ा-सा गुड़ मिलाकर खाना चाहिये। यदि खानेमें कठिनाई प्रतीत हो तो अच्छी तरहसे पतला बनाकर उसे पी जाना चाहिये। जबतक रोग का दबाव कम न हो, तबतक इसी पथ्यके आधारपर रहना होगा। तत्पश्चात् चावल, हरी तरकारी, तुवरकी दाल, मूग की दाल, सलाद (मिश्रण) आदिका उपयोग किया जा सकता है। पथ्य के दिनोंमें विशेषतः मीठी द्राक्ष (अंगूर), छिलकेसहित पपीता, इलायची केला, अंजीर आदि ले सकते है। दिनभरमें ५। ६ गिलास पानी पीना आवश्यक है।

मानसोपचार

प्रातःकाल बिछौनेसे उठते ही हाथ-मुंह धोकर बिछौनेपर बैठ जायें और निम्नलिखित विचारोंका वारंवार उच्चारण करते रहें:-"मेरे शरीर के जिस अगमें रोग व्याप्त है; वह अंग नीरोग, वेदनारहित बनता जा रहा है। अब मैं रोगसे मुक्त हो रहा हूँ। (महिलाओं को 'रोग से मुक्त हो रही हूं' कहना चाहिये) अबतक मेरा शरीर दुर्बल और शक्तिहीन प्रतीत होता था। किन्तु अब वह स्थिति नहीं रही। आज से मेरा शरीर बलवान्, चैतन्ययुक्त और कान्तिमय बन रहा है एव सप्तधातु निर्विकार होकर विशुद्ध रूपमें परिवर्तित हो रहे है। मेरा जिवन अब नवीन आशा एव विश्वासकी किरणोंसे जगमगा उठा है।" इस प्रकारके मनोबल प्रदायक विचारों को कमसे कम ५१ बार स्मरण करना चाहिये। कैन्सरके रोगियोंका मन निरन्तर भयभीत और निराशासे भरपूर रहता है। उपर्युक्त शक्तिदायक विचारोंमें श्रद्धापूर्वक तन्मय रहनेसे ऐसे रोगियोंकी मानसिक शक्ति उन्नत होगी, बुद्धि में पवित्रता और स्थिरताका सचार होता जायेगा एव जीवन-दीप के शीघ्र ही बुझ जाने की जो चिन्ता घेरे रहती थी, वह पूर्णतया दूर हो जायेगी।

सूर्य-किरण-चिकित्सा

सूर्य के सामने आसन लगाकर बैठ जायें और शरीरके जिस भागमें केन्सरकी वेदना हो, उसपर हरे रंगके कांच द्वारा सूर्यकी किरणें डालें। दूसरे दिन ब्लू (नीले) रंगके कांचसे इसी प्रकार सूर्य-किरणें पीड़ित अंगपर डालें। पहले दिन ८ मिनट और दूसरे दिनसे २।२ मिनट बढ़ाते रहकर २० से ३० मिनटतक सूर्य-किरणें लें। यदि पेट साफ न रहता हो तो पीले रंगकी बोतलमें किरणोंके द्वारा तैयार किया हुआ जल ले सकते हैं अथवा पीले रंगके कांचके द्वारा पेटपर सूर्य-किरणें ली जा सकती हैं। समय ऊपर बताये अनुसार ही है। यदि दस्त अधिक आने लगें तो समय की मर्यादा कम करनी पड़ेगी और यदि बैठकर सूर्यकी किरणें ली जा न सकें तो लेटकर भी ले सकते हैं। शरीरपर कोई वस्त्र रहना न चाहिये; मात्र लंगोट या नेकर पहन सकते हैं। यह भी सावधानी रखनी पड़ेगी कि खुली आंखोंपर सूर्य की किरणें पड़ न सकें।

जलोपचार

कड़वी नीमके पत्तों और लौंगलीके पत्तोंको जलमें उबालें और इस जलको कपड़े से छानकर ३० नम्बरके गेल्वनाइज (टीन) के टबमें भर दें। जल टबके आधे भागतक भरा हो। पत्तियोंकी मात्रा यही है कि उनसे जल का रग बदल जाये। यद्यपि कुछ और वनस्पतियां जलमें डालनी पड़ती है; परन्तु वे कितनी मात्रामें हों और किस आयु तथा कौन-सी प्रकृतिके प्राणीके लिये उनका उपयोग लाभकर या हानिकर होगा-इसकी उचित जानकारी किसी तज्ञकी सलाहसे प्राप्त किये विना उनका उपयोग किया जा नहीं सकता। अस्तु जलपूर्ण टब में आरामकुरसीकी तरह बैठ जायें। पैर टबसे बाहर रहें और पीठके आधेसे ऊपरका भाग बाहर रहे। तत्पश्चात् दाहिने हाथको दाहिनी ओरसे बाईं ओर पेटके चारों ओर घुमाते रहें। पहले दिन ७ मिनट। दूसरे दिनसे २।२ मिनट बढ़ाते हुए १५ से २५ मिनट कटिस्नान करें। इस कटिस्नानसे शरीरके विषाक्त तत्त्व बाहर निकल जाते हैं। कटु नीमकी पत्तियों में चमत्कारपूर्ण लाभ पहुंचानेकी शक्ति विद्यमान है।
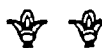
१५ मूलव्याधि (अर्श–बवासीर)

यह रोग गुदाकी त्रिवली (गुदाकी आंतोंकी परतें ४॥ अंगुल लम्बी है) में होता है। वातादि दोष त्वचा, मास, रुधिर और मेदको दूषित बनाकर गुदा में मासके अकुर उत्पन्न कर देते हैं। इसीको मूलव्याधि, अर्श अथवा बवासीर भी कहा जाता है। तीखी, रुक्ष, कड़वी, कषैली आदि वस्तुयें अधिक मात्रामें खानेसे, मदिरा–पान करनेसे, अधिक व्यायाम करने से, अतिशय शोकाकुल होनेसे, धूपमें अधिक समयतक रहनेसे वातमूलक बवासीर हो जाती है। इसी प्रकार अन्य कारणोंको लेकर पित्त कुपित हो उठता है; फलतः पित्तार्श रोग उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रक र कफार्श का जन्म भी विशेष कारणों को ले कर हो जाता है। इस रोग की अवस्था में मल–विसर्जन करते समय गुदा–द्वारमें अत्यधिक वेदना होती है। बड़ी आंत के नीचेके द्वार (मुख) के पास मल–विसर्जन के समय मल शेष रह जाता है और गुदा–द्वार के ऊपरी भागमें मल अवरुद्ध रहता है। यह एकत्रित मल जब सडता है, तब उष्णता प्रधान अधिक हो जाता है और दुर्गन्धियुक्त बन जाता है। नित्यके भोजनसे बननेवाले मलके बाहर निकलनेमें भी यह मल बड़ी बाधा उत्पन्न करता है। कदाचित् मल–विसर्जन हो, तो भी सम्पूर्ण रूपमें नहीं हो पाता। इसी दुर्गन्ध-पूर्ण मलसे उत्पन्न उष्णताके परिणामस्वरूप गुदाकी त्रिवलीके भागमें सूजन आ जाती है और आसपासका रक्त भी सूजनके स्थानपर जम जाता है। सूजनके स्थानकी त्वचा पतली पड़ जाती है; फलतः शोथ (सूजन) के स्थानपर छिद्र हो जाते है और इन छिद्रोंके मार्गसे रक्तस्राव प्रारम्भ हो जाता है। कभी–कभी रक्तस्राव न होनेपर भी मल–विसर्जनकालमें अतीव वेदना होती है; अर्थात् बवासीर (मूलव्याधि) के अनेक कारण होनेपर भी एक कारण मलबद्धता भी है।

आसन–चिकित्सा

नवलिफर्म आध मिनट। पूर्णपद्मासन १ मिनट। त्रिकोणासन १ मिनट। आकर्ण (आकर्ण) धनुरासन १ मिनट। मत्स्यासन २ मिनट। नौकासन १ मिनट। लोलासन १ मिनट। हंसासन आध मिनट। शवासन ५ मिनट। अश्विनी मुद्राका अभ्यास भी आवश्यक है। गुदाद्वार के यथासम्भव संकोचन और प्रसारण को अश्विनी

मुद्रा कहते हैं। प्रातःकाल आसन करने के पश्चात्, मध्यान्हकाल, अथवा सायंकाल-किसी भी समय अथवा तीनों कालमें ५ मिनटतक अश्विनी मुद्रा की जा सकती है। यदि मलावरोध का विकार हो तो वस्तिकर्म भी करें। बस्तिकर्मके समय में एक पाव मीठी छाछ मलद्वारसे खींचें। तदुपरान्त नवलिकर्म करें और नवलिकर्म के पश्चात् खींची हुई छाछ को मलद्वारसे बाहर निकाल दें। यह क्रिया ८ से ९ दिनतक करें।

आहार-चिकित्सा

रातमें १ तोला मेथीके दानों को भिगो रखें। प्रातःकाल उन्हें पीस कर और उनमें थोड़ा-सा गुड़ मिलाकर खा जायें। यह प्रयोग कमसे कम २१ दिनतक करें। यदि मिल सके तो मेथीके कोमल हरे पत्तोंकी भाजीको पीस कर और उसमें थोड़ी-सी मिश्री मिलाकर पी जाना चाहिये। दोपहरमें दाल, भात, रोटी, शाक आदिका भोजन कर सकते हैं; परन्तु भोजनके समयमें मूली पत्तेसहित खाना अनिवार्य है। ४ बजे गन्नेका रस ८ से १२ औंसतक लेना चाहिये। दिनमें दो बार गायका दूध पियें। रातका भोजन अल्प मात्रामें हो-विशेषतः कच्चे आहारका उपयोग हो। खटाई, मांस, मदिरा, सिगरेट, बीड़ी, तम्बाकू आदि वर्ज्य है।

मूलव्याधि (बवासीर) में यदि रक्त गिरता और प्रकृति पित्तप्रधान हो तो दिनमें दो बार नीबूका शर्बत पी लें। शर्बतमें तख्मारिया को कुछ देरतक पानीमें फुला रखें। यह शीतल पेय है। अतः शीतलता पहुचनेपर दो-तीन दिनमें रक्तस्राव बन्द हो जायेगा। सम्भव है कि रक्तस्रावके समयमें तख्मारियाका उपयोग लगातार करते रहनेसे शरदी लग जाये; ऐसी स्थिति उत्पन्न होनेपर तख्मरियाका उपयोग बन्द कर दें।

मानसोपचार

प्रातःकाल स्नान-सन्ध्या कर लेनेके पश्चात् किसी अनुकूल आसनपर बैठकर मन ही मन विचार करें कि "मेरे गुदा-द्वार बड़ी आत आदि अवयव सशक्त हो रहे हैं और अपना कार्य भी उचित रूपमें कर रहे हैं। उनकी कार्य-शक्ति दिनपर दिन बढ़

रही है। प्रतिदिन मूलव्याधिका कष्ट कम हो रहा है। मल-विसर्जन उचित ढंगसे हो रहा है। शरीरमें नवीन बल, नवीन स्फूर्ति और नवीन चैतन्यका प्रादुर्भाव हो रहा है। मन बलवान् तथा तेजस्वी बन रहा है। दुर्बल विचार भाग रहे हैं तथा सबल विचार नवीन आशा एवं विश्वासका संचार कर रहे है। दुःख और निराशा की उलझनोंसे मुक्त होकर अब मै सुख तथा आशामय जीवन में प्रवेश कर रहा हूं।

सूर्य--किरण--चिकित्सा

ब्लू रंगकी बोतलमें सूर्यकिरणों द्वारा तैयार किये हुए जल में श्वेत वस्त्रका टुकडा भिगोकर कन्धस्थान और गुदा-द्वार पर आध घण्टेतक रखें। यह प्रयोग २१ दिनतक करें। नारगी रगकी बोतलमें तैयार किया हुआ और बादली रंगकी बोतलमें सूर्य-किरणों द्वारा तैयार किया हुआ जल दिनमें २।२ घण्टेके अन्तरपर दो-दो औंस पीते रहें।

जलोपचार

गेल्वनाइज टीनके टब का आधा भाग जलसे भर दें और उसमें जिस तरह आरामकुरसीपर बैठते है, उसी तरह बैठ जायें। तदुपरान्त दाहिनी ओरसे बाईं ओर हाथ घुमाते रहें। पहले दिन ६ मिनट यह क्रिया करें। फिर दूसरे दिनसे दो-दो मिनट बढाते हुए आध घण्टेतक कटिस्नान करें। यदि बावासीर अर्थात् मूलव्याधिका रोग पुराना और कष्टदायक होगा तो कई प्रकारकी वनस्पति औषधियां इस जलमें डालनी पडेंगी; परन्तु रोगी को देखे बिना यह निश्चय करना सम्भव नहीं कि कौन-सी औषधि डालना लाभकर होगा।

मिट्टी का प्रयोग

प्रातःकाल स्नान करने से पहले प्रथम दिन १० मिनट; द्वितीय दिन १२ मिनट—इस प्रकार प्रतिदिन दो-दो मिनट बढ़ाते हुए एक घण्टेतक मिट्टी की पट्टी कन्धस्थानपर रखनी चाहिये। मिट्टीको दूधमें तैयारकर रोटी-जैसी टिकिया बना लें।

● ●

१६ आन्त्रपुच्छ रोग (एपेण्डिसाइटिस)

यह रोग बैठे-बैठे काम करनेवालोंको विशेष रूपसे हो जाता है। खाने-पीनेमें अनियमितता, मलत्याग में असावधानी, दुष्पाच्य या विलम्ब से पचनेवाले आहार-पदार्थों का नित्य उपयोग आदि इस रोग के प्रमुख कारण हैं। यह रोग बच्चे, बूढ़े, जवान—सभी वय के लोगों के पीछे लग जाता है। इसके अतिरिक्त नागरिक जीवन में निरन्तर व्यस्त एवं प्रत्येक प्रकार के व्यायाम से विमुख रहनेवाले स्त्री-पुरुष भी प्रायः इस रोग के चंगुल में फँसे पाये जाते हैं।

पूर्व-लक्षण

नाभिके नीचेके दाहिने भागमें वेदनाका अनुभव होता है। वेदना कभी होती है और कभी नहीं भी होती। छोटी और बड़ी आंतकी सन्धिमें पूँछका आकार बन जाता है और इस स्थान पर रोगोत्पादक रस अथवा वायु भर जाते हैं; फलतः वह स्थान—अंग-भाग—फूल उठता है; वेदना उत्पन्न हो जाती है और कुछ ही महीनोंके बाद प्रभावित अंग अनियमित काम करना प्रारम्भ कर देता है। इसी स्थिति को आन्त्रपुच्छ (एपेण्डिसाइटिस) रोग कहा जाता है।

प्राकृतिक उपचार महत्त्व

इस रोगसे मुक्ति पाने के सम्बन्ध मे किसी प्रकार की चिन्ता करने की तनिक भी जरूरत नहीं। औषधिक या अप्राकृतिक उपचारोंकी दिशामें तन-मन-धनसे बहुत कुछ प्रयास और परिश्रम करने के पश्चात् रोगी यथेष्ट लाभ उठानेसे वंचित रहते हैं, तब निराश होकर वे प्राकृतिक उपचारोंकी शरण लेते हैं। अप्राकृतिक उपचार करनेवाले डाक्टर-वैद्यादि अनेक प्रकार के प्रयोगात्मक इंजेक्शन और औषधियां देनेके बाद भी जब किसी प्रकारका सन्तोषजनक परिणाम निकाल नहीं पाते, तब ऑपरेशन (शस्त्र क्रिया) द्वारा आन्त्रपुच्छको काट देते हैं। किन्तु हमारी पद्धति में ऑपरेशनको स्थान नहीं है। वस्तुतः बिना शस्त्र-क्रिया (ऑपरेशन) के भी इस रोगको प्राकृतिक और यौगिक उपचार-साधनों द्वारा निस्सन्देह मिटाया जा सकता है। प्रायः देखा जाता है कि इस रोगसे पीड़ित स्त्री-पुरुष अप्राकृतिक इलाज करनेवालों के जालमें फँस जाते हैं और अधिकाधिक दुःख एवं हानि उठाते है।

आसनोपचार

आसनोपचार प्रारम्भ करनेपर कुछ दिनतक ऐसे आसनोंका अभ्यास करना चाहिये, जिनसे उदरगत अंग-प्रत्यंगोंको विशेष श्रम उठाना न पड़े और वे श्रान्त या शिथिल न हों। ऐसी सुविधापूर्ण स्थिति प्राप्त करनेके लिये निम्नलिखित आसनोंका अभ्यास उपयुक्त होगा:—जानुशिरासनका पहला प्रकार २ से ३ मिनट। जानुशिरासनका दूसरा प्रकार १ से २ मिनट। जानुशिरासन का तीसरा प्रकार १ से २ मिनट। बद्धपद्मासनका पहला प्रकार १ मिनट। बद्धपद्मासनका दूसरा प्रकार १ मिनट। बद्धपद्मासनका तीसरा प्रकार १ मिनट। बद्धपद्मासनका चौथा प्रकार १ मिनट। एकपाद पवनमुक्तासन २ मिनट। द्विपाद पवनमुक्तासन १ मिनट। भुजंगासन १ मिनट। शलभासन १ मिनट। अर्धमत्स्येन्द्रासन २ मिनट। वक्रासन १ मिनट। ऊर्ध्व सर्वांगासन ३ मिनट। सर्वांगासन १ मिनट। चक्रासन १ मिनट।

उपर्युक्त आसनोंकी साधना करनेपर कुछ दिनों के बाद आन्त्रपुच्छ की वेदना कम होगी; अतः वेदना से राहत पाने के बाद तुरन्त ही उड्डीयान बन्ध १ मिनट और नौलिकर्म १ मिनट करें। लाभ के अनुसार अन्य आसन भी किये जा सकते है।

आहार-चिकित्सा

प्रातःकाल दन्तधावन के पश्चात् १ गिलास पानी पी लेना चाहिये। आसनादि के अभ्यास से निवृत्त होने के पश्चात् गाय अथवा बकरी के पावभर दूध में वायविडंग के ४ दाने डालकर उबालें और तत्पश्चात् दूध को एक लोटे से दूसरे लोटे में हिलाते रहें और जब उसमें फेन उत्पन्न हो जाये, तब धीरे-धीरे अर्थात् घूंट-घूट करके पी जायें। दूध के अभाव में मोसम्बीका रस लिया जा सकता है। ६ औंस रस में २ औंस पानी और आवश्यकतानुसार पिसा जीरा मिलाकर पी लेना चाहिये। दोपहर को भोजन के समय में गेहूं के थूले (चोकर) सहित आटे की रोटी, हाथ के कुटे हुए चावल, मूली की भाजी, मूग की दाल और अन्य हरे शाक लेने चाहिये। भोजन के साथ सालिड (सलाद का मिश्रण), चौलाई, खारी भाजी और मियाद्ब की भाजी लें। अपराह्न ४ बजे फल लें। फलों में सन्तरा, अनन्नास, सफरचन्द, दाड़िम (अनार) आदि फलों को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में ग्रहण करना चाहिये। रातमें मूग की खिचड़ी मीठी छाछ अथवा दूध का उपयोग करना चाहिये और इस बात की पूरी सावधानी रखनी चाहिये मलबद्धता बिलकुल न रहे।

तैलाभ्यंग

तैलाभ्यंगके बारेमें अच्छी तरह ध्यान रखा जाये; अर्थात् विचारपूर्वक उचित ढंगसे तैलाभ्यंग (मालिश) का प्रयोग किया जाये तो इस रोगसे निस्सन्देह मुक्ति मिल जाती है। प्रातःकाल स्नान करनेसे आध घण्टे पहले समग्र शरीर की मालिश करनी अथवा करवानी चाहिये। यदि प्रकृति पित्तप्रधान हो तो आमला अथवा ब्राह्मी तेलका उपयोग करें। कफ और वातप्रधान प्रकृति होनेपर बादामका तेल, नारियलका तेल आदिमेंसे किसी एक तेलसे मालिश करनी चाहिये। विशेष ध्यान रखने योग्य बात यही है कि बिस्तरपर पीठके बल चित लेट जायें और दोनों घुटनोंको ऊपर की ओर मोड़कर रखें। तलुवे जमीनपर रखें। दाहिनी ओरसे बाईं ओर गोलाकार पेटके चारों ओर मालिश करनी चाहिये। पहले दिन १ मिनट, दूसरे दिन १॥ मिनट-इस प्रकार प्रतिदिन आध-आध

मिनट बढ़ाते हुए ३ मिनटतक पेटकी मालिश किया करें। सूजनके मिट जानेपर भी एक महीनेतक मालिश चालू रखें। समग्र शरीरकी मालिश सप्ताहमें तीन बार भी कर सकते हैं, परन्तु पेटकी मालिश तबतक करते रहना पड़ेगा, जबतक रोग पूर्णतया मिट नहीं जाता। मालिशसे बहुतेरे लाभ प्राप्त होते हैं। यदि रोग अधिक पुराना हो तो मालिश के बाद कटिस्नान लेना चाहिये। रोगके निवारणमें यह प्रयोग पर्याप्त हितकर बन जाता है।

मानसोपचार

सुखासनपर बैठकर मनमें विचार करें कि–"छोटी आंत और बड़ी आंत सुचारु रूपसे अपना काम कर रही हैं। कन्धस्थान का भाग उत्तरोत्तर सशक्त बनता जा रहा है। आन्त्रपुच्छ का यह रोग अब हमें यन्त्रणा पहुंचा नहीं सकता। मैं दिन-प्रतिदिन रोगरहित, सशक्त और आनन्दित होता जा रहा हूं। मानसिक शक्ति उन्नत हो रही है। अब मेरे शरीरमें किसी भी रोगका अस्तित्व शेष नहीं रह सकता। मैं प्रत्येक रोगका प्रतिरोध करनेमें पूर्णतया समर्थ हूं।" इस प्रकार के उदात्त विचारों में ५ से १० मिनटतक तन्मय रहें।

जल-चिकित्सा

जबतक वेदनाका कष्ट रहे; तबतक गेल्वनाइज टीन के टबके आधे भागको साधारण गरम जल से भरकर उसमें आरामकुरसीके समान बैठ जाना चाहिये और दाहिने हाथ को दाहिनी ओर से बाईं ओर पेटके चारों ओर घुमाते रहना चाहिये। पहले दिन ६ मिनट; दूसरे दिन ८ मिनट-इस प्रकार प्रतिदिन २।२ मिनट बढ़ाते रहकर आध घन्टेतक कटिस्नान करना चाहिये। वेदना कम होनेके पश्चात् शीतल जलसे उपर्युक्त कटि-स्नान करें। इसके अतिरिक्त बबूलके वृक्षके आध अंगुल मोटे टुकड़ेको जलमें उबालें और उस जलको छानकर टबके शीतल जलमें मिला दें और

उसीका कटि-स्नान लें। समय पूर्वनिर्दिष्ट है। तदुपरान्त स्नान कर लेना चाहिये। यदि रोग नया हो तो २१ दिनतक और यदि पुराना हो तो २ से ३ महीनेतक कटि-स्नान करना आवश्यक है।

सूर्य-किरण-चिकित्सा

ब्लू (आसमानी) रंगकी बोतलमें सूर्य-किरणों द्वारा जल तैयार कर लें आर इस जलमें श्वेत वस्त्रके टुकड़े को भिगोकर वेदना-स्थानपर रखना चाहिये। प्रातःकाल, मध्याह्न काल और सायंकाल-इसप्रकार दिनमें ३ बार १५। १५ मिनटतक इस गीले वस्त्रको रोगपीड़ित स्थानपर रखना चाहिये। पीत रंगकी बोतलमें तैयार किया हुआ जल दिनमें दो बार २।२ औंस पीना चाहिये और आसमानी रंगकी बोतलमें तैयार किये हुए जलको दिनमें दो बार २।२ औंस की मात्रामें पीना चाहिये। यह प्रयोग २१ दिनसे ३ महीनेतक चालू रखें।

प्राणायाम-चिकित्सा

प्रातःकाल आसनों का अभ्यास कर लेने के पश्चात् अनुलोम-विलोम प्राणायाम ३ बार और प्रातःकाल भोजन करने से आध घण्टे पहले ३ बार करना चाहिये। (प्रणायामकी विधि 'उमेश-योगदर्शन' के द्वितीय खण्डमें पढ़कर समझ लें।)

●●

१७-अण्डवृद्धि-रोग

यह रोग अधिकांश में वृद्धों और युवा पुरुषों को हो जाता है। किसी के अण्डकोश में रस भर जाता है और किसी के वायु भर जाता है।

रोग के कारण

कूदते समय, दौडते समय, किसी वजनदार वस्तुको उठाते समय, पानी में तैरते समय, पानीमें डुबकी लगाते समय, वायु-विकारसे, कफ-पित्तकी विकृतिसे, अति मैथुनसे, चोट लगनेसे तथा कुपथ्य भोजन आदि अनेक कारणोंसे यह रोग हो जाता है।

रोगका रूप

आरम्भमें कभी मूत्र कम मात्रामें और कष्टके साथ आता है। अण्डकोशके पार्श्वभागमें कुछ सूजन मालूम होने लगती है। उदरके निचले भागमें और उरुओंमें कुछ पीड़ा जान पड़ती है। अरुचि, उबकाई और नाड़ी की गति कभी मन्द और कभी तीव्र हो उठती है। जीभका रंग सफेद प्रतीत होता है। कभी-कभी अण्डकोश बड़ा हो जाता है और रोगके पुराने हो जानेपर अण्डकोश बढ़ता जाता है। यह रोग बाल्यावस्था में भी हो जाता है। इसका मुख्य कारण माता-पिताके वीर्य-दोष और बालकके लालन-पालनकी त्रुटियोंपर आधारित है।

आसन-चिकित्सा

शीर्षासन १० मिनटसे आध घण्टेतक। मत्स्यासन १ से ३ मिनटतक। तोलांगुलासन १ मिनट। गोमुखासन १ से २ मिनट। विपरीतकरणी २ से ४ मिनट। अश्विनी मुद्रा प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकालसहित ३ मिनट। विस्तृतपाद सर्वांगासन १ मिनट। चक्रासन १ मिनट। उड्डीयान १ मिनट। नवलिकर्म १ मिनट। जानुभालासन(?) १ मिनट। वीर्यस्तम्भनासन १ मिनट।

आहार-चिकित्सा

चना, आलू, पूड़ी आदि तली हुई वस्तुयें वर्ज्य हैं। चावल कम और गेहूंके चोकरसहित आटे की रोटी अधिक मात्रामें ग्रहण करें। सफेद कोहला (पेठा), दूधी, भिण्डी आदिका शाक, चौलाई की भाजी, मूग की दाल और सालिड (सलाद) का उपयोग करें। सलाद के मिश्रण में प्याज और गाजर अधिक हो। भोजन के पश्चात् अनन्नास, पपीता, दाड़िम आदि फल खाने चाहिये। दूध गरम कर के पियें। रात का भोजन हलका हो। जबतक शरीरमें रोग का अस्तित्व रहे, तबतक मेथी की भाजी और पुनर्नवाकी भाजी खाना हितकर होगा।

रोग-निवारण के लिय मनोबल आवश्यक है

प्राकृतिक और यौगिक चिकित्साके अनुसार शारीरिक व्याधिके साथ मानसिक विचारोंका घनिष्ठ सम्बन्ध माना जाता है। क्योंकि कुछ रोग साधारण होनेपर भी मानसिक दुर्बलता, शंका, भय, असहिष्णुता (रोगके वेगको सहन करनेकी अक्षमता) आदि विकार सर्वसामान्य जनतामें व्याप्त हैं। ऐसे अनिष्टकारी विचारोंको मनमें स्थान देनेसे रोग-निवारणके लिये कैसी भी उत्तम चिकित्सा की जाये, तो भी लाभ नहीं होता। उदाहरणार्थ, किसी दूकानमें हम कोई वस्तु अथवा दवा खरीदनेके लिये जाते हैं, उस समय अधिकांशतया हर हालतमें हमें वस्तु विक्रेता या औषधि-विक्रेता व्यक्तिसे पूछना पड़ता है कि क्या यह वस्तु लाभदायक होगी? इस सम्बन्ध में जब हमें विश्वास और आशा-पूर्ण उत्तर मिल जाता है, तभी हम अभीष्ट वस्तु या औषधि खरीदते हैं और उसका उपयोग करते है; अर्थात् वस्तु या औषधि कितनी ही उत्तम क्यों न हो। फिर भी, आत्मतुष्टि और मनःशान्ति के लिये वस्तु-विक्रेतासे हम आशापूर्ण उत्तर सुनने के इच्छुक रहते है। किसी कारणविशेषसे हर रोगके अनेक उपचारोंमें मानसोपचार भी उपचारके रूपमें रखा गया है। रोग होनेपर भी यदि सर्वसाधारण मानव आशापूर्ण, लाभप्रद और उच्च बलदायक विचारोंका वारंवार मनन, चिन्तन करते रहें तो निस्सन्देह लाभ हो सकता है। जैसे किसी दुर्गन्धपूर्ण गन्दे स्थानको पानीसे, मिट्टीसे, गोबर से साफ-सुथरा और शुद्ध करनेके पश्चात् सुगन्धित पुष्प और धूप-दीपादिसे पवित्र और

सुगन्धियुक्त बना दिया जाता है और इस स्थानपर मन अपरिमित सुख-शान्तिमें निमग्न हो जाता है, उसी तरह इस संसारमें हमें अनेक प्रकारकी यातनाओं में जकड़े रहकर निराशापूर्ण वातावरण में इच्छा अथवा अनिच्छापूर्वक जीवन व्यतीत करना पड़ता है। इससे पार पानेके लिये अनेक सुलभ और सरल मार्ग हैं। फिरभी, मानसोपचार अप्रतिम बलवत्तर, सफल और सहजसाध्य है। इसमें महान् शक्तिया संगुंफित हैं। पाठकवृन्द इस बातको कदापि न भूलें। मन असीम सूक्ष्म शक्तियों का गुप्त भंडार है।

मानसोपचार

प्रातःकाल और रातमें शय्या ग्रहण करते समय सुखासनपर बैठकर कन्धस्थान और गुदा-स्थान का कुछ संकोचन करें और मनमें विचार करें कि 'अण्डकोशके साथ सम्बन्ध रखनेवाले हमारे सभी अवयवों और नस-नाड़ियों में नवीन शक्तिका विकास हो रहा है। मेरे शक्तिशाली मनकी नवजीवनप्रद प्रेरणा पाकर मेरा अण्डकोश दिन-प्रतिदिन मजबूत एवं नीरोग बनता जा रहा है। अण्डकोशमें व्याप्त रोगके निवारणमें अब मुझे तिलमात्र भी सन्देह नहीं रहा। मेरे दुर्बल और निराश मनमें अब नवीन चेतना और आशाका संचार हो रहा है और अब मैं अपने उज्ज्वल भविष्य के विश्वाससे उद्बुद्ध हो उठा हूँ। कुछ ही समय में मेरा शरीर रोग के पंजेसे मुक्त होकर आरोग्य के असीम भण्डारसे भरपूर हो उठेगा। प्रकृतिदेवी मुझे चिरन्तन आरोग्य और सुख-शान्तिसे पुरस्कृत करेंगी।

सूर्य-किरण-चिकित्सा

बादामी रंग की बोतल में सूर्य-किरण द्वारा जल तैयार करें। इसी प्रकार पुरुकी रंगकी बोतल में भी सूर्य-किरण द्वारा जल तैयार करें और प्रातःकाल ८ बजे १ औंस, दोपहर १ बजे १ औंस और सायं ६ बजे १ औंस जल पियें। आसमानी रंगकी बोतल में तैयार हुआ सूर्य-किरणों का जल १०॥ बजे १ औंस, ३॥ बजे १ औंस और रात में ८॥ बजे १ औंस लेना चाहिये।

तेल–मर्दन

कन्धस्थान, पेट के अगल–बगल, लिंगमूल, अण्डकोश आदि भागोंमें अच्छी तरह तेल–मालिश करें। बादामका तेल, खोपरे का तेल, तिल का तेल, नारायण तेल आदिमेंसे अपनी प्रकृति के अनुसार किसी भी तेल से मालिश करें और तदुपरान्त स्नान करें। यदि समग्र शरीर की तेल–मालिश करें तो अधिक लाभ होगा। तेल-मालिश के समय में गुदा–द्वार, अण्डकोश और कन्धस्थान के भाग को ऊपर की ओर भलीभांति खिंचा रखें। पेट के भागमें चरबी अधिक हो तो उसे कम करना होगा; इसलिये तेल–मालिश नितान्त आवश्यक है। तेल–मालिश का प्रयोग कमसे कम तीन महिनेतक सतत जारी रखना पड़ेगा। इसके पश्चात् ही प्रयोगकर्ताको इसके न्यूनाधिक लाभोंका अनुभव निस्सन्देह हो सकेगा। अतः दो–तीन महीनेतक तेल–मालिश अवश्य ही करनी चाहिये। नीरोग अवस्था में तैलाभ्यंग लाभप्रद ही है।

● ●

१८ हाथीपग (श्लीपद)

यह रोग भी सामान्य जनता में विशेष रूपसे दिखाई देता है। फिर भी, ऐसा कोई अनिवार्य नियम या स्थिति नहीं है कि प्रत्येक स्थानके निवासीको यह रोग होता है। केरल के कुछ स्थानों और मद्रास प्रान्त के कुछ स्थानों तथा अन्यान्य प्रान्तोंके कुछ स्थानों पर निवास करनेवाले लोगोंमें यह रोग विशेष रूपसे पाया जाता है। इसके कारण है अशुद्ध जलका सेवन, अशुद्ध स्थान में निवास, माता–पिताके दोष, व्यायामविमुख शरीर, विषैले मच्छरों, मक्खियों और अन्य विषाक्त जीव–जन्तुओंका काटना, रक्त की अशुद्धि, रक्त–संचालनमें विक्षेप या अनियमितता, कब्ज आदि।

लक्षण

कब्जियत के निवारण के लिये बारंबार रेचक लेनेकी आदत हो जाना, शरीर में जड़त्व का भान होना, कभी-कभी अचानक पैरके घुटनेके नीचेके भागमें सूजन का प्रकट होना और मिट जाना, कभी-कभी शरीर गरम मालूम पड़ना आदि इसके प्राथमिक लक्षण हैं। इस रोगका प्रभाव बढ़ने के साथ-साथ सूजन भी बढ़ती जाती है। कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्षकी एकादशीसे अमावस्या अथवा पूर्णिमातक कब्जियतकी शिकायत अधिक बढ़ जाना अर्थात् मल-विसर्जनमें रुकावट आ जाना; फलतः ज्वर आ जाना; किसी भी वस्तुके खाने की ओर अनिच्छा हो जाना; कभी-कभी यह लक्षण १ से ९ दिनतक लगातार रहता है। तत्पश्चात् पैरों की वेदना भी कम हो जाती है; ज्वर का भी अन्त आ जाता है और सूजन भी उतर जाती है। इस रोग को दूर करनेके लिये अप्राकृतिक उपचारपर अधिक दिनतक आधार रखनेसे पैरमें इतनी अधिक सूजन बढ़ जाती है कि चलना-फिरना भी कठिन हो जाता है और पैरका वजन भी बढ जाता है। पैरकी त्वचा मोटी हो जाती है और उसमें फुसियां-जैसी भी निकल आती हैं। रक्त-संचालन-क्रियाका स्वाभाविक प्रवाह मन्द पड जाता है।

आसन-चिकित्सा

उड्डीयान बन्ध १ मिनट। नवलिकर्म आध मिनट। धौतिकर्म प्रातःकाल दन्तधावन के पश्चात्; कपालभाति ५ बार। एकपाद उत्थानपादासन २ मिनट। द्विपाद उत्थानपादासन १ मिनट। भुजंगासन २ मिनट। एकपाद शलभासन २ मिनट। द्विपादशलभासन १ मिनट। अर्धमत्स्येन्द्रासन २ मिनट। चक्रासन १ मिनट। उष्ट्रासन १ मिनट। आकर्पण धनुरासन २ मिनट। उर्ध्व सर्वांगासन ४ मिनट। सर्वांगासन ३ मिनट। शीर्पासन १२ से ३० मिनट। पद्मासन ५ से १० मिनटतक। लोलासन आध मिनट। शवासन ५ मिनट।

उपर्युक्त आसनोंकी साधना करते समय जितने भी आसन आसानीसे किये जा सकें, उतने ही करें। जैसे-जैसे पैरोंकी सूजन और वेदना कम होती जावे, वैसे-वैसे

आसनोंका अधिकसंख्यक अभ्यास उत्तरोत्तर बढ़ाते रहें। शीर्षासन का अभ्यास अच्छे ढंग से आ जानेके पश्चात् सर्वप्रथम शीर्षासन ही करें। शीर्षासनके पश्चात् शवासन करें और तदुपरान्त अन्य सब आसन करें।

उपरिनिर्दिष्ट अभ्यास श्लीपदके रोगियोंके लिये अति महत्त्वपूर्ण है और साधकको निस्सन्देह अभिष्ट लाभ पहुंचाता है।

प्राणायाम

रक्त-शुद्धिके लिये प्राणायाम भी अनिवार्य कर्तव्य है। अनुलेम-विलोम प्राणायाम ३ से ६ वार। भस्त्रिका प्राणायाम नं. १ दो से पांच वार। प्रातःकाल आसन करनेके पश्चात् अथवा सायकाल पेट खाली होनेपर अर्थात् भोजनसे आध घण्टे पहले प्राणायाम करना चाहिये। (प्राणायाम की क्रियाविधि 'उमेश-योगदर्शन' के द्वितीय खण्डमें बताई गई है।)

जल-चिकित्सा
वाष्प-स्नान-विधि

एक तपेलीमें पानी भरकर उस जलमें भांगरा (भृंगराज) १५ से २० तोला, कडवी नीमके पत्ते १० से १५ तोला डालकर उबालें। जलके अच्छी तरह पक जानेपर उस जलको बेंतोंकी छेदवाली कुरसीके नीचे रखें और कुरसीके ऊपर रोगीको बैठा दें। गलेके नीचेका शरीरका समग्र भाग कम्बल अथवा मोटे कपडेसे ढका रहे। शिरपर शीतल जलमें भिगोया हुआ श्वेत वस्त्र रखें। इसका परिणाम यह होगा कि तपेलीमेंसे निकलती हुई भाफ समस्त शरीरमें प्रवेश करेगी। पहले दिन ५ मिनट यह वाष्प लेकर फिर शरीरको वस्त्रसे पोंछ दें और तुरन्त गुड़के साथ तुलसी का काढा तैयार कर २ औंस पी जायें। तदुपरान्त चटाईपर श्वेत वस्त्र बिछाकर लेट जायें। शरीर को ऊपरसे भी गलेतक श्वेत वस्त्रसे

ढके रहें। पहले दिन ५ मिनट। दूसरे दिन ७ मिनट–इस प्रकार प्रतिदिन २।२ मिनट बढ़ाते हुए २० मिनटतक वाष्पस्नान कर सकते हैं और तुलसी का काढा लेकर लेट या सो सकते हैं। सम्भव है कि कुछ समय के बाद तपेलीकी भाफ कम हो जाये। ऐसी अवस्थामें तपेलीको अगीठीपर रखकर भाफ ले सकते हैं। वाष्प लेते समय और लेटते समय शरीरसे पसीना अच्छी तरह छूटेगा। उस समय रोगीको किसी प्रकार की चिन्ता न करनी चाहिये। जितना ही अधिक पसीना निकलेगा; उतने ही अधिक विषाक्त द्रव्य शरीर से बाहर निकलेंगे और शरीर स्वच्छ, स्वस्थ और विकाररहित बन जायेगा। जैसे–जैसे शरीर का विकारयुक्त द्रव्य कम होता जायेगा, वैसे-वैसे पैर की सूजन और वेदना कम होती जायेगी और पैर धीरे–धीरे पतला होकर स्वाभाविक स्थितिमें आ जायेगा। विकारी द्रव्य पसीने के मार्ग से ही नहीं; मल–मूत्र के मार्ग से भी निकलते हैं। यद्यपि जल–चिकित्सा अनेक प्रकार की है। फिर भी, वाष्पस्नान अनेक रोगोंके निवारण की दृष्टिसे विशेष प्रभावपूर्ण और सफल प्रयोग है।

मानसोपचार

पाठकवृन्द, यह स्मरण रखें कि 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी' अर्थात् जैसी जिसकी भावना, वैसा उस को फल–इस कथनके अनुसार रोग से मुक्ति पानेके इच्छुक लोगों का कर्तव्य है कि वे अवश्य ही रोग–प्रतिरोधक और रोग–निवारक भावनाओंको अपने मनमें बलवत्तर श्रद्धाके साथ अपनायें—धारण करें। मानसोपचारमें गुप्त लाभप्रद सामर्थ्य भरा हुआ है; यह बात कभी न भूलें और मनमें बारंबार दुहराते रहें–"मैं इस रोगसे प्रतिक्षण मुक्त हो रहा हूं। मेरे पैर और शरीर के अवयव नीरोग हो रहे हैं। यह जो मैं प्राकृतिक यौगिक उपचार कर रहा हू, उससे मुझे पूरा लाभ मिल रहा है। प्रकृतिकी गोदमें बैठकर निराशामय विचारोंसे निकलकर आशामय वातावरण में प्रवेश कर रहा हूं। पैरोंके साथ ही साथ मेरा सारा शरीर स्वस्थ और तेजोमय बन रहा है। मैं सुखी हो रहा हूँ।" ऐसे विचार प्रात. स्नानके पश्चात्. दोपहर १२ बजे और रातमें शयनकालमें अवश्य ही करें।

मालिश

भृंगराज तेल अथवा आमला, दूधी आदिसे बने तेल या मालकांगनीके तेलका उपयोग मालिशमें करें। यदि उपर्युक्त कोई तेल न मिले तो खोपरे अथवा तिलके तेलसे सवेरे स्नान करनेसे पहले पैरों तथा सारे शरीरकी मालिश करें। विशेषतः पैरोंकी नस-नाड़ियां, स्नायु, मांसपेशियां एव मज्जातन्तु आदि अवयवोंपर ध्यान रखकर मालिश करें। मालिश के आध घण्टेके पश्चात् स्नान करें। मालिशका यह कार्यक्रम कमसे कम एक महिने और अधिकसे अधिक तीन महीनेतक लगातार जारी रखना चाहिये। अधिक समयतक करते रहनेसे लाभ ही मिलता है। मालिशके प्रयोगसे १५ दिनमें स्पष्ट लाभ प्रकट होगा; अर्थात् सूजन कम होती जायेगी और पैर हलका होता जायेगा। त्वचाका कठोर रूप कोमल होता जायेगा। अशुद्ध रक्त क्रमशः कम होता जायेगा और शुद्ध रक्त बढ़ता जायेगा।

सूर्य-किरण-चिकित्सा

प्रातःकाल ७॥ से १० बजेतक कोमल सूर्य-किरणोंको हरे कांचके माध्यमसे २० से ४० मिनटतक प्रभावित अंग-पैरपर डालें। दूसरे दिन ब्लू रंगके कांचके माध्यमसे सूर्य-किरणें पैरपर डालें। समग्र क्रिया-विधि पहले दिनकी तरह है। एक दिन हरे रंगके काचसे; दूसरे दिन ब्लू रंगके कांचसे-इस प्रकार नित्य प्रति बदल-बदलकर सूर्य-किरणें लेते रहें। सूर्य-किरणों द्वारा तैयार किये हुए खोपरे अथवा तिलके तेलसे पैरों की मालिश सप्ताहमें दो बार करनी चाहिये। उस दिन अन्य किसी तेलसे शरीरकी मालिश न करें।

आहार-चिकित्सा

गरम करके ठण्डा किया हुआ पानी पीना चाहिये। दिनमें एकबार जाका भी पानी पियें। तमोगुणप्रधान आहारको त्याग दें। व्यसनमूलक पदार्थोंसे सर्वथा अलिप्त रहें। बैंगन, आलू, वालपापडी आदि वर्ज्य हैं। हींग और लसणको भी न छुएँ। चावल, मूग की दाल, गेहूँकी रोटी, हरी तरकारियां, मीठे फल, गाय अथवा बकरी का दूध यथोचित रूपमें ग्रहण करें। पैरकी सूजन अच्छी तरह उतरनेतक रातमें केवल फलों और दूधका ही सेवन करें। रातका आहार जल्दी ले लें; अधिक रात बीत जानेके वाद नहीं लेना चाहिये। १५ दिनमें एक दिनका उपवास भी रखना चाहिये। उपवासके दिन केवल जौका पानी अथवा नारियलका पानी, नींबूका शर्वत अथवा जलमिश्रित मोसम्बीका रस पीना चाहिये। इन सबके अभावमें शुद्ध जलका सेवन ही लाभकर होगा। श्लीपद (हाथीपग) के रोगियोंके लिये यह उपचार भी अत्यन्त लाभदायक और विश्वसनीय होगा।

● ●

(१९) पाण्डु रोग-(एनीमिया) लक्षण

आंखोंके नीचे सूजन आ जाती है। त्वचा फटती है। शरीरमें रक्तका संचार कम होता है। शरीरमें शीतका अंश विशेष रहता है। मल-मूत्र पीला पड जाता है। पाचनशक्तिमें निर्बलता आ जाती है। दाह, प्यास और ज्वर भी रहता है। कभी-कभी पतले (फटे-से) दस्त होते हैं। त्वचाके रंगमें परिवर्तन हो जाता है।

पाण्डुरोग होनेका कारण

बीड़ी, सिगरेट और अन्य विविध धूम्रपान, मदिरा, मांस, मछली, अण्डा आदि तमोगुणी आहार, अशुद्ध जलका सेवन, अशुद्ध और गन्दे स्थानमें निवास, व्यायामसे शरीरको पूर्णतया वंचित रखना, अशुद्ध वायुका सेवन आदि अनेक कारण पाण्डु रोग की उत्पत्ति के मूलमें हैं। कफज, वातज, पित्तज और सन्निपातज आदि कई प्रकारके पाण्डु रोग होते हैं। अधिकांश महिलायें एक प्रकारकी भुनी हुई या कच्ची मिट्टी खाती हैं। इससे भी प्रायः पाण्डु रोग उत्पन्न हो जाता है। गेहूं, चावल आदि धान्योंमें रही हुई मिट्टी और पत्थरका भाग भोजनके साथ शरीरके अन्दर पहुँचता रहता है; उससे भी पाण्डुरोग हो जाता है।

आसन–चिकित्सा

एकपाद उत्थानपादासन १ से ३ मिनट। द्विपाद उत्थानपादासन १ मिनट। एकपाद पवनमुक्तासन १ से ३ मिनट। पवनमुक्तासन १ मिनट। वज्रासन २ मिनट। सुप्त वज्रासन १ मिनट। सुप्त धनुरासन १ मिनट। कर्णपीडनासन १ मिनट। विपरीत-करणी आसन ४ मिनट। मत्स्यासन २ मिनट। नवलिकर्म आध मिनट। कपालभाति ३ बार। बस्तिकर्म चार दिन में एकबार। त्राटककर्म मन स्थिर होनेतक और मन में पूर्ण शान्तिका संचार होनेतक।

प्राणायाम–चिकित्सा

भस्त्रिका प्राणायाम न. २ प्रातःकाल ३ बार और सायकाल ३ बार। सूर्यभेदन प्राणायाम प्रातःकाल ३ बार; सायकाल ३ बार। (प्राणायामकी विविध क्रियाविधियोंका निरूपण 'उमेश–योगदर्शन' के द्वितीय खण्डमें विस्तारपूर्वक किया गया है।)

आहार-चिकित्सा

चावलकी काजी अथवा गेहूं की कांजी दिनमें दो बार लें। बैंगनका शाक, टमाटर, भिण्डी, पडुवल (पण्डोला), परवल, सूरन, हरी भाजी और हरी तरकारियां, कचुम्बर (गाजर, टमाटर, नारियल, भिण्डी आदि वस्तुओंके बारीक टुकड़ोंका मिश्रण) में जीरा और सोंठका चूर्ण मिलाकर खायें। इसे सलाद भी कहते हैं। दिनमें एकबार मोसम्बीके ४ औंस रसमें १ औंस जल तथा सोंठ एवं जीरेका चूर्ण मिलाकर पी लें। दिनमें दो बार बकरीका दूध पाव-पावभर पियें। बकरीका दूध न मिले तो पानी मिलाकर गायका दूध पीना चाहिये। भोजनके पश्चात् जिस ऋतुमें जो फल उपलब्ध हों और प्रकृतिके अनुकूल हों, उन्हें खाना चाहिये। उपरिनिर्दिष्ट आहार २ से ३ घण्टे के अन्तरमें लेते रहें और बीच-बीच में [आहार-व्यवस्थाके मध्यमें] शुद्ध जल पीते रहें। यह प्रयोग लाभदायक है।

सूर्य-किरण-चिकित्सा

लाल रंगकी बोतलमें सूर्य-किरणों द्वारा तैयार किया हुआ जल चार बार १।१ औंस पियें। पीले रंगकी बोतलमें सूर्य-किरणों द्वारा तैयार किया हुआ जल दिन में दो बार पियें। सूर्य-किरणोंसे अनुप्राणित इस जलके ग्रहण-काल में २।२ घण्टे का अन्तर रहना चाहिये। जिस समय शरीर में उष्णता अधिक बढ़ जाये, उस समय लाल रंगकी बोतलका सूर्यकिरण-सञ्चित जल पीना बन्द कर देना चाहिये।

मानसोपचार

सुखासन अथवा पद्मासनपर बैठकर प्रातःकाल और रात में शयन–कालमें मन ही मन श्रद्धा और विश्वासपूर्वक विचार करें–"मेरे शरीरमें जो रक्तका परिमाण कम होता जा रहा था; वह स्थिति अब नहीं रही, बल्कि अब तो रक्तकी मात्रा दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अब मेरे शरीरमें नवीन, शुद्ध और बलवान् रक्त सञ्चरित हो रहा है। अब मेरा शारीरिक और मानसिक शैथिल्य दूर हो रहा है और उसके स्थानपर नवीन शक्ति, नवीन चैतन्य एवं नवीन उत्साहने अपना सम्पूर्ण तथा चिरस्थायी अधिकार स्थापित कर लिया है। अब मेरे जीवन की हलचलमें भी परिवर्तन होता जा रहा है। अब मानसिक उदासीनता और रोगोंका उपशम हो गया है और मेरे जीवनमें एक चमत्कारपूर्ण परिवर्तन दिन–प्रतिदिन होता जा रहा है। अब मेरे अन्तरमें दुःख और निराशामूलक विचारोंका उदय कभी भी नहीं हो सकता। अब मेरे मनमें आशापूर्ण भावनायें–महत्त्वाकांक्षायें उद्भूत हो रही हैं और मैं जीवनके प्रति सम्पूर्ण श्रद्धालु और विश्वस्त बनता जा रहा हूँ। शरीरके अंग–प्रत्यंग और सप्तधातु यथोचित रूपमें परिशुद्ध होते जा रहे हैं। अब मैं सुख, संतोष और शान्तिके साथ निश्चिन्त मस्त जीवन व्यतीत कर रहा हूं।" इस प्रकारके विचारोंमे यथासम्भव अधिकसे अधिक समयतक–कमसे कम ५ से २० मिनटतक अवश्य तन्मय रहें। इस अवसरपर मुखमुद्रा प्रफुल्ल, शान्त एवं उल्लसित रहनी चाहिये। कदाचित् इस बीचमें नींद आ जाये तो सो जाना चाहिये।

इस रोगकी जल–चिकित्सा भी है और रोगकी स्थितिके अनुसार जल में कुछ वनस्पतियोंका भी उपयोग किया जाता है; किन्तु रोग की हालत को देखे बिना वनस्पति आदि की व्यवस्था करना सम्भव नहीं।

(२०) क्षीणकाय अर्थात् दुर्बल शरीरका बल और प्रमाणबद्ध वजन कैसे बढ़ाया जाये ?

शारीरिक क्षीणताके कारण

यथोचित रूपसे जीवनतत्त्वोंसे भरपूर आहारका अभाव, अनियमित आहार-विहार (आचार), जीर्णज्वर अर्थात् अज्ञात आन्तरिक ज्वर (शरीरमें ज्वर रहता है, परन्तु उसका भान नहीं होता), मानसिक चिन्ता, वीर्यदोष, व्यायामसे पराङ्मुख रहना, मानसिक संकोच, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरादि दुर्भावनाओंमें जकड़े रहना, रस-ग्रन्थि, कण्ठमणि, मणिपूर चक्र, हृदयचक्र आदिका यथोचित विकास न होना, स्वच्छ और मुक्त वायुका नितान्त अभाव, अत्यन्त संकीर्ण और गन्दे स्थानोंमें रहना, निर्धन स्थितिकी चिन्ता और परिस्थिति-विशेषमें निरन्तर भयातुर रहना आदि शारीरिक क्षीणताके कारण हैं। इसके अतिरिक्त प्रायः यह भी देखा जाता है कि छोटे तथा बड़े श्रीमन्त (धनवान्) एवं उपाधिधारी शिक्षित स्त्री-पुरुष भी प्रायः क्षीणकाय पाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे भोग-विलासके अतिरेक में सदैव मस्त रहते हैं, अप्राकृतिक वस्तुओंसे शरीर की सजावट करते हैं; आकर्षक वेष-भूषा बनाते हैं; भड़कीली पोशाकें पहनते हैं, और इस प्रकार अपनी बाह्य सुन्दरता बढ़ाने के प्रयत्न में लगे रहते हैं, जिससे जन-समाजमें उनका सम्मान हो एवं बड़प्पनका प्रभाव सर्वत्र फैले। यही उनकी महत्त्वाकांक्षा रहती है और प्रायः ऐसा होता देखा भी जाता है। फलतः वे क्षीणकाय और दुर्बल शरीर रहते हैं। इसके अतिरिक्त पाचन-शक्ति की निर्बल अवस्था में भी अपनी पाचनशक्ति का विचार न रखकर अतीव गरिष्ठ, स्वादिष्ट, विटामिनोंसे भरपूर अथवा बिलकुल विटामिनहीन (पोषणतत्त्वरहित) आहारका सेवन; केवल जीभके स्वादके वशीभूत होकर अतिमात्रामें बारबार आहार लेना भी शारीरिक क्षीणताके कारण हैं। रातमें बहुत कम नींद लेने, दिनमें सोने, शक्तिसे बाहर परिश्रम करने तथा आयसे अधिक व्यय करते रहनेसे भी मनुष्य क्षीणता और दुर्बलताके चंगुलमें फँस जाता है।

आसन-चिकित्सा

शीर्षासन आरम्भमें एक ही मिनट करना चाहिये। फिर क्रमशः एक-एक मिनट बढाते हुए १० से ३० मिनटतक। शवासन ५ मिनट। वीरासन २ से ५ मिनट। नौलिकर्म आध मिनट। लोलासन १ मिनट। बकासन १ मिनट। उष्ट्रासन १ मिनट। विस्तृतपाद वक्ष (छाती) भू-स्पर्शनासन १ मिनट। एकपाद शलभासन २ मिनट। शलभासन १ मिनट। वज्रासन २ मिनट। सुप्तवज्रासन १ मिनट। पश्चिमोत्तानासन १ मिनट। चक्रासन १ मिनट। उर्ध्वसर्वांगासन ६ मिनट। गोरक्षासन १ से २ मिनट।

प्राणायाम-उपचार

शीतकालमें सूर्यभेदन प्राणायाम ३ से ६ बार। गरमीके दिनोंमें चन्द्रभेदन प्राणायाम ३ से ६ बार। वर्षा-ऋतुमें उज्जायी प्राणायाम ४ से ८ बार करना लाभकर होगा। पित्तप्रधान प्रकृति हो तो अनुलोम-विलोभ प्राणायाम, कफप्रधान प्रकृति हो तो भस्त्रिका प्राणायाम नं. १ अथवा नं. २ और वायुप्रधान प्रकृति हो तो प्लाविनी प्राणायाम करना चाहिये। (प्राणायामकी क्रिया-विधि 'उमेशयोगदर्शन' के द्वितीय खण्डमें पढकर समझ लें।)

आहार-चिकित्सा

उडदसे तैयार की हुई छिलकेसहित दालका उपयोग बलके अनुसार करें और बाष्प आदिकी सहायता से तैयार किये गये उडदके अन्य पदार्थों का उपयोग भी लाभप्रद होगा। इडली, डोसा, दही बडे, आदि उडदके जो पदार्थ भी बनाये जा सकें, उनका यथोचित मात्रा में सेवन करते रहना चाहिये। इसी प्रकार चना और चनेके योग से निर्मित पदार्थ भी सामर्थ्यके अनुसार

ग्राह्य हैं। इसी प्रकार मूग और मूंगसे बनी वस्तुयें भी शारीरिक विकास और बलके संवर्धनमें महत्त्वपूर्ण योगदान करती हैं। इसके अतिरिक्त नव धान्योंमें से जो भी धान्य अनुकूल हो, उसे पानीमें १२ घण्टे भिगो रखनेके पश्चात् गीले कपड़े में बाधकर रखें। इस भिगोये हुए धान्य में अकुर फूटेगा। किसी धान्यमें छः घण्टे में अकुर उत्पन्न होता है; किसी में १२ घण्टे के बाद अकुर आता है और कोई-कोई धान्य १८ घण्टे बीत जानेपर अंकुरित होता है। इस अकुरित धान्य को प्रातःकाल अथवा सायंकाल अवश्य ही चाब-चाबकर खाना चाहिये। अनुकूल स्थिति हो तो दोनों समय भी लिया जा सकता है। शरीर को जो विटामिनयुक्त जीवनदायी आहार आवश्यक है, उसकी पूर्ति उपर्युक्त प्रयोग से निस्सन्देह हो जाती है। शारीरिक शक्ति और वजनको यथोचित परिमाणमें स्थिर रखने के लिये यह प्रयोग नितान्त वाञ्छनीय है; अति महत्त्वपूर्ण है। शाकाहारियों के लिये हरी तरकारिया, ऋतुफल और नवधान्य विशेष अनुकूल और हितकर है।

पहला प्रयोग-केला-दूध

वजन बढ़ानेकी दृष्टिसे दूध-केलेका मिश्रण-योग भी एक सफल प्रयोग है। इलायची केले अथवा हरी छालके केले दूधके साथ मिश्रित कर पाचन-शक्ति और वजनके अनुसार दिनमें एक-दो बार ग्रहण करनेसे बल और वजनमें पर्याप्त वृद्धि होती है। यह प्रयोग लाभदायक होनेके साथ-साथ सात्विक भी है।

दूसरा प्रयोग-आम-दूध

आमके रसको दूधके साथ मिलाकर पाचन-शक्ति के अनुसार १ से २ बार लें। इससे शक्ति और वजनमें यथोचित वृद्धि होगी।

तीसरा प्रयोग—खीर

शुद्ध दूधमें चावलों को उबालकर और इलायची, केसर, मेवा आदि पौष्टिक और सुगन्धित द्रव्य मिलाकर सेवन करें। इसे दूधपाक या खीर भी कहते हैं। शक्ति और वजन बढ़ानेके लिये यह एक सफल प्रयोग है।

चौथा प्रयोग—फल

सेव, नासपाती, अनन्नास, दाड़िम (अनार), मोसम्बी, सन्तरा आदि फलोंका सेवन भी यथोचित मात्रा में करना चाहिये। फल मीठे हों; खट्टे न हों।

इसके अतिरिक्त महीनेमें तीन दिन, अर्थात् त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा अथवा अमावस्याके दिन आधा तोला अमृतवल्ली, आधा तोला गोखरू और पाव तोला आमलेके योगसे बना हुआ रसायनचूर्ण मधु (शहद) के साथ अथवा जलके साथ प्रातःकाल खाली पेट लेना हितकर होगा। प्रातःकाल उठकर दन्तधावनके पश्चात् मटकेका शुद्ध शीतल जल अवश्यमेव पीना चाहिये। आहारकी दृष्टिसे उपर्युक्त सभी प्रयोग अत्यन्त लाभदायक हैं। कदाचित् एक साथ ही सब प्रयोगोंका आयोजन सम्भव न हो तो जितने भी प्रयोग सरलतासे हो सकें, उतने से ही उचित लाभ उठाते रहें। यहां यह बता देना आवश्यक है कि विटामिन अर्थात् पोषक पदार्थोंकी प्राप्तिके प्रलोभनमें पड़कर मुर्गी तथा अन्य पक्षियोंके अण्डोंको खानेकी सलाह देना मानव के लिये अनुचित ही नहीं, प्रत्युत अत्यन्त गर्हणीय और घृणास्पद दुष्कर्म [पाप] है।

मानसोपचार

शारीरिक शक्ति और वजन की वृद्धिके लिये मानसोपचारपर भी विशेष रूपसे ध्यान देना पड़ेगा। मानसिक प्रवृत्तियोंपर नियन्त्रण स्थापित करना और मनको हर समय प्रसन्न बनाये रखना भी आवश्यक है। ऐसा किये बिना—मनोबलका सम्पादन किये बिना—आप उचित लाभ उठा न सकेंगे। प्रातःकाल स्नान करनेके बाद धूपबत्ती

आदि मनको प्रसन्न-पुलकित करनेवाली वस्तुयें जलाकर रख लें और किसी अनुकूल आसनपर बैठकर एकाग्र मनसे विचार करें—"हमारे शरीरके सभी अंग—हाथ, पैर, कमर, पेट, छाती, पीठ, गला, मुख, आंख, शिर आदि—विकासशील, सशक्त और नीरोग बनते जा रहे हैं—प्रफुल्लता एवं आनन्दसे भरपूर हो रहे हैं। मेरे शरीरकी अंग-संचालन-प्रणाली उचित ढंगसे काम कर रही है और जिस अवयवको जितनी मात्रामें विटामिन अर्थात् पोषणतत्त्व जरूरी है, वह सब उन्हें यथोचित रूप में उपलब्ध हो रहा है। अब मैं आनन्दसागरमें गोते लगा रहा हूं और मेरा मन निस्सीम सुख-शान्ति की अनुभूतिमें मस्त हो रहा है। मैं अपनी मानसिक शक्तिसे अपने चारों ओर आनंद और मस्तीका वातावरण उत्पन्न करता हूं। अब मैं निर्भीक होकर प्रसन्न चित्तसे अपने कर्तव्यका पालन करता हू। अब मेरा मन नवीन चेतना और उमंगसे भरपूर होकर जीवन-संघर्ष में लग रहा है। मैं सुखी हूं; प्रसन्न हूं। मेरी मुख-मुद्रापर कमल-पुष्प के समान प्रसन्न और विकसित स्मित निरन्तर खेला करता है।" इस प्रकार के उत्साहवर्धक विचारों में निरन्तर निमग्न रहें—तन्मय रहें और आन्तरिक आनन्दकी मस्तीका अनुभव करते रहें। उस समय किसी प्रतिकूल विचार या प्रवृत्ति को मनमें प्रवेश करने से संयमपूर्वक रोकें। वजन बढ़ानेके लिये उच्च मानसिक विचारोंकी विश्वस्त स्थिति अत्यन्त लाभकर और महत्त्वपूर्ण है। इस विचारोंमें कमसे कम ५ मिनट से लेकर आध घण्टेतक लीन रहें एवं मन जब भी निकम्मा हो और इधर-उधर भागनेकी चेष्टा करे, तभी उसे उपर्युक्त विचार-बन्धन में बांध लें।

मालिश-प्रयोग

प्रतिदिन प्रातःकाल सारे शरीर में तेल-मर्दन करें। मालिश या तो स्वयं अपने हाथोंसे कर लें अथवा अन्य किसीसे करायें। कमसे कम १० मिनट और अधिक से अधिक एक घण्टेतक मालिश करनी अथवा करानी चाहिये। बादामका तेल, नारायण तेल, धूपेल तेल, आमलेका तेल, [illegible] तेल, तिलका तेल, सरसोंका तेल अथवा ५२ प्रकारकी बहुमूल्य वनस्पतियोंसे [illegible] निर्मित रामतीर्थ मार्का तेल भी मालिशके लिये उपयुक्त होगा। शारीरिक अवयवोंके सुयोजित विकासके लिये, प्रत्येक अवयवमें रक्त-भिसरण उचित रूपसे चालू

रखनेके लिये एवं मांस, मज्जा आदि धातुओंको सम परिमाणमें रखनेके लिये तेल-मालिश अतीव उपयोगी विधान है। तेल-मालिश निरर्थक गरमी शरीरसे बाहर निकाल फेंकती है और वास्तविक गरमीसे शरीरको भर देती है। बहुतेरे लोगोंका जीर्णज्वर भी तेल-मालिशसे दूर हो जाता है। पुरुषोंके लिये तेल-मालिश जितनी लाभदायक है; उतना ही लाभ स्त्रियोंको भी पहुंचाती है। शास्त्रीय पद्धतिके अनुसार मालिश उचित रूपसे पेटपर की जाये तो महिलाओंका गर्भाशय-रोग, गुर्देकी कमजोरी, कोलाइटिस (आंतकी गड़बड़ी) आदि रोग भी अच्छे हो जाते हैं।

सूर्य-किरण-चिकित्सा

प्रातःकाल अथवा सायंकाल कोमल सूर्य-किरणों के सामने १० से ३० मिनटतक बैठें और हो सके तो सूर्य भगवान् के मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए सूर्य-नमस्कार भी विधिवत् कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त गुलाबी रंगकी बोतल में सूर्य-किरणों द्वारा तैयार किया हुआ जल दिनमें ३ बार डेढ़-डेढ़ औंसकी मात्रामें पीते रहें। दूसरे दिन ब्ल्यू रंगकी बोतल में सूर्य-किरणों द्वारा तैयार किया हुआ जल १।१ औंस की मात्रामें दिनमें ३ बार पीना चाहिये। तीसरे दिन पीले रंगकी बोतलमें जल तैयार कर डेढ-डेढ औंसकी मात्रामें दिनमें तीन बार लेवें। तदुपरान्त अर्थात् चौथे दिन प्रथम दिनके प्रयोग के अनुसार अर्थात् गुलाबी रंग की बोतलमें, पांचवे दिन दूसरे दिनके अनुसार ब्ल्यू रंगकी बोतलमें; ६ ठें दिन तीसरे दिन के अनुसार पीले रंगकी बोतलमें तैयार किये हुए जलका उपयोग करना चाहिये। इस प्रकार ऊपर बताई गई प्रक्रियाके अनुसार प्रतिदिन बदल-बदल कर सूर्य-किरणोंके जलका सेवन करते रहें। यह क्रमबद्ध प्रयोग तीन महीनेतक चालू रखें। ३ से ८ दिनके अन्दर इस सूर्य-किरण-चिकित्साका प्रत्यक्ष लाभ मिलने लगेगा।

जल-चिकित्सा

दुबले-पतले स्त्री-पुरुषोंके शरीरको हृष्ट-पुष्ट बनानेके लिये जल-चिकित्सा कुछ कम महत्त्व नहीं रखती। शरीरमें जलीय तत्त्वका अंश अधिक है, इस बातको पाठक भूलें नहीं। जल का यथोचित उपयोग स्वास्थ्य-रक्षाके लिये अतीव महत्त्वपूर्ण है। कटिस्नान, वाष्प-स्नान, जल-मर्दन-स्नान (शरीर को मालिश करनेके समान खूब रगड़ कर दोनों हाथों से मलना) आदि क्रियाओंको जलोपचार के नामसे अभिहित किया जाता है। इस अवसरपर अर्थात् स्नान-काल में "मैं बलवान् हो रहा हूँ; मेरा शरीर परिपुष्ट होकर चैतन्य और स्फूर्ति से भरपूर हो रहा है" आदि शक्तिशाली और आशाप्रद विचार मनमें करते रहें। इन सब स्नानों की विधि और समय-सीमा व्यक्तिगत रूपसे देना सम्भव नहीं। अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार जल-चिकित्साका लाभ उठाना चाहिये। कटिस्नान आदि जल-चिकित्साकी यथोचित विधियां इसी ग्रन्थ में अन्य रोगोंके साथ बताई गई हैं। पुरुषों और स्त्रियों के लिये यह जल-प्रयोगोपचार नितान्त लाभप्रद है।

टान्सिल, पथरी, कोलाइटिस, गुर्देका रोग, प्लूरसी, ज्वर, हैजा (कालेरा), टाइफाईड, चर्म-रोग, मस्तिष्कके रोग, पैरके तलुओंके रोग, ल्यूकोरिया (स्त्रियोंका श्वेत प्रदर) रोग आदि अनेक रोगोंका निदान, लक्षण, उपचार आदिका वर्णन हम इस ग्रन्थमें कर नहीं पाये हैं। इसका प्रमुख कारण ग्रन्थकी कलेवर-वृद्धिका भय है। मेरा विचार है कि रोगोपचार के विषयमें एक विशेष मार्गदर्शक ग्रन्थमें रोगोंका विस्तारपूर्वक वर्णन करें, जिससे जनसाधारण समुचित लाभ उठा सकें और हमारा तत्सम्बन्धी प्रयास भी सफल हो। इनके सिवा अन्य विविध रोगोंके लिये प्राकृतिक चिकित्साके सफल प्रयोग बताना भी अभीष्ट था और बताये जा सकते थे; परन्तु ग्रन्थ-विस्तार के भयसे मुझे अपने इस लोभ का संवरण करना पड़ा।

卐 卐

रोगी एवं निरोगीयों (बहनों तथा पुरुषों) की आ प बी ती

वचनामृत

★ समस्त संसारपर सूक्ष्म दृष्टि डालनेसे पता चलता है कि कोई विरल स्त्री-पुरुष ही प्रत्येक प्रकार से सुखी है। इसका मुख्य कारण यह है कि बाहरके जिन साधनोंसे हम सुख, आनन्द और शान्तिका अनुभव करनेका प्रयास करते हैं; वे किसी न किसी कारणवशात् अल्पकालतक ही रहते हैं; सदाकाल वह सुख-सामर्थ्य और समृद्धिका सुख नहीं मिलता। इसी कारण भद्र स्त्री-पुरुष और सद्विचार-सद्गुणसम्पन्न ज्ञानीजन [ससारी अथवा सन्यासी] पक्षियों की तरह अभ्यास और वैराग्यरूपी दो पंखोंको जीवनभर अपने साथ रखते हैं। जैसे पखोंके बिना पक्षियोंकी हलचल असम्भव है, उसी तरह ज्ञान-वैराग्यहीन जीवन भी निष्क्रिय होता है। स्वाभाविक विशुद्ध आनन्दका नित्य-निरन्तर रसास्वादन करानेके लिये 'अभ्यास और वैराग्य' ही सक्षम हैं। जब हम बाहरके सुख-वैभवके साधनोंपर गौण दृष्टि रखेंगे तथा आत्मज्ञानके सम्पादनके लिये अभ्यास और वैराग्यकी साधनाको प्रेमपूर्वक और विशुद्ध भावसे स्वीकार करेंगे; तभी हमें वास्तविक सुख प्राप्त होगा। बाह्य सुख दुःखमिश्रित है और आधि-व्याधि-उपाधिके जन्मदाता हैं। आन्तरिक सुखमें सदा सन्तोष, समाधान तथा शान्ति है। सुज्ञ पाठकवृन्द! क्रमेण इन्द्रियोंके बहिर्वेगको यथासम्भव व्यावहारिक प्रवृत्ति मे व्यय करनेके पश्चात् एकादश (मनसहित) इन्द्रियोंको अच्छी तरहसे स्वाधीन [वश, दमन, अन्तर्मुख, निरोध आदि] करनेका अभ्यास और यत्न करें। इस अभ्याससे आपका जीवन सुगन्धियुक्त गुलाबके फूलके सदृश उत्तम गुणोंसे समलकृत और दुःखोंसे निवृत्त होकर सफलताका असीम आनन्द प्राप्त कर सकेगा।

—योगिराज उमेशचन्द्रजी

'श्रीरामतीर्थ योगाश्रम'

की

सर्वतोभद्र उपयोगिता

आमजनता और योगसाधकोंकी तत्सम्बन्धी सम्मतियां

(१)

निस्स्वार्थ लोकसेवाका आदर्श

श्रीरामतीर्थ योगाश्रमके सर्वसद्गुणालंकृत संचालक श्री. योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजीकी प्रशंसा करनेका सामर्थ्य तो मुझमें नहीं है। आपकी सहृदयता, सरलता, आपका उदात्त भावापन्न मानस, पवित्र जीवन और निस्स्वार्थ प्रभु-प्रीत्यर्थ लोकसेवाका आदर्श समागममें आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको अनन्य आध्यात्मिक आनन्दसे भरपूर कर देता है—सर्वांग पुलकित कर देता है। आपके इन शुभ प्रयत्नोंका प्रसार अखिल भारतवर्षमें अधिकाधिक हो और समग्र देशकी आर्यशक्तिया पुनः आर्यावर्तमें अवतीर्ण होकर विश्वभरको प्रभावित करें; यही ईश्वरसे मेरी हार्दिक प्रार्थना है। योगाश्रमकी समग्र प्रवृतिया सचमुच जन-कल्याणपरक हैं।

दवे मणिलाल हरिनारायण
बी ए. (आनर्स), बरोदा
१४-१०-१९३७ ई.

(२)

शारीरिक एवं मानसिक शक्ति-प्रदानका परोपकारी आयोजन

श्रीरामतीर्थ योगाश्रममें जाकर योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजीसे आज मैंने भेंट की। श्री. उमेशचन्द्रजीकी यह प्रवृत्तियां सचमुच अत्युत्तम हैं। शारीरिक आरोग्यके लिये सिखाये जानेवाले यह यौगिक प्रयोग मनुष्यके मानसिक सामर्थ्य और शारीरिक शक्ति को निस्सन्देह बढ़ायेंगे, यह विश्वास यहां सीखनेवाले व्यक्तिकी प्रगतिको देखकर हो जायेगा। मैं अनुरोध करता हूं कि इस योगाश्रमसे सद्गृहस्थ अवश्य लाभ उठायें।

मोतीराम लक्ष्मण नेरूरकर
बम्बई ४.
ता. ७। १०। १९३७ ई.

(३)

हार्दिक उद्‌गार

श्रीरामतीर्थ योगाश्रमके सर्वगुणसम्पन्न संचालक योगिराज श्री उमेशचन्द्रजीकी प्रशंसा करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। आपकी सदाश [illegible] उच्चतम मानस एवं पवित्र जीवन देख कर मुझे आनन्द होता है। अ [illegible] निस्स्वार्थ उच्चादर्श समागममें आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको अद्‌भुत [illegible] पूर्णतया सन्तुष्ट करता है। भारतमें आपके [illegible] हो और सुषुप्त आर्यशक्तियां जाग्रत् होक[illegible] दें; यही मैं भगवान्‌से शुद्ध अन्तःकरणसे विन[illegible] हृदय की गहराईसे निकले हुए सच्चे उद्[illegible]

(४)

नवचेतन और उल्लासके पुरस्कर्ता श्री. योगिराजजी

श्रीरामतीर्थ योगाश्रमके सर्वसद्‌गुणसम्पन्न सचालक योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजी की प्रशंसा करने बैठूं तो सचमुच ही अन्तःकरण से कहता हूं कि उनके लिये उपयुक्त सुविशेषण खोज निकालना मेरे लिये बहुत कठिन है। विनय, विनम्रता, सरलता, स्वावलम्ब, आत्मसम्मान, पवित्र जीवन और निस्स्वार्थ सेवावृत्ति आदि गुणों के कारण समागम में आनेवाले किसी भी व्यक्ति को आप नवीन चेतना और नवीन उल्लाससे पुरस्कृत करते हैं; यह मैं अपने प्रत्यक्ष अनुभवसे ही कह सकता हूं।

श्री. योगिराजजी के तत्सम्बन्धी कल्याणकारी अथक प्रयास अखिल भारत में अधिकाधिक प्रचारित हों; देशबान्धव आपके सदनुष्ठानसे अधिकाधिक लाभ उठायें तथा अखिल भारत की आर्यशक्तियां आर्यावर्तमें प्रकट होकर समग्र जगत् को अपने शौर्य से पुनः चकित कर दें, यही मेरी परम प्रभुके प्रति अविरत अभ्यर्थना है।

रमेश दाणी
('आतर धुंभावाला')
भूलेश्वर, बम्बई २
ता २६।११।१९३७ ई०

(५)

आन्तरिक समस्याओंका सरल समाधान

श्रीरामतीर्थ योगाश्रमके योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजीका साक्षात्कार करके मुझे अत्यंत आनन्द हुआ है और अनेकश: आन्तरिक बातोंका स्पष्टीकरण समझनेमें हो गया है, अनेक उलझनें सुलझ गई हैं; अतः मेरा अन्तर आनन्द से ओतप्रोत हो गया है। मैं अनुरोध करता हूं कि प्रत्येक आत्मकल्याणकांक्षी व्यक्तियों इस योगाश्रमके

(२)

शारीरिक एवं मानसिक शक्ति-प्रदानका परोपकारी आयोजन

श्रीरामतीर्थ योगाश्रममें जाकर योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजीसे आज मैंने भेंट की। श्री. उमेशचन्द्रजीकी यह प्रवृत्तियां सचमुच अत्युत्तम हैं। शारीरिक आरोग्यके लिये सिखाये जानेवाले यह यौगिक प्रयोग मनुष्यके मानसिक सामर्थ्य और शारीरिक शक्ति को निस्सन्देह बढ़ायेंगे; यह विश्वास यहां सीखनेवाले व्यक्तिकी प्रगतिको देखकर हो जायेगा। मैं अनुरोध करता हूं कि इस योगाश्रमसे सद्गृहस्थ अवश्य लाभ उठायें।

मोतीराम लक्ष्मण नेरूरकर
बम्बई ४.
ता. ७।१०।१९३७ ई.

(३)

हार्दिक उद्गार

श्रीरामतीर्थ योगाश्रमके सर्वगुणसम्पन्न संचालक योगिराज श्री उमेशचन्द्रजीकी प्रशंसा करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। आपकी सदाशयता, ऋजुता, उच्चतम मानस एवं पवित्र जीवन देख कर मुझे आनन्द होता है। आपका लोकसेवामूलक निस्स्वार्थ उच्चादर्श समागममें आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको अद्भुत आध्यात्मिक आनन्दसे पूर्णतया सन्तुष्ट करता है। भारतमें आपके इस शुभ अनुष्ठानका अधिकाधिक प्रचार हो और सुषुप्त आर्यशक्तियां जाग्रत् होकर विश्वको पुनः चकित-स्तम्भित कर दें; यही मैं भगवान्से शुद्ध अन्तःकरणसे विनय करता हूँ। यह कोरी लिखावट नहीं; बल्कि हृदय की गहराईसे निकले हुए सच्चे उद्गार हैं।

त्रिवेदी शिवकुमार शर्मा
ज्योतिषी,
धोराजी (काठियावाड़)
ता. ३०।१०।१९३७ ई०

(४)

नवचेतन और उल्लासके पुरस्कर्ता श्री. योगिराजजी

श्रीरामतीर्थ योगाश्रमके सर्वसद्‌गुणसम्पन्न संचालक योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजी की प्रशंसा करने बैठूं तो सचमुच ही अन्तःकरण से कहता हूं कि उनके लिये उपयुक्त सुविशेषण खोज निकालना मेरे लिये बहुत कठिन है। विनय, विनम्रता, सरलता, स्वावलम्ब, आत्मसम्मान, पवित्र जीवन और निस्स्वार्थ सेवावृत्ति आदि गुणों के कारण समागम में आनेवाले किसी भी व्यक्ति को आप नवीन चेतना और नवीन उल्लाससे पुरस्कृत करते हैं; यह मैं अपने प्रत्यक्ष अनुभवसे ही कह सकता हूं।

श्री. योगिराजजी के तत्सम्बन्धी कल्याणकारी अथक प्रयास अखिल भारत में अधिकाधिक प्रचारित हों; देशबान्धव आपके सदनुष्ठानसे अधिकाधिक लाभ उठायें तथा अखिल भारत की आर्यशक्तियां आर्यावर्तमें प्रकट होकर समग्र जगत् को अपने शौर्य से पुनः चकित कर दें, यही मेरी परम प्रभुके प्रति अविरत अभ्यर्थना है।

रमेश दाणी
(आतर सुंभावाला)
भूलेश्वर, बम्बई २
ता. २६।११।१९३७ ई०

(५)

आन्तरिक समस्याओंका सरल समाधान

श्रीरामतीर्थ योगाश्रममें योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजीका साक्षात्कार करके मुझे गंभीर आनन्द हुआ है और अनेकानेक आन्तरिक बातोंका स्पष्टीकरण सम्पन्न हो गया है. अनेक उलझनें सुलझ गई हैं; अतः मेरा अन्तर आनन्द से ओतप्रोत हो गया है। स्वानुभवसे कहता हूं कि प्रत्येक आत्मकल्याणाकांक्षी व्यक्तिको इस योगाश्रमकी

सत्प्रवृत्तियोंसे अवश्य लाभ उठाना चाहिये। श्री. योगिराजजीकी भाषा सरल और सीधी है, जो मनपर तात्कालिक सीधा प्रभाव डाल सकती है। मेरा हृदय योगिराजजीसे मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ है और मेरे उपलक्ष्यसे उसका लाभ सर्वसाधारणको उपलब्ध हो, यही विनय है। यह मेरे हार्दिक उद्गार हैं। थोड़ी बातचीतमें भी अपना अनुभव दिखाई दे जाता है।

उमरसी नानजी आशर
बम्बई १
ता. १४-१-१९३७ ई.

(६)

डाक्टरोंके पास कभी न जायेंगे

श्रीरामतीर्थ योगाश्रमके संचालक योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजीके योगाश्रममें जाकर मुझे अति आनन्द प्राप्त हुआ है। विभिन्न व्याधियोंके लिये उपयोगी आपकी योग-क्रियाओंका जो भी एकबार अनुभव करेंगे, वह डाक्टरोंके पास जाकर कभी दवा लेने की इच्छा न करेंगे, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। भारत-भूमिकी वास्तविक योगविद्याको पुनर्जीवन प्रदान करनेका सुअवसर हम लोगोंको प्राप्त हुआ है; अतः भारतीय बन्धुओंसे मेरा अनुरोध है कि वह इससे यथासम्भव लाभ उठायें। श्री. स्वामी उमेशचन्द्रजीका विवेक-वैराग्य हृदय-स्पर्शी है; इसका अनुभव उन सभी सज्जनोंको होगा, जिनको आपके सान्निध्यका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। स्वामीजी जिस निष्काम भावसे काम करते है, वह धन्यवादार्ह है। प्रत्येक व्यक्तिका अपनी शारीरिक और मानसिक शक्ति बढ़ानेके लिये इस योगाश्रमसे अवश्य लाभ उठाना चाहिये।

फीरोज शहरयारजी
कापडिया, इंजीनियर
ता. ३०-१-१९३९

(७)

विना दवाके दमाके रोगसे मैं कैसे मुक्त हुआ ?

लगभग १५ वर्षसे मैं भयंकर खांसी और दमेकी व्याधिसे पीड़ित था। रोगसे मुक्ति पानेके लिये मैं अनेक प्रकारके इलाज जैसे होमियोपैथिक और डाक्टरोंकी दवायें और इंजेक्शन आदि लेता रहा; लेकिन मुझे कोई लाभ नहीं हुआ। आहारसे सीधा कफ बन जाता था और दिन भर उसके निकालनेमें ही शक्ति का व्यय होता रहता था। आहारका पाचन नहीं होता था; इसलिये प्रतिदिन दस्त साफ लानेके लिये पाचनकी गोलियों का सेवन करना पड़ता था। शरीर सर्वथा निर्बल हो गया था और ऐसी अवस्था उत्पन्न हो गई कि रास्तेमें बिलकुल चला नहीं जाता था और दादर (सीढ़िया) चढना भी दुष्कर हो गया था। इतने में 'जामे जमशेद' नामक स्थानीय समाचार पत्रमें एक मनुष्य की हाफन (दमा) के पूर्णतया मिट जानेका अभिप्राय पढा, जो प्रार्थनासमाज, बम्बई ४ के निकट (वर्तमान समयमें दादर, बम्बई १४) स्थित श्रीरामतीर्थ योगाश्रमके सम्बन्ध में था; अतः मैंने भी उपर्युक्त योगाश्रममें जानेका विचार किया। मेरी आयु ५९ वर्ष की थी; अतः मैं तो रोगसे मुक्ति पानेकी आशा ही छोड बैठा था; परन्तु आश्रमके सञ्चालक श्री. योगिराजजी ने आश्वासन देते हुए मुझे योगाभ्यास-आसन अर्थात् शरीर-सञ्चालन और प्राणायाम अर्थात् श्वास का फेफड़ों (छाती) में भरनेकी कसरतें बताईं; अतः मुझे दिनभर जो बलगम (कफ) निकलता रहता था, वह बन्द हो गया और भोजन जो पचता नहीं था, वह पचने लगा। दस्त भी बिना गोलीके नियमित आने लगा। भूख अधिकाधिक लगने लगी। पहले कुछ दिनतक तो उबाले हुए पदार्थ ही खाने पड़े, परन्तु बादमें सब कुछ खानेकी छूट (अनुमति) मिल गई। जैसे-जैसे कसरतें (आसनादि) करता गया वैसे-वैसे दमा-जो दिनमें भी चढा रहता था-बन्द हो गया। कुछ दिनतक रातमें चढता रहा। लगभग तीन महीनेतक निरन्तर आसन-व्यायाम करनेके पश्चात् रात में भी दमेका चढना बन्द हो गया। यदि कभी दमेका हमला होता भी तो दो-चार आसन करके लेट जाता तो दमेका प्रभाव बिलकुल शान्त हो जाता और मैं सुखकी नींदमें सो जाता; इसलिये मैं आग्रहपूर्वक अनुरोध करता हूं कि जिन लोगोंको चाहे जैसा भी पुराना दमा हो, इसमें खर्च कर्ज न करके यदि वे आसनों का व्यायाम करें तो वह निस्सन्देह मिट

जायेगा, ऐसा मेरा विश्वसनीय मत है। यह लेख अनुभव कर लेनेके पश्चात् मैंने स्वेच्छापूर्वक लिखा है; क्योंकि अब मैं अपने आरोग्यमय जीवनका सुखोपभोग कर रहा हूँ।

नवरोजी अरदेशर भरूचा
बम्बई
१३।४।१९४३ ई०

卐 卐

(८)
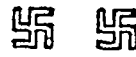
मानव-देहमें सच्चिदानन्दकी झांकी

योगिराज गुरुजी श्री. उमेशचन्द्रजीने अल्पकालमें योगमार्गका कुछ ज्ञान मुझे प्रदान किया; एतदर्थ मैं गुरुजीका अवश्य ऋणी हुआ। अपनी आन्तरिक प्रभु-प्रेरणासे आप निष्काम सेवाभावी हैं और जनताको सन्मार्गपर ले जानेके लिये सभी सम्भव प्रयास कर रहे हैं; इसलिये योगविद्यामें आन्तरिक भावसे लगन लगाकर आप अमूल्य मानव-देहमें सच्चिदानन्दकी झांकी अवश्य पायेंगे। गुरुदेव श्री. उमेशचन्द्रजी आसन प्राणायाम, षट्चक्रभेदन आदि योगविद्याविषयक अत्युत्तम ज्ञान प्रदान कर रहे हैं और इस ज्ञानामृतका पान सभी बन्धु कर सकें; इसके लिये सतत प्रयास कर रहे हैं। परम कृपालु परमात्मा इस समाज-कल्याण-यज्ञ-कार्य (प्रवृत्ति) को सफलता प्रदान करें; यही मेरी हार्दिक प्रार्थना है।

दासानुदासः—
मथुरादास हरिदास
ता. ५-५-१९३८

(९)

जन-सेवाका पवित्र व्रत

योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजीके समागममें मैं कुछ समयसे आया हू। आप योगविद्याके द्वारा जनता में स्वास्थ्य, सुख, शान्ति और शक्तिका प्रसाद वितरण कर रहे हैं। आप अपने कार्यमें सम्पूर्ण सुदक्ष, सेवाभावी, लोभहीन और परोपकारभावापन्न देवपुरुष हैं। आपकी सस्था जन-कल्याण की दृष्टिसे अतीव लाभकर है। आशा है, बम्बईकी जनता आपके इस शुभ प्रयासका आदर करेगी और उससे समुचित लाभ उठायेगी। ईश्वर आपको सफलता प्रदान करे, यही आन्तरिक प्रार्थना है।

त्रिभुवन पद्मसी महुवाकर
बी. ए., एल-एल. बी.
एडवोकेट, हाईकोर्ट
ता. २५-९-१९३८ ई.
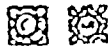
१०

हठीला दमा तथा शरदी मिट गई

मैं लगभग १२ वर्षसे हठीले दमे तथा शरदीके रोगसे पीड़ित था। कभी-कभी तो मेरी स्थिति अत्यन्त गम्भीर हो जाती थी। अच्छे-अच्छे डाक्टरोंसे चिकित्सा कराई और शरदीके असंख्य इञ्जेक्शन भी लिये। दो बार आपरेशन कराया तथा अनेक वैद्योंकी भी औषधिया लीं। फिर भी, दमा और शरदीने पीछा न छोड़ा; बल्कि और अधिक बढ़ गया तथा कभी-कभी तो जीवनके अन्तिम क्षणोंकी स्थिति भी आ पहुंचती थी। किन्तु जबसे श्रीरामतीर्थ योगाश्रममें जाकर विविध आसन, नेति, धौति तथा सूर्य-नमस्कारकी क्रियायें प्रारम्भ कीं; तब से रोगका प्रभाव क्रमशः घटने लगा और अब मैं दमा तथा शरदीके रोगसे सर्वथा मुक्त हो गया हूं। अतः ऐसे रोगियोंके

मेरा अनुरोध है कि वे भी दवाओं की मृगमरीचिका में न पड़कर योगाभ्यास करें। किसी भी रोगके लिये यौगिक चिकित्सा सुलभ तथा श्रेष्ठ है।

हुकुमचन्द गांगजी दोसी
बम्बई
ता. २२।११।१९४२

● ●

(११)
यौगिक उपचारोंकी महत्ता

श्रीरामतीर्थ योगाश्रमके संचालक योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजीकी प्राचीन प्राकृतिक रोगोपचार की पद्धति से मुझे अतीव सन्तोष हुआ है। मैं आत्मकल्याणाकांक्षी जन–समाजसे अनुरोध करता हूं कि वह इस संस्थासे अवश्य ही लाभ उठाये। यौगिक उपचारों से जो स्थायी आरोग्य मिलता है; वह विदेशी औषधियां नहीं दे सकतीं। श्री. योगिराजजी मिलनसार और उदात्त भावापन्न हैं।

शास्त्री रेवाशंकर मेघजी देलवाड़कर
अध्यापक, डी. एल. संस्कृत-पाठशाला,
गुलालवाडी, बम्बई
८।१।१९४१ ई०

卐 卐

(१२)

दमा समूल नष्ट हो गया

मेरी माताको लगभग २७ वर्षकी आयुसे दमेका रोग शुरू हुआ और २१ वर्ष तक लगातार रहा। अनेक अंगरेजी दवायें कीं। किन्तु कुछ लाभ न हुआ। अन्ततः योगिराज श्री उमेशचन्द्रजी की शरण में गया। मुसलमान होनेके कारण योगविद्यामें मेरा विश्वास न था। फिर भी, योगिराजजीका आश्वासन पाकर मैं योगाश्रममें अपनी माताको ले गया। आपने सभी उपचार तो नहीं किये। फिर भी, पथ्य और कुछ आसनोंके अभ्याससे उनका दमा बहुत कम हो गया। आज माकी उम्र ४८ वर्षकी है। दमेका नामनिशान भी नहीं रहा। वे सबसे योगिराजजीकी सराहना करती तथा उन्हें आशीर्वाद देती हैं।

कुरबान अली मोहम्मद
ठि. रहमतबाई हबीब बिल्डिंग
डोंगरी, बम्बई ९
१९।११।१९४१ ई०

(१३)

आँखोंकी ज्योतिमें असीम वृद्धि

मेरी उम्र ३९ वर्षकी है। मेरी आंखोंकी ज्योति बहुत ही क्षीण हो गई थी। पढ़ते समय अक्षर बहुत अस्पष्ट दिखाई देते थे, अत चश्मेका उपयोग करना पड़ता था। आंखोंसे पानी भी भरता रहता था। रात में बहुत कम दिखाई देता था। आंखोंमें गरमी बहुत थी। अनेक देशी और विदेशी औषधियोंका उपयोग किया, किन्तु बिलकुल लाभ नहीं हुआ। इसके बाद श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, बम्बई में यौगिक आसनादिके प्रयोग प्रारम्भ किये, फलतः अब मेरी आंखोंकी ज्योतिमें असीम वृद्धि हो

मेरा अनुरोध है कि वे भी दवाओं की मृगमरीचिका में न पड़कर योगाभ्यास करें। किसी भी रोगके लिये यौगिक चिकित्सा सुलभ तथा श्रेष्ठ है।

हुकुमचन्द गांगजी दोसी
बम्बई
ता. २२।११।१९४२

● ●

(११)
यौगिक उपचारोंकी महत्ता

श्रीरामतीर्थ योगाश्रमके संचालक योगीराज श्री. उमेशचन्द्रजीकी प्राचीन प्राकृतिक रोगोपचार की पद्धति से मुझे अतीव सन्तोष हुआ है। मैं आत्मकल्याणाकांक्षी जन-समाजसे अनुरोध करता हूं कि वह इस संस्थासे अवश्य ही लाभ उठाये। यौगिक उपचारों से जो स्थायी आरोग्य मिलता है; वह विदेशी औषधियां नहीं दे सकतीं। श्री. योगिराजजी मिलनसार और उदात्त भावापन्न हैं।

शास्त्री रेवाशंकर मेघजी देलवाड़कर
अध्यापक, डी. एल. संस्कृत-पाठशाला,
गुलालवाडी, बम्बई
८।१।१९४१ ई०

卐 卐

(१२)

दमा समूल नष्ट हो गया

मेरी माताको लगभग २७ वर्षकी आयुसे दमेका रोग शुरू हुआ और २१ वर्ष तक लगातार रहा। अनेक अंगरेजी दवायें कीं। किन्तु कुछ लाभ न हुआ। अन्ततः योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजी की शरण में गया। मुसलमान होनेके कारण योगविद्यामें मेरा विश्वास न था। फिर भी, योगिराजजीका आश्वासन पाकर मैं योगाश्रममें अपनी माताको ले गया। आपने सभी उपचार तो नहीं किये। फिर भी, पथ्य और कुछ आसनोंके अभ्याससे उनका दमा बहुत कम हो गया। आज मांकी उम्र ४८ वर्षकी है। दमेका नामनिशान भी नहीं रहा। वे सबसे योगिराजजीकी सराहना करती तथा उन्हें आशीर्वाद देती हैं।

कुरबान अली मोहम्मद
ठि. रहमतबाई इबीन बिल्डिग
डोंगरी, बम्बई ९
१९।११।१९४१ ई०

(१३)

आंखोंकी ज्योतिमें असीम वृद्धि

मेरी उम्र ३९ वर्षकी है। मेरी आंखोंकी ज्योति बहुत ही क्षीण हो गई थी। पढते समय अक्षर बहुत अस्पष्ट दिखाई देते थे, अतः चश्मेका उपयोग करना पडता था। आंखोंसे पानी भी भरता रहता था। रात में बहुत कम दिखाई देता था। आखोंमें गरमी बहुत थी। अनेक देशी और विदेशी औषधियोंका उपयोग किया, किन्तु बिल्कुल लाभ नहा हुआ। इसके बाद श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, बम्बई में यौगिक आसनादिके प्रयोग प्रारम्भ किये; फलतः अब मेरी आंखोंकी ज्योतिमें असीम वृद्धि हो

गई है और अन्य शिकायतें भी दूर हो गई हैं। प्रत्येक भाई-बहनसे मेरा हार्दिक अनुरोध है कि मेरी तरह वे भी इस यौगिक उपचारसे लाभ उठायें।

रामचन्द्र एस. कर्णिक
बम्बई
ता. २६।१।१९४२ ई०
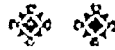
(१४)

योग और कायाकल्प

उपवास-चिकित्सा तथा हरीतकी के प्रयोगसे गत वर्ष मेरा वजन बहुत घट गया था तथा शरीरमें फीकापन (एनेमिक कण्डीशन) आ गया। शरीर क्षय-रोग-जैसा दिखाई देने लगा। अनेक कसरतों और दवाओंके प्रयोगसे भी मैं अपनी पूर्व-स्थितिपर पहुंच न सका। अन्ततः पूज्यपाद स्वामी श्री. उमेशचन्द्रजीकी देखरेखमें सामान्य आसन-जैसे कि पश्चिमोत्तानासन, उत्त्थानपादासन, हलासन, सर्वांगासन, बद्धपद्मासन आदि १५। १५ सेकण्ड, शवासन ५ मिनट तथा प्राणायाम करने एवं दो बार-प्रातः सायं-दूध और फकत दोपहरमें एकबार सादा भोजन लेनेसे तीन-साढे तीन महीनेमें मेरा वजन १४ रत्तल बढ़ गया। थकावट, आलस्य और बेचैनी भी मिट गई। अब शारीरिक स्फूर्ति, मानसिक शान्ति तथा आनन्द दिनभर रहता है।

इसी कालान्तरमें एक अकल्पनीय चमत्कार हुआ। बहुत समयसे मेरे शिरके बाल झड़ रहे थे और गत छः महीनेसे शिर का मध्य-भाग बिलकुल साफ हो गया था। किन्तु अब वह स्थिति मिट गई है और चँदुए स्थानपर अब पहलेसे भी अधिक नये बाल आ गये हैं। अतः डाक्टरों और वैद्य बन्धुओंसे मेरी विनम्र विनय है कि वे श्रद्धा-विश्वासपूर्वक योग-विद्या का अध्ययन-अनुष्ठान करें और अपने व्यवसाय में इसे स्थान देकर प्रजा के दु:ख-दर्दों को शीघ्र समूल नष्ट करें तथा स्वतन्त्र भारत का कायाकल्प करने में अपना बहुमूल्य सहयोग प्रदान करें।

वैद्य नर्मदाशंकर मोरेश्वर
दवे, बम्बई
ता. २०।३।१९५८ ई०

(१५)

असाध्य व्याधियोंसे छुटकारा

शिरपीड़ा, अशक्ति, कब्जियत आदि विविध व्याधियों से ग्रस्त शारीरिक स्थिति को लेकर श्रीरामतीर्थ योगाश्रममें मैं योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजीसे मिला। कभी-कभी छः महीनेतक लगातार मुझे ज्वर भी आया करता था। श्री. योगिराजजीने इसका कारण पित्तप्रकोप बताया और अतीव सेवाभाव से यौगिक और प्राकृतिक उपचार कर मात्र एक महीनेके अल्पकाल में ही मेरी असाधारण रुग्णावस्था में महान् परिवर्तन सघटित कर दिया। अब मैं सम्पूर्ण नीरोगी हूँ। अतः मैं श्री. योगिराजजीके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए अन्य असाध्य व्याधिपीड़ित बन्धुओंसे अनुरोध करता हूँ कि वे आज ही, बल्कि अभी इन अलभ्य प्राकृतिक और यौगिक उपचारोंसे लाभ उठायें तथा आरोग्यके साथ दीर्घायुष्य का उपभोग करें। योगिराजजीके सम्बन्धमें कुछ लिखनेको बुद्धि-प्रतिभा मेरे पास नहीं है। महापुरुष का परिचय कोई महापुरुष ही करा सकता है।

देवाजी मालूजी (कच्छ)
१०।९।१९३९ ई.

卐 卐

(१६)
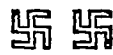
लोक--कल्याणकी सच्ची प्रवृत्ति

श्री. रामतीर्थ योगाश्रमके संचालक योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजीकी प्रवृत्तियां वास्तविक आत्मसुख, अर्थात् शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान कर जनसाधारणको जीवनके सच्चे सुख की ओर ले जानेवाली हैं। इसी पवित्र उद्देश्यको लेकर आप जनसेवाके कार्यमें अहर्निश तत्पर हैं। आपका यह अनुष्ठान सचमुच सराहनीय है। ईश्वर आपके इस सदनुष्ठानमें सहायता करे और उनका यह कार्यक्रम सदा अखण्ड रूपसे चलता रहे, यही मेरी हार्दिक सदिच्छा है।

महादेव देसाई
लेमिंग्टन रोड, बम्बई ७
ता. २६।२।१९३८ ई.

(१७)

बवासीर (मूलव्याधि) मिट गई

मैं कई वर्षोंतक मिल में मिकेनिक फोरमैनके पदपर रहा। मुझे निवास, भोजन और अन्य सुविधायें उपलब्ध हैं। फिर भी, कभी-कभी शरीर सुस्त और जड़ हो जाता था तथा कभी बवासीर (अर्श) का प्रभाव आ दबाता था। यद्यपि मैं कसरत नित्य भली प्रकार नियमित रूपसे करता था। फिर भी, अभीष्ट लाभ मिल नहीं पाता था। कुछ महीने पहले मैं श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के संचालक योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजीसे मिला। योगिराजजीने विशेष अनुरोध करते हुए योगाभ्यासके अव्यर्थ लाभोंके लिये विश्वास दिलाया। तदनुसार प्रतिदिन नियमित रूपसे योगाश्रममें प्राणायाम, आसनादिका अभ्यास करता हूं। सम्प्रति मेरी उम्र ६९ वर्षकी है और कुछ महीनोंके बाद ७० वां वर्ष प्रारम्भ होगा। यह लिखते हुए मुझे अति आनन्द होता है कि योगाभ्यास से मेरे शरीर की स्फूर्ति बहुत बढ़ गई है। शरीर हलका मालूम पड़ता है। परिश्रमका काम करनेपर भी थकावटका अनुभव नहीं होता। बवासीर (हरस) के मस्सों से जो रक्त झरता था, वह बन्द हो गया है अर्थात् बवासीरके रोगसे मैं पूर्णतया मुक्त हो गया हू। भूख खुलकर लगती है। दस्त-पेशाब नियमित रूपसे साफ आता है। जुलाबकी गोलियां लेनी नहीं पड़तीं; क्योंकि मलावरोध (कब्जियत) की शिकायत अब बिलकुल नहीं रही। मन शान्त और एकाग्र रहता है। सचमुच गुरुजीका स्वभाव ममत्वपूर्ण, मिलनसार और निस्स्वार्थ सेवाभावी तथा उत्साहवर्धक है। यही कारण है कि योगाश्रम में अभ्यास करनेवाले भाइयो और बहनोंको अत्यधिक शारीरिक और मानसिक लाभ प्राप्त होता है तथा वे आत्मकल्याण-पथके पथिक बन जाते हैं। मेरी आयु यद्यपि अधिक है; तथापि कम आयुवालेके समान हाव-भाव और हलचल मुझमें पूर्णतया विद्यमान हैं। मन युवावस्थाके उत्साहपूर्ण उच्च विचारोंमें सदैव ओतप्रोत रहता है। मैं हमेशा प्रसन्न-चित्त रहता हू। कभी-कभी श्रीरामतीर्थ योगाश्रममें जाकर गुरुदेव (योगाश्रमके सचालक) के मुखारविन्दसे शारीरिक, मानसिक उन्नति एवं आत्मकल्याणविषयक व्याख्यान सुनता हू, जिससे मुझे तथा योगाश्रममें आनेवाले अन्य अनेक जिज्ञासु बहन-भाइयोंको लाभ मिलता है। भारतमें ऐसे अनेक योगाश्रमोंकी आवश्यकता है; क्योंकि अस्पतालों तथा दवाखानोंका आश्रय लेने से शारीरिक तथा मानसिक रोगोंका समूलोन्मूलन नहीं

होता; अस्थायी आराम भले ही मिल जाये। अतः आमजनतासे मेरी विनम्र विनती है कि वह अस्पतालों तथा दवाखानोंकी शरण न लेकर योगाश्रमोंके शान्तिमय वातावरणमें योगाभ्यासके चिरस्थायी लाभोंसे पुरस्कृत हो तथा चिरआरोग्य और अलौकिक सुख-शान्तिका अनुभव करे।

मैं पारसी होकर भी शाकाहारी हूँ। मैं हिंसाको प्रोत्साहन देनेवाले मांसाहारको अनुचित मानता हूँ तथा शरीर और मनको लाभ पहुचानेवाले सात्विक शाकाहारका नित्य उपयोग करता हूँ।

हीराजी नवरोजी मिस्त्री
दादर, बम्बई.
ता. २९।७।१९५८

(१८)

योगाभ्यासके अलभ्य एवं अद्‌भुत लाभ

मेरा स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ था। भयकर जुकामसे मैं बहुत पीड़ित रहता था। छींकें आने लगतीं तो पचासों लगातार आती ही रहती थीं। नाकसे पानी बहा करता था। भगवत्कृपा और श्रीरामतीर्थ योगाश्रमके संचालक योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजीके द्वारा उपलब्ध यौगिक क्रियाओंसे मुझे आशातीत लाभ हुआ और ४ मासके सतत नियमित योगाभ्यास से उपरिलिखित मेरी सभी शिकायतें समन्ततः समाप्त हो गईं। अब मैं पूर्णतया नीरोग हू। योगाभ्यास शारीरिक और मानसिक सामर्थ्य के साथ ऐहलौकिक तथा पारलौकिक सुख-समृद्धि भी प्रदान करता है, इसमें सन्देह नहीं। जनसाधारण को इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिये।

रामनरेश मिश्र शास्त्री
साहित्याचार्य,
प्रतापगढ़ (उत्तरप्रदेश)
ता. ८।३।१९३९ ई.

(१७)

बवासीर (मूलव्याधि) मिट गई

मैं कई वर्षोंतक मिल में मिकेनिक फोरमैनके पदपर रहा। मुझे निवास, भोजन और अन्य सुविधायें उपलब्ध हैं। फिर भी, कभी-कभी शरीर सुस्त और जड़ हो जाता था तथा कभी बवासीर (अर्श) का प्रभाव आ दबाता था। यद्यपि मैं कसरत नित्य भली प्रकार नियमित रूपसे करता था। फिर भी, अभीष्ट लाभ मिल नहीं पाता था। कुछ महीने पहले मैं श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के संचालक योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजीसे मिला। योगिराजजीने विशेष अनुरोध करते हुए योगाभ्यासके अन्यर्थ लाभोंके लिये विश्वास दिलाया। तदनुसार प्रतिदिन नियमित रूपसे योगाश्रममें प्राणायाम, आसनादिका अभ्यास करता हूं। सम्प्रति मेरी उम्र ६९ वर्षकी है और कुछ महीनोंके बाद ७० वां वर्ष प्रारम्भ होगा। यह लिखते हुए मुझे अति आनन्द होता है कि योगाभ्यास से मेरे शरीर की स्फूर्ति बहुत बढ़ गई है। शरीर हलका मालूम पड़ता है। परिश्रमका काम करनेपर भी थकावटका अनुभव नहीं होता। बवासीर (हरस) के मस्सों से जो रक्त झरता था, वह बन्द हो गया है अर्थात् बवासीरके रोगसे मै पूर्णतया मुक्त हो गया हूं। भूख खुलकर लगती है। दस्त-पेशाब नियमित रूपसे साफ आता है। जुलाबकी गोलिया लेनी नहीं पड़तीं; क्योंकि मलावरोध (कब्जियत) की शिकायत अब बिलकुल नहीं रही। मन शान्त और एकाग्र रहता है। सचमुच गुरुजीका स्वभाव ममत्वपूर्ण, मिलनसार और निस्स्वार्थ सेवाभावी तथा उत्साहवर्धक है। यही कारण है कि योगाश्रम में अभ्यास करनेवाले भाइयों और बहनोंको अत्यधिक शारीरिक और मानसिक लाभ प्राप्त होता है तथा वे आत्मकल्याण-पथके पथिक बन जाते हैं। मेरी आयु यद्यपि अधिक है; तथापि कम आयुवालेके समान हाव-भाव और हलचल मुझमें पूर्णतया विद्यमान है। मन युवावस्थाके उत्साहपूर्ण उच्च विचारोंमें सदैव ओतप्रोत रहता है। मैं हमेशा प्रसन्न-चित्त रहता हू। कभी-कभी श्रीरामतीर्थ योगाश्रममें जाकर गुरुदेव (योगाश्रमके सचालक) के मुखारविन्दसे शारीरिक, मानसिक उन्नति एवं आत्मकल्याणविषयक व्याख्यान सुनता हू, जिससे मुझे तथा योगाश्रममें आनेवाले अन्य अनेक जिज्ञासु बहन-भाइयोंको लाभ मिलता है। भारतमें ऐसे अनेक योगाश्रमोंकी आवश्यकता है; क्योंकि अस्पतालों तथा दवाखानोंका आश्रय लेने से शारीरिक तथा मानसिक रोगोंका समूलोन्मूलन नहीं

होता; अस्थायी आराम भले ही मिल जाये। अतः आमजनतासे मेरी विनम्र विनती है कि वह अस्पतालों तथा दवाखानोंकी शरण न लेकर योगाश्रमोंके शान्तिमय वातावरणमें योगाभ्यासके चिरस्थायी लाभोंसे पुरस्कृत हो तथा चिरआरोग्य और अलौकिक सुख–शान्तिका अनुभव करे।

मैं पारसी होकर भी शाकाहारी हूँ। मैं हिंसाको प्रोत्साहन देनेवाले मांसाहारको अनुचित मानता हूँ तथा शरीर और मनको लाभ पहुंचानेवाले सात्विक शाकाहारका नित्य उपयोग करता हूँ।

हीराजी नवरोजी मिस्त्री
दादर, बम्बई.
ता. २९।७।१९५८

(१८)

योगाभ्यासके अलभ्य एवं अद्भुत लाभ

मेरा स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ था। भयंकर जुकामसे मैं बहुत पीड़ित रहता था। छींकें आने लगतीं तो पचासों लगातार आती ही रहती थीं। नाकसे पानी बहा करता था। भगवत्कृपा और श्रीरामतीर्थ योगाश्रमके संचालक योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजीके द्वारा उपलब्ध यौगिक क्रियाओंसे मुझे आशातीत लाभ हुआ और ४ मासके सतत नियमित योगाभ्यास से उपरिलिखित मेरी सभी शिकायतें समन्ततः समाप्त हो गईं। अब मैं पूर्णतया नीरोग हूं। योगाभ्यास शारीरिक और मानसिक सामर्थ्य के साथ ऐहलौकिक तथा पारलौकिक सुख–समृद्धि भी प्रदान करता है, इसमें सन्देह नहीं। जनसाधारण को इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिये।

रामनरेश मिश्र शास्त्री
साहित्याचार्य,
प्रतापगढ़ (उत्तरप्रदेश)
ता. ८।३।१९३९ ई.

(१९)

शरदी और गलेके रोगसे छुटकारा

अनेक वर्षों से मै शरदी और गलेके रोगसे पीड़ित रहता था। डाक्टरी इलाज–इंजेक्शन, आपरेशन आदिसे कुछ समयतक चंगा रहता; परंतु तत्पश्चात् पुनः वही रोग आ दबाता। दिनभर छींकें आती रहतीं और नाक से पानी झरता रहता; फलतः मुझे बड़ी तकलीफ और परेशानी उठानी पड़ती। गत चार माससे तो शरदी जड़ जमाकर ही आ बैठी थी और अति भयकर स्थितिपर पहुंच गई थी। इस बार डाक्टरी दवाओंसे भी कुछ लाभ न हुआ। अन्तमें मैं श्रीरामतीर्थ योगाश्रममें प्राकृतिक उपचारके लिये प्रविष्ट हुआ और श्री. स्वामी उमेशचन्द्रजीके निर्देशानुसार विभिन्न आसनोंका अभ्यास शुरू किया। पांच–छः दिनमें ही आसनोंका प्रभाव प्रकट हुआ और शरदीका प्रकोप शान्त होने लगा। नेति, धौति और आसनोंके सतत अभ्यास से एक महिनेमें ही शरदी लगभग समाप्त हो गई। छातीमें निरन्तर पीड़ा रहती थी; परंतु योगाभ्यास और श्रीरामतीर्थ ब्राह्मी तेल की मालिश प्रतिदिन स्नान करनेसे पहले करनेसे बहुत लाभ पहुंचा और छातीका दर्द मिट गया। अब मैं पूर्णतया आरोग्यमय हूँ। भूख खुलकर लगती है। भोजन भलीभाति पचता है। मन प्रसन्न रहता है। अब मुझे किसी प्रकारका रोग–विकार नहीं रहा। अतः अब मैं दृढ़ विश्वास के साथ कह सकता हूं कि किसी भी रोगसे मुक्त होनेके लिये आसनोपचार निस्सन्देह एक अव्यर्थ उपाय है। श्री. स्वामीजी सच्चे भाव और हार्दिक स्नेहपूर्वक आसन और नेति, धौति आदि विविध यौगिक क्रियाओंकी सुयोजित शिक्षा देते हैं। अतएव जो लोग तन–मनको निरन्तर बलवान् और स्वस्थ बनाये रखने की इच्छा रखते हैं, उनका कर्तव्य है कि वे योगमार्गका अवलम्बन कर लाभ उठायें।

छोटालाल एन्. मास्तर
बम्बई.
ता. १।५।१९४३ ई.

(२०)

योगाभ्यास द्वारा अनेक रोगोंसे मुक्ति

मेरे शरीरमें अपचन, आलस्य, मलबद्धता, वीर्यदोष, पाण्डुरोग, अशक्ति, शिर-चकराना आदि अनेक रोग बद्धमूल हो गये थे और उनके कारण मैं बहुत ही हैरान-परेशान रहा करता था। इन व्याधियोंसे छुटकारा पानेके लिये मैंने वैद्यों और डाक्टरोंकी नाना प्रकारकी औषधियां और इंजेक्शन लिये; परंतु ये सब औषधिक उपचार मेरी व्याधियोंका दमन करने में समर्थ न हुए। अन्ततः मैंने श्रीरामतीर्थ योगाश्रमकी शरण ली और वहां योगाभ्यास, पेटकी मालिश और अन्य नैसर्गिक उपचार कराये, फलतः अब मैं पूर्णतया रोगमुक्त हो गया हूं। मेरी तरह मेरी पत्नी भी अनेक कठिन रोगोंके चंगुल में जकड़ी हुई थी; फलतः अबतक मुझे कोई सन्तान भी नहीं हुई थी। डाक्टरी औषधियोंकी असफल चिकित्साके बाद अन्ततः मैं पत्नीको भी श्रीरामतीर्थ योगाश्रमकी शरणमें ले गया और वहां श्री. स्वामीजीके अनुशासनमें उसकी भी यौगिक चिकित्सा प्रारम्भ हुई। मुझे यह बताते हुए परम हर्ष हो रहा है कि कुछ ही महीनोंकी प्राकृतिक चिकित्साके प्रसादसे मेरी पत्नीके भी सभी रोग दूर हो गये। वह सम्पूर्ण स्वस्थ हो गई और मुझे पुत्र-सन्तानकी भी प्राप्ति हुई है। अतः मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि यौगिक और प्राकृतिक चिकित्सा सचमुच अति लाभदायक है और इसका आयोजन करनेवाले श्री. स्वामीजी धन्यवादार्ह हैं।

गेनू गणपत तपे
बम्बई
ता. १०।९।१९५१

॥

(२१)

मेरा अनन्य अनुभव

मेरे शरीरके दाहिनी ओरके अंगमें (पसलीके नीचेके भागमें) बहुत तनाव तथा पीड़ाका अनुभव होता रहता था। लगभग ३ वर्षसे यह रोग मुझे कष्ट दे रहा था। इसके कारण मुझे कोई काम करना, बैठना-उठना, खाना-पीना, बातचीत करना आदि

कुछ भी बिलकुल अच्छा नहीं लगता था। इस रोगके निवारणके लिये मैंने प्रख्यात वैद्यों, हकीमों और डाक्टरोंसे देशी-विदेशी दवायें और इंजेक्शन लिये; किन्तु किसी प्रकारका लाभ न हुआ और मैं रोगसे पूर्ववत् परेशान-पीड़ित रहा। अन्तमें एक मित्रकी सलाहसे मैं श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में प्रविष्ट हुआ। एक महीनेतक लगातार योगाभ्यास-आसन, प्राणायाम, धौतिकर्म, सूर्य-किरण-चिकित्सा, जलोपचार आदि-करनेसे अब मेरा रोग दूर हो गया है। अब मेरे शरीरमें पूर्वोक्त कोई भी रोग नहीं रहा और मैं पूर्णतया स्वस्थ हो गया हूं।

ठाकुरप्रसाद रामदास
बम्बई
ता. २९।९।१९४१ ई०
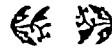
(२२)

वृजनमें आशातीत वृद्धि

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजी के सान्निध्य में मैंने ६ महीनेतक आसन, प्राणायाम, मुद्रा आदिका अभ्यास किया। पेटकी मालिश भी चालू रही। आश्रममें प्रवेश करनेसे पहले मेरी प्रकृति-शारीरिक और मानसिक स्थिति-बहुत क्षीण थी। अन्नका पाचन अच्छी तरह नहीं होता था। पूर्वोक्त योगाभ्यासके पश्चात् अब मेरी प्रकृति (तबियत) में सम्पूर्ण सुधार हो गया है और अंग-प्रत्यंग स्वस्थ तथा सबल हो गये हैं। मेरे वजनमें भी आशातीत वृद्धि हुई है।

जयदेव मुद्दीर
माटुंगा, बम्बई.
ता. २२।१।१९४१

(२३)

नेत्र-रोगसे मुक्ति

मेरी आंखें मायोपिया रोग से पीड़ित थीं। अनेक प्रकारकी आयुर्वेदिक और डाक्टरी औषधियोंका उपयोग किया; किन्तु कोई आशाजनक परिणाम प्रकट न हुआ। अन्ततः मैं प्राकृतिक और यौगिक चिकित्साके लिये श्रीरामतीर्थ योगाश्रममें प्रविष्ट हुआ। मुझे यह लिखते हुए आनन्द होता है कि श्री. योगिराजजीके सान्निध्यमें दो महीनेके अल्पकाल में ही मेरी आंखोंको असीम लाभ पहुंचा और वे पूर्णतया रोगमुक्त हो गईं। केवल यौगिक आसनोंके अभ्याससे ही मेरे स्वास्थ्यमें चमत्कारपूर्ण शुभ परिवर्तन हुआ। सचमुच अब मुझे विश्वास हो गया है कि प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञान वर्तमान डाक्टरी औषधि-विज्ञानसे विशेष सफल और श्रेष्ठ है। आशा है, भारतीय जनता वर्तमान औषधियोंकी मृग-मरीचिकामें न पड़कर प्राकृतिक यौगिक उपचार से लाभ उठायेगी। प्राकृतिक चिकित्सा आर्थिक दृष्टिसे भी औषधियोंकी तुलना में कहीं अधिक सस्ती, सुलभ तथा सफल है।

आपका विश्वस्त—
एस. वी. नागरकट्टी
ग्राउण्ड इंजिनियरिंग स्टुडेण्ट,
कराची एरो क्लब.
ता. ६।५।१९४१ ई.

(२४)

यौगिक और प्राकृतिक चिकित्साका अप्रतिहत प्रभाव

मैं नीचे हस्ताक्षर करनेवाला प्रभाकर हरी जोशी कई वर्षोंसे आमवात, पित्त-विकार, अशक्ति, शरीर का अल्पवजन तथा जीर्णज्वर आदि व्याधियों से पीड़ित रहा करता था। अनेक प्रकारके उपचार—जैसे आयुर्वेदिक, ॲलोपैथी और घरेलू उपचार करानेमें धन और समयका अपव्यय करनेपर भी आराम न हुआ। तदुपरान्त अन्तिम उपचार के रूपमें मैंने श्रीरामतीर्थ योगाश्रम (दादर, बम्बई १४) का आश्रय

ग्रहण किया। आज भी यहां मेरी यौगिक और प्राकृतिक चिकित्साका विधान चल रहा है। आश्रममें प्रवेश करनेके पश्चात् अब मेरे जीवन में आशाजनक परिवर्तन हुआ है और शरीरका वजन अभीष्ट परिमाणमें वढ रहा है। उपर्युक्त व्याधियोंकी यातनाओंसे अब मैं पूर्णतया मुक्त हो गया हूँ। अब मेरे शरीरमें कोई भी बीमारी नहीं रही। अब मुझे नया जीवन लाभ हुआ है और मैं सचमुच विश्वास करने लगा हूं कि यौगिक तथा प्राकृतिक उपचारोंसे शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य निस्सन्देह प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त मैं सूर्य-नमस्कार भी करता हूं। सूर्य-नमस्कार में अनेक आसन आ जाते हैं; फलतः शरीर के अंग-प्रत्यंगों को अनेक प्रकार के लाभ मिले हैं।

रूम नं. ६, ईरानी चाळ,
न. भि. केळकर रोड,
दादर, बम्बई २८.

प्रभाकर हरी जोशी
२५।९।१९५८.

(२५)

बिहारके सहकारिता, पशुपालन एवं कानून-मन्त्री श्री. जगत्नारायणलालके हृदयोद्गार

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, बम्बई (१४) और उसके संस्थापक योगिराज श्री० उमेशचन्द्रजीको देखकर तथा योगिराजजीसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। विशेष आनन्द मुझे यह देखकर हुआ कि योगिराजजी पारिवारिक जीवन व्यतीत करते हुए और किसी सरकारी या अर्धसरकारी संस्थाका सहारा अद्यावधि न लेकर प्रायः २५ वर्षों से (स्थापनाकाल सन् १९३३) स्वावलम्बन के आधारपर इस आयोजन को चला रहे हैं। स्वामीजीके सभी बच्चे और बच्चों की माताजी उनके मार्ग के श्रद्धालु अनुयायी हैं और आसनों के अभ्यास में काफी प्रवीणता प्राप्त कर चुके हैं।

यहां नित्य प्रातः-सायं आसनों की शिक्षा और शनिवार तथा रविवार को योग, उपनिषदादि विषयोंपर उपदेश दिया जाता है।

मैं इस आश्रम को और इसके संस्थापक एवं संचालक योगिराजजीको उनके इस पवित्र प्रयास के लिये बधाई देता हूँ और इसकी उत्तरोत्तर उन्नतिकी मगल॰ कामना करता हू।

इस आश्रम के साथ मेरे गुरुदेव श्री० स्वामी रामतीर्थजी महाराजका नाम जुड़ा हुआ है, इससे मेरे लिये तो यह और भी प्रियतर है।

योगिराजजीने बिहार सपरिवार पधारनेका एवं योगासनों और योगके प्रचार में पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन दिया है; अतएव इस योगाश्रमके लिये अपनी छोटी–सी पुष्पांजलि ऐच्छिक अनुदानके रूपमें १५१) प्रदान करता हूं।

जगत्नारायणलाल
मंत्री, सहकारिता, पशुपालन एवं कानून,
बिहार, पटना
५।११।१९५८ ई.

(२६)

श्री. रामप्यारी देवी, एम. एल. सी. (पटना, बिहार)

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम को देखने का आज मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस आश्रम तथा आश्रम के कार्यक्रम तथा योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजी को देखकर मैं बहुत प्रभावित हुई। मानव–समाज को सच्ची मानवताका मार्ग सिखाने के लिये श्री० योगिराजजी प्रयत्नशील हैं। मानवताके लिये स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन ही अनिवार्य है। इन्हीं मार्गों से मनुष्य आत्मसाक्षात्कार कर ईश्वर के निकट भी पहुंच सकता है। इस संस्था द्वारा मनुष्य शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। मैं इस संस्था की सफलता की कामना करती हूँ। ऐसी संस्था की देश को आवश्यकता है। योगिराजजी के प्रयत्न से समाज को बल मिलेगा, ऐसी आशा है।

रामप्यारी देवी
एम. एल. सी.,
पटना (बिहार)
ता. ५ । ११ । ५८

श्रीमती रामप्यारी देवी, एम. एल. सी. बिहार के सहकारिता, पशुपालन एवं कानून–मन्त्री श्री. जगत्नारायणलाल की विदुषी धर्मपत्नी हैं।

योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजी (स्वामीजी)
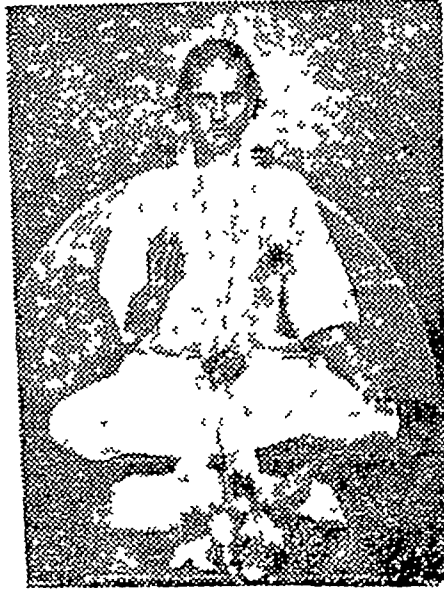
संक्षिप्त जीवन-परिचय

वर्तमान जड़-चेतन जगत् में मानव सृष्टिका श्रीगणेश होनेके साथ ही शारीरिक, मानसिक और आत्मिक निर्माण एवं परिष्कार के प्रयत्न निरन्तर रूपसे चले आ रहे हैं। मानव निरन्तर सुख, शान्ति और आनन्द की खोजमें व्यस्त है। वैदिक काल के ऋषिमहर्षियोंने इन महान् स्थितियों को उपलब्ध करने के लिये अपने अलौकिक और अनिर्वचनीय सामर्थ्य और अपनी स्थितप्रज्ञ बुद्धिसे जा लोक-मंगलकारी विधान बनाया

योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजी (स्वामीजी)
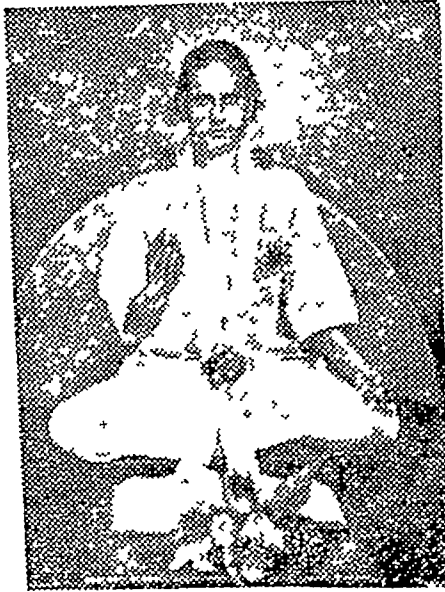
* *

संक्षिप्त जीवन-परिचय

वर्तमान जड़-चेतन जगत् में मानव सृष्टिका श्रीगणेश होनेके साथ ही शारीरिक, मानसिक और आत्मिक निर्माण एवं परिष्कार के प्रयत्न निरन्तर रूपसे चले आ रहे हैं। मानव निरन्तर सुख, शान्ति और आनन्द की खोजमें व्यस्त है। वैदिक काल के ऋषिमहर्षियोंने इन महान् स्थितियों को उपलब्ध करने के लिये अपने अलौकिक और अनिर्वचनीय सामर्थ्य और अपनी स्थितप्रज्ञ बुद्धिसे जो लोक-मंगलकारी विधान बनाया

तथा जो सार्वभौम नियम निर्धारित किये, वे निस्सन्देह अखिल विश्वके लिये पालनीय तथा सुख, शान्ति और आनन्द की अनुभूति कराने में समर्थ हैं। यदि आजका अशान्त मानव इन नियमों को अपने जीवन में अंगीकार करे और तदनुसार जीवन-व्यवहारका संचालन करता रहे तो विश्व आज ही स्वर्गमें रूपान्तरित हो जाये और जनगण देवत्वकी प्रतिभा-प्रभासे उद्दीप्त हो उठें। भारत में आज भी उन विश्व-मंगलकारी महर्षियों की परम्परा अविच्छिन्न चली आ रही है और उनके उत्तराधिकारी अपनी तथागत प्रतिभाका सदुपयोग मानव-हितमें करते हुए सुयश और ऐश्वर्यका अर्जन कर अपने ऐहलौकिक जीवन की सफलता चरितार्थ कर रहे हैं; अपनी इस प्रकृतिप्रदत्त शक्तिका सुयोग्य विनियोजन कर रहे हैं और यही शुभ प्रवृत्ति आज उनके व्यवहार और परमार्थका भी साधन बन गई है। योगशास्त्र इसी व्यापक और विराट् संविधानका एक चिन्मय और महत्त्वपूर्ण परिच्छेद है। विद्वानोंका मत है कि सांख्य दर्शन और योगदर्शन एक सिक्केके दो पहलू हैं— एक ही रथके दो चक्र हैं। सांख्य सिद्धान्तका निदर्शन करता है और योग उस सिद्धान्त को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करता है— कार्यरूपमें परिणत करता है। सांख्य सिद्धान्तों का प्रतिपादक है- उद्घोषक मात्र है, किन्तु योग सिद्धान्तोंका प्रतिपालक है, सांख्य शास्त्रीय दर्शन है; योग व्यावहारिक दर्शन है। सांख्य रास्ता बताता है—पथ-प्रदर्शन करता है, किन्तु योग ही वह पथ है, जिसपर चलकर साधक अपने जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति करता और कृतकृत्य बनता है।

योगकी अन्तिम सिद्धि संयम है। संयम सम्भवतः उस स्थितिको कहते हैं, जहां पहुँचकर मानव अपने शरीर और मनपर पूर्णतया प्रभुत्व स्थापित कर लेता है। ऐसी स्थिति प्राप्त कर लेने के पश्चात् मानव अपने अंग-प्रत्यंग और मनका सम्पूर्ण स्वामी बन जाता है और उनका-स्वेच्छानुसार परिचालन करता है। योगी की प्रत्येक प्रवृत्ति संयम से प्रतिबन्धित है। आत्मसंयम योगसाधना का चरम लक्ष्य है। जिनका शरीर और मन सयम के अनुशासन को स्वीकार करते हैं, उनके मन और बुद्धि आत्मा के दिव्य तेजसे उद्भासित रहते हैं- उनकी प्रतिभा पारदर्शी होती है और वे जीवन में अंगीकृत अनुष्ठानों और कर्तव्य-कार्योंके प्रति अत्यन्त निष्ठावान् और वफादार होते हैं।

श्री. योगिराजजी का संयम

अस्तु ऐसे ही महापुरुषों की पंक्तिमें योगिराज श्री० उमेशचन्द्रजीका आसन भी अतीव ऊंचा है। श्री० स्वामीजी महाराज संयमके साकार स्वरूप हैं। एक ओर तो आप गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों का समुचित पालन कर रहे हैं और दूसरी ओर यौगिक जीवनचर्या का विधान करते हुए यथोचित संयमकी स्थितिपर भी प्रतिष्ठित हैं। आप यथार्थवादी भी हैं, आदर्शवादी भी हैं; संग भी हैं और निस्संग भी हैं। आप सामुदायिक साधना भी करते हैं और ऐकान्तिक साधना भी आपके जीवन का प्रमुख अंग है। एक ओर श्री० स्वामीजी जीवन के व्यावहारिक कर्तव्यों का कठोरता-पूर्वक पालन करते है, तो दूसरी ओर उनकी आदर्शमूलक दिव्य भावनाय भी सदैव सजग रहती हैं। स्वामीजीमें व्यवहार ओर परमार्थ का अदभुत समन्वय है और वे भारतीय राष्ट्र की ऐतिहासिक विभूति हैं। आपके महान् कार्य जन–जीवन के लिये सदैव श्रद्धास्पद बने रहेंगे।

व्यक्तित्व का प्रभावशाली स्वरूप

व्यक्तित्व को प्रभावशाली और उर्ध्वगामी बनानेके लिये आत्मसामर्थ्य, आत्म-विश्वास, आत्मदृढता अत्यावश्यक साधन हैं। वैसे तो जगत्में मानवके प्रत्येक 'घटक' का किसी न किसी रूपमें उपयोग होता आ रहा है। यह व्यक्तित्वका सामान्य (जनरल) स्वरूप है। परन्तु कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो इन सामान्य लोगोंसे सर्वथा पृथक् दिखाई देते हैं। उन का व्यक्तित्व असाधारण और मौलिक होता है। उनमें किसी विशेष सामर्थ्य और प्रतिभाके दर्शन होते हैं और अपनी पारदर्शक शक्ति से वे मानव के अन्तस्तलतक पहुंच जाते हैं। वे अपनी अलौकिक महत्ता से विश्व–मानवताको कृतार्थ करते हैं। योगिराजजी ऐसे ही महज्जनोंमें हैं। आपका जीवन सचमुच अत्यन्त विस्तृत और व्यापक है। स्वामीजी की अपनी स्वतन्त्र सत्ता है; मौलिक व्यक्तित्व है; आत्मबल है, शालीनता है; असाधारण व्यवहारकुशलता है तथा रचनात्मक जीवनलक्ष्य है। निर्माणकी ओर निरन्तर उन्मुख कर्तव्य-क्षमता और मानवको अमरत्वकी ओर ले जाने की महती आकांक्षा है। इस प्रकार मानवमात्र को चिरन्तन

स्वास्थ्य–सुख प्रदान करने और उसकी जीवन–वृत्तियोंको उर्ध्वगामी बनानेके लिये प्रयत्नशील स्वामीजी सचमुच परमात्माके वरद दूत हैं। आपके आयोजनोंमें मानव–कल्याण की झांकी मिलती है। आपकी बहुमूल्य सेवायें मानवके लिये वरदान हैं। स्वामीजी कर्तव्यपरायणता की प्रतिमूर्ति हैं। यही कारण है कि राष्ट्र के लोक–जीवन को उच्च संस्कार और व्यवहारकुशलतासे सम्पन्न बनाने में आपके प्रयोग सदैव सफल रहे हैं। चाहे जैसे सांघातिक रोगोंसे मानव जर्जरित हो; आत्मा के विश्वास से उद्भूत स्वामीजीकी आशा और आश्वासनपूर्ण अमृतवाणी रोगीके आधे रोगको समाप्त कर देती है। जिन लोगोंको स्वामीजीके सान्निध्यमें योगाभ्यास करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है; वे–रोगी या नीरोगी–भलीभांति जानते होंगे कि स्वामीजी अपने इस शुभ अनुष्ठानको कितनी तत्परता और कितनी लगनके साथ संचालित कर रहे हैं। कितने ही ऐसे रोगी–जो जीवनसे निराश हो चुके थे–स्वामीजीके सान्निध्यमें आते ही तन और मनसे पूर्णतया आरोग्य हो गये। ऐसे अनेकशः असाध्य रोगियों का उद्धार स्वामीजीने किया है और उन्हें आशामय एवं सुखी गृह–संसार का स्वर्गीय आनंद प्राप्त करने के योग्य बना दिया है। जिन रोगमुक्त लोगोंने स्वामीजीकी देखरेख में योग और आरोग्य की साधना की; वे शारीरिक और मानसिक रूप से और भी अधिक चैतन्यमय बनकर ऐहिक और पारमार्थिक सफलताका रसास्वादन कर रहे हैं और मानव–जीवन का सफल सदुपयोग कर रहे हैं।

अस्तु, भारत ऐसे ही महान् योगियों, आध्यात्मिक नेताओं और व्यावहारिक जीवन-दर्शन–अनुष्ठाताओं तथा शिक्षकोंका देश रहा है। यहां ऐसी दिव्य विभूतियों का सदा अवतरण होता आया है, जो भौतिकता के जड़वादी अन्धकार को चीरकर अपनी उर्ज्वसित आत्मज्योतिका प्रकाश फैलाती आ रही है। आज भी भारत की यह परम्परा अक्षुण्ण है। आज हमारे बीच योगिराज श्री० उमेशचन्द्रजी महाराज ऐसी विराट् शक्ति और दिव्य ज्योतिके रूपमें विद्यमान हैं, जिन्होंने अपने शुभ प्रयासों और शुभाशीर्वादके प्रभाव से अनेक मानवों के निराश जीवन–मरुस्थल को आशाका नन्दन निकुंज बना दिया है; पराजय की भावनाको विजयोल्लाससे भर दिया है, अभिशापको वरदान में बदल दिया है। जहां दुःख और कलह का रुदन होता रहता था, वहां शान्ति का उल्लासमय साम्राज्य फैला दिया और जीवन के मधुर संगीत के कलरवसे आसपास के वातावरण को पुलकित कर दिया है।

श्री रामतीर्थ योगाश्रम

यद्यपि भारतके राष्ट्रीय चारित्रमें अनेक त्रुटियां दिखाई देने लगी हैं और विविध जातियोंके समागम में आनेके कारण भारतीयों की श्रद्धा परमात्मा के अस्तित्वकी अवहेलना करने लगी है और लोग मनमाना आचरण करने लगे हैं। अनेकशः विचारवान् लोग भी भारतीय चरित्रकी इस अवदशा को देखकर आकुल और निराश हो रहे हैं। किन्तु मैं इस निराशावादका समर्थन कर नहीं सकता और न उसे स्वाभाविक ही मान सकता हूं कि अब भारत के चरित्रमें सुधार की आशा नहीं और भविष्यमें देश अत्यन्त हीन स्थितिपर पहुंच जायेगा, क्योंकि हमारी सन्त-परम्परा आज भी अक्षुण्ण है और महात्मा तुलसीदास, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, महर्षि अरविंद घोष, चैतन्य महाप्रभु, सन्त नामदेव और महात्मा गांधी आदि आध्यामिक महापुरुषों की जन्मदात्री भारत-भूमिमें अद्यापि ऐसे सन्त-महात्माओंका अस्तित्व विद्यामान है, जिनकी पुण्यमयी पवित्र प्रवृत्तियों और सद्विचारों तथा सदुपदेशोंने भारतीय जनता को प्रभावित किया है और उसके जीवन में एक हलचल उत्पन्न की है; उसे अपनी स्थितिपर दृष्टि डालने के लिये बाध्य किया है। योगिराज श्री० उमेशचन्द्रजी भी ऐसेही विरल महात्माओंमें हैं। ऐसे लोकोत्तर जीवनदर्शी सत्पुरुष जगत्में निरर्थक जन्म धारण नहीं करते। निश्चय ही इन महात्माओं के अस्तित्व का महत् उद्देश्य है। श्री. योगिराजजी के जीवन का आदर्श है सत्य, प्रेम और जन-सेवा। अपने स्नेह और प्रेमपूर्ण उद्गारोंसे आप पीड़ित मानवता को अभय-वरदान देते हैं। आपकी सराहना करने के लिये आपके समागममें आनेवाला प्रत्येक व्यक्ति स्वभावतः उत्कण्ठित और उत्साहित हो उठेगा। यह सराहना कृत्रिम नहीं होती, प्रत्युत सराहना करनेवाले की आतमा की आवाज होती है। बम्बई में श्री० योगिराजजी के कर कमलों से स्थापित योगाश्रम है, जिसमें योगिराजजी स्वयं साधकों को योग-शिक्षा देते हैं, फलतः आश्रमका कर्तव्यानुष्ठान सफल और यशस्वी रहा और आश्रम निरन्तर विकासित, उन्नत और लोकप्रिय बनता गया। शास्त्रीय योग-शिक्षा का यह महान् प्रतिष्ठान है। यह मानव के त्रितापों का उपशम कर उसके भौतिक, मानसिक और नैतिक स्तरको उच्चतम बनाता है। उदभ्रान्त चित्त और अर्धविक्षिप्त मानवों का स्थिर बुद्धि प्रदान कर उन्हें संसार के व्यावहारिक और पारमार्थिक कर्तव्यों की ओर उन्मुख करता है। अपने साधकों को जीवन-व्यवहार की सची शिक्षा और योग्यता प्रदान करते हुए श्रीरामतीर्थ योगा-

श्रमके संचालक श्री. स्वामीजी महाराज असीम धैर्यपूर्वक उस सुअवसर की प्रतीक्षा करते रहते हैं, जब उनका साधक शिष्य मानवतासे भी ऊपर उठकर देवत्व की स्थितिको प्राप्त करता है; अर्थात् तन-मन से निरामय, निर्विकार तथा नीरोग होकर चतुर्दिक् अपने जीवन के आह्लादकारी सौरभ का प्रस्फुटन करता है। अपने प्रिय शिष्यके लिये स्वामीजी वह दिव्य द्वार खोल देते हैं, जिसमें प्रवेश करते ही साधक का जीवन सौन्दर्य, माधुर्य और उल्लास, बल, शक्ति, साहस और कर्ममयी क्षमता से सराबोर हो उठता है। साधककी भूतकालीन निर्बलता, दरिद्रता और दुःखको स्वामीजी शक्तिमत्ता, सम्पन्नता-समृद्धि और सुखोंमें रूपान्तरित कर देते हैं। साधक का अन्धकारमय जीवन प्रकाश से जगमगा उठता है और शारीरिक तथा मानसिक सम्पत्तिसे पुरस्कृत होकर वह इहजीवनमें वासन्ती वैभव की अनुभूतिसे प्रफुल्ल हो उठता है। तमसावृत्त और अहंकार के बन्धन से विजडित लोगोंको चाहिये कि वे स्वामीजीके साधना-शिक्षा-कक्षमें प्रविष्ट होनेके बाद अपने आपको उस साधनामें तल्लीन कर दें— तन्मय कर दें। उस समय उनका एक ही लक्ष्य हो — साधना। वे अपने शरीर और मनको साधनाके साथ पूरी तरह जकड़ दें और फिर देखें कि एकबार पुनः उनको नवीन जीवन प्राप्त हो गया है, वे नवीन चेतना से उत्फुल्ल हो उठे हैं और उनके जीवनका वास्तविक पथ प्रशस्त हो गया है। यदि तुम फिसल पड़े हो, गिर गये हो, तुम्हारे जीवन को त्रुटियों और नैतिक कमजोरियों ने दबा दिया है तथा तुम नितान्त निर्बल और आत्महीनता के विचारोंसे जर्जरित हो गये हो; यदि आपकी इच्छाशक्ति आपका साथ छोड़कर चली गई है और दुर्व्यसन तुम्हारे जीवन को असार और खोखला बना देने के लिये रोगमूलक कीटाणुओं की तरह तुम्हारे साथ चिपटे हुए हैं, तो योगिराज श्री० उमेशचन्द्रजी की शरण में आओ-उनका आश्रय ग्रहण करो। वे तुम्हारी भर्त्सना (निंदा) न करेंगे; निर्बलताओं और त्रुटियोंके लिये उलाहना न देंगे; तुमसे घृणा न करेंगे। स्वामीजी मनोवैज्ञानिक हैं। वे मानव की मानसिक स्थितियों-उसकी कमजोरियोंको अच्छी तरह समझते हैं। स्वामीजी पतित को उच्चतम सतहपर पहुंचा देनेकी विद्या जानते हैं। चिर रोगीको चिर आरोग्य प्रदान करना तो उनके जीवनका अहर्निशव्यापी अनुष्ठान है। भूले-भटके लोगों को सच्ची राह बताने को स्वामीजी अपना नैतिक कर्तव्य समझते हैं। स्वामीजी तुम्हारे अभावग्रस्त जीवनको भावी वैभवकी सम्भानाओंसे भरपूर बना देंगे;

और तुम्हारे जर्जरित जीवनकी झोंपडी गगनचुम्बी और दर्शनीय प्रासाद (महल) बन जायेगी। स्वामीजी तुम्हारे जीवन की अपूर्णता (त्रुटियां) को पूर्णत्व में परिणत कर देंगे। वे निरर्थकता को भी सार्थकता में परिवर्तित कर देने की क्षमता रखते हैं। तनिक सोचने-समझने की बात है, क्या कोई ऐसे कल्याणकारी विधान की अवहेलना कर सकता है? जीवन-साफल्यकी सच्ची दिशा की खोजमें व्यस्त ऐसा कौन अभागी व्यक्ति होगा, जो इस सरल, सुलभ और सर्वतोभद्र सुव्यवस्थासे लाभ उठाने के लिये लालायित न हो उठेगा?

स्वामीजी की विशेषता यही है कि अहर्निश जन-सेवा में संलग्न रहकर भी आत्म-हीनता का अनुभव नहीं करते, सतत कार्य-तत्पर रहकर भी उनका शरीर विथकित और विजडित नहीं होता। बल्कि इसके विपरीत अपने प्रिय शिष्य-साधक-की क्रमोन्नति देखकर आत्मगौरव, आत्मसन्तोष और आत्मोत्साहसे भर उठते हैं। स्वामीजी कहते हैं—'प्रिय साधक! मुझे अपने जीवनमें प्रवेश करनेका अवसर दो और फिर तुम देखोगे कि तुम्हारा जीवन आह्लाद, आनन्द और सन्तोष से ओतप्रोत हो उठा है। तुम्हारे जीवन में प्रवेश करते ही मैं तुम्हें नवीन चेतनासे अनुप्राणित करने लगूंगा; तुम्हारे जड मनको चैतन्यमयी आत्माके साथ सम्बद्ध कर दूंगा, और तुम नीरोग, प्राणवान्, शक्तिवान् और स्फूर्तिवान् बनकर अपने दैनिक कर्तव्यों के प्रति अधिकाधिक सक्षम और सजग बन जाओगे। कठिन से कठिन काम भी तुम्हारे लिये सरल बन जायेगा और तुम उसे काम नहीं, खेल समझने लगोगे। दुर्लंघ्य पहाड तुम्हारे लिये धूलिकण बन जायेगा और संसार सागर को तुम गोष्पदकी तरह पार कर जाओगे। जो हो; जनता की शारीरिक और मानसिक व्याधियां स्वामीजीको सार्वजनिक सेवा का सुअवसर प्रदान करती हैं और वे बडे उत्साहके साथ अपने कर्तव्यानुष्ठानमें तन्मय और तदाकार हो जाते हैं। साधक मन्त्र-मुग्ध की तरह अपने शारीरिक और मानसिक परिवर्तनको देखता रहता है और उसका तमसाच्छन्न अन्तरतम दिव्ये प्रकाशसे देदीप्यमान हो उठता है। लोग साधक के मुखमण्डल को आन्तरिक उल्लाससे उद्दीप्त देखकर आश्चर्यचकित हो उठते हैं। सचमुच देखा जाये, सोचा जाये, समझा जाये तो यही जीवनका वास्तविक लक्ष्य है, सच्चा मार्ग है, शान्तिपूर्ण स्वर्ग है।

प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचारक

प्राकृतिक चिकित्सकोंका दावा है कि परमात्मा या प्रकृतिने मनुष्य को जीवनके दिन गिनकर नहीं दिये और न उसे आजीवन रोगी रहकर जीनेके लिये उत्पन्न किया है। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य की मृत्युतिथि निश्चित नहीं और न रोगोंसे पीड़ित रहनेके लिये वह बाध्य है। अपनी अज्ञानता और भूलों के कारण ही मनुष्य रोगोंके चंगुल में फँस जाता है। अप्राकृतिक जीवन नीरोग नहीं रह सकता और प्राकृतिक जीवन रोगोंकी विभीषिका से मानव को सदैव मुक्त रखता है। अप्राकृतिक आचरण से शरीर रोगी बन जाता है तथा दवाओं एवं इंजेक्शनों का निरन्तर प्रयोग रोगकी विभीषिकाको तत्काल दबा देती है सही, किन्तु कालान्तरमें यही अन्दर दबा हुआ रोग अत्यन्त भयंकर रूपमें पुनः प्रकट होता है; फलतः मनुष्य जीवनकी आशा छोड़ बैठता है; परन्तु वस्तुतः ऐसा होना न चाहिये; होता भी नहीं। प्राकृतिक चिकित्सकोंके मतानुसार यदि प्रकृतिका आश्रय लेकर तदनुसार आचरण किया जाये एव अपनी पूर्वकृत भूलोंको सुधारकर प्रकृतिके आदेशानुसार रोग-निवारणका प्रयास किया जाये तो निस्सन्देह पुनः नवजीवन प्राप्त किया जा सकता है; भावी जीवनको पुनः स्वास्थ्य-सुख-सम्पन्न बनाया जा सकता है।

मानव-शरीर आकाश, वायु, जल, तेज और पृथ्वीतत्वोंके योगसे निर्मित हुआ है। यही पंचतत्त्व शरीरके आधार और अधिष्ठान हैं। ऐसी दशामें शरीरमें इन पंचभूतोंकी सन्तुलित और यथोचित स्थिति ही मानव-शरीरको निर्विकार और नीरोग रख सकती है। इन तत्त्वोंका असन्तुलन अर्थात् असम परिमाण ही रोगोंका मूल कारण है अर्थात् शरीरमें यदि पृथ्वी तत्त्वकी मात्रा कम हो जायेगी तो उसके फलस्वरूप जीर्णज्वर, वीर्यदोष, शारीरिक क्षीणता, धातुदौर्बल्य आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार पृथ्वी तत्त्वके अधिक बढ़ जाने से मेदवृद्धि, मेदरोग आदि आक्रमण करने लगते है। इसी प्रकार अन्य तत्त्वोंकी घटबढ़ भी प्रतिकूल परिणाम प्रकट करती है। प्राकृतिक चिकित्सक इन पंचभूतोंको समुचित स्थितिपर लानेका ही प्रथम प्रयास करता है। पंचभूतोंको की यह सम स्थिति ही आयुर्वेद के त्रिदोषों की सम स्थिति है। अस्तु, प्राकृतिक चिकित्सक शारीरिक और मानसिक विकारोंको निकाल फेंकता है एवं कृत्रिम जीवनकी मृगमरीचिकासे पराङ्मुख कर प्राकृतिक जीवन जीनेकी कला सिखाता है। प्राकृतिक चिकित्सककी अप्रतिहत कर्तव्यनिष्ठा और साधककी अभूतपूर्व प्रबल इच्छाशक्ति कालान्तरमें

निस्सन्देह सफलता और सिद्धिके रूपमें प्रतिफलित हो उठती हैं। रोगकी स्थितिमें कृत्रिम औषधियों और नीरोगी अवस्थामें नाना प्रकार की कृत्रिम और अग्राह्य वस्तुओंके अत्यधिक सेवनसे शरीरमें जो विष, मल (विजातीय द्रव्य) एकत्रित हो जाता है: प्राकृतिक चिकित्सक सर्वप्रथम उसको बाहर निकालनेका भी प्रयास करता है; क्योंकि उसके मतानुसार शरीरकी निर्मल (विषहीन) स्थिति ही आरोग्यका प्रमुख लक्षण है। प्राकृतिक चिकित्सक शरीर और मन के विष-विकार और मलको बाहर निकाल फेंकता है और रोगीका शारीरिक तथा मानसिक आरोग्य निखर उठता है। कहा जाता है कि अत्यन्त स्थूल (विकृत) और अत्यन्त क्षीणकाय शरीर को प्राकृतिक चिकित्सक संतुलित और गठीला बना देता है। प्राकृतिक जीवन-यापन की कला सीख लेने और तद्नुसार आचरण करने से रोगीके शरीर का कायाकल्प हो जाता है। उसमें नवजीवनकी लहर दौड़ पड़ती है और जीवन नवीन हरियालीसे लहलहा उठता है। रोगीकी आयु बढ़ जाती है और उसी जीवनमें उसे पुनर्जन्म प्राप्त करनेका सौभाग्य प्राप्त होता है। आजकी औषधियोंके लिये तो यह कहना असंगत न होगा कि वे रोगोंको जड़-मूलसे नष्ट करने में असमर्थ हैं; परन्तु सूर्य, मिट्टी, जल, अग्नि, वायु आहार-परिवर्तन और अन्य प्राकृतिक साधनोंका उचित उपयोग कर प्राकृतिक चिकित्सक मानव के रोगको समूल उखाड़ फेंकता है और नवजीवनकी चेतना से अनुप्राणित कर देता है। खोया हुआ स्वास्थ्य औषधियोंसे अथवा लाखों रुपये खर्च कर देनेपर भी प्राप्त हो नहीं सकता। इसके लिये दृढ़ निश्चयपूर्वक प्रकृतिक जीवनका अनुसरण करना पड़ेगा—कठिन तपस्या करनी पड़ेगी। बड़े ही धैर्य, लगन और साधना से उद्देश्य-सिद्धि होगी; अर्थात् रोगी रोग-मुक्त होगा और चिकित्सक की सलाह-सूचनाके अनुसार अपना जीवन-लक्ष्य बना लेनेपर मानव कभी रोगी नहीं हो सकता।

क्या प्राकृतिक चिकित्सा महंगी है?

यह सत्य ही माना जाता है कि स्वास्थ्य ही सम्पत्ति है; तन-मनका आरोग्य ही मानवको धर्म-साधना और कर्तव्य-कर्म को यथार्थ रूपमें सम्पन्न करनेके लिये उत्साहित और प्रेरित करता है। यदि स्वास्थ्य नहीं. तो संसारभरका विपुल वैभव संगृहीत हो जानेपर भी उसका हमारे जीवनमें क्या उपयोग है; क्या महत्त्व है?

प्राकृतिक चिकित्सक रोगके विरुद्ध अपनी प्रतिक्रियामूलक प्रक्रियामें जिन वस्तुओंको उपयोगमें लाता है; वे मिट्टी, जल, वायु, सूर्य-प्रकाश और आहार-संयम आदि साधन बिना मूल्य सर्वत्र उपलब्ध हैं,और रस, भस्म इंजेक्शन आदि औषधिक उपचार बहुव्यय-साध्य है। प्रकृतिकी देन होने के कारण सूर्य, चन्द्र और अन्य प्रसाधन निस्सदेह प्राणि-मात्रको आरोग्य प्रदान करनकी क्षमता रखते है,। परन्तु उनके यथोचित उपयोगकी पद्धतिको बिना जाने मनुष्य उनसे लाभ उठा नहीं सकता; बल्कि हानि हे सकती है। परन्तु जब विशेषज्ञ मार्गदर्शककी देखरेखमें यह प्राकृतिक प्रयोग सुयोजित रूपसे सीखे जाते है; तब वे सम्पूर्ण सफल और लाभदायक बन जाते हैं। यदि मानव स्वय इन प्राकृतिक वस्तुओंका उचित उपयोग करनेमें समर्थ होता तो आज घर-घरमें रोगी क्यों दिखाई देते ? और स्थान-स्थानपर अस्पतालोंका निर्माण क्यों करना पड़ता ? गली-गलीमें, घर-घरमें डॉक्टर वैद्योंकी भरमार क्यों होती ? इससे स्पष्ट है कि हम सूर्य, जल, मिट्टी, वायु, आहार, उपवास आदि प्राकृतिक विधानोंका यथोचित प्रयोग करना नहीं जानते अथवा उनके आरोग्यविधायक गुणोंसे ही अपरिचित हैं। इसीलिये हम स्वास्थ्यको पैसे देकर खरीदनेकी इच्छा रखते हैं और खरीदते भी हैं। दवाओंका व्यापक प्रयोग हमारे इस कथन का साक्षी है।

अस्तु, खेद तो इस बातका है कि नित्य नई दवाओंका आविष्कार होनेपर भी नित्य नये और अकल्पनीय रोगोंका आक्रमण होता रहता है और मानव जिन पैसोंसे दूध घी, फल आदि पौष्टिक और आरोग्यवर्धक वस्तुओंका सेवन कर अपने शरीर और मनको उत्साहपूर्ण, बलवान्, स्फूर्तिमय और कर्मशक्तिसे भरपूर बना सकता था, उन्हीं पैसोंसे वह विविध डाक्टरी दवायें खरीदकर अपने पेटमें उंडेलता रहता है और कुछ भी अभीष्ट-सिद्धि न होनेपर और रोगसे मुक्ति न पानेपर आजीवन रोगी और दुखी बना रहता है। धन और आरोग्यसे वंचित रहकर वह हताश और अवसन्न हो जाता है। विधिकी यह कैसी विडम्बना है ! ऐसी दशामें प्राकृतिक चिकित्सक-प्राकृतिक जीवनका मार्गदर्शक अपनी अविचल निष्ठामयी इच्छाशक्तिसे यदि आपको प्राकृतिक जीवन-यापन की कला सिखाता और तदनुसार आचार व्यवहार बनानेकी प्रबल प्रेरणा से पुरस्कृत करता है तथा अपने कर्तव्योंके प्रति सजग एव दृढव्रती रहने की इच्छा-शक्तिसे सम्पन्न बना देता है; ऐसी दशामें आप उस प्राकृतिक चिकित्सका क्या मूल्यांकन करेंगे ? इस परिश्रम और सेवाके बदलेमें आप उसे क्या पुरस्कार देना चाहेंगे ? यह सच है कि प्राकृतिक चिकित्सक के पास औषधियां नहीं रहतीं, इंजेक्शनोंका उपयोग

वह नहीं करता; आपरेशन अर्थात् शस्त्रोपचार करना वह नहीं जानता; उसका उपचार केवल प्राकृतिक तत्त्वोंपर आधार रखता है, लेकिन इन प्राकृतिक प्रयोगोंके लिये भी उसे आवश्यक उपकरणोंका संग्रह करना पड़ता है। इन्हीं पवित्र प्राकृतिक उपादानोंकी सहायतासे वह आपके तन-मनकी मलिनता और विकारोंको धो देता है और आप सर्वांगीण नीरोगी, निर्मल और निर्विकार हो उठते हैं। आपका जीवन निखर उठता है; आपकी हताशा आशामें रूपान्तरित हो जाती है; अतएव प्राकृतिक चिकित्सक की इस प्रतिक्षणकी सेवा-सुश्रूषा, साधना और तत्सम्बन्धी उसके अविरत प्रयासोंका कितना मूल्य है, इसका भान आपको तभी होगा, जब किसी शारीरिक या मानसिक व्याधिग्रस्त मानवको किसी प्राकृतिक चिकित्सा-प्रतिष्ठानमें इस प्रकारके लाभ उठानेका सुअवसर मिलेगा। हमारे चरितानायक श्री. योगिराजजी महाराज ऐसेही सिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक हैं, यह कहनेमें कोई अतिशयोक्ति नहीं।

प्राकृतिक चिकित्सा की सुदक्षता

स्वामीजी प्राकृतिक चिकित्सामें भलीभाति निपुण हैं। सुना है कि आपने जिस केस (रोगी) को अपनी छात्रछाया में लिया, वह कभी हताश नहीं हुआ। सतत योगाभ्यास के कारण स्वामीजी आत्मशक्तिसे भरपूर हैं। इसी विराट् आत्मशक्तिसे स्वामीजी रोगीकी सुप्त रोग-प्रतिरोधक इच्छा-शक्ति को सजग बना देते है। स्वामीजी रोगीके रोम-रोम में एक स्फुरण उत्पन्न करते हैं; और रोगीकी चेतना उद्‌बुद्ध होकर शरीर और मनमें नये प्राणका सचार करने लगती है। स्वामीजी के प्रबल अन्तःकरण का स्पर्श पाकर रोगीकी आन्तरिक प्रवृत्तियों में एक शुभ परिवर्तन सघटित होता है। यदि किसी की मनःस्थिति निर्बल है और ईर्ष्या, द्वेष, घृणा निन्दा आदिके विकारपूर्ण विचारों से ग्रस्त है और फलस्वरूप उसकी शारीरिक और मानसिक शक्ति क्षीण हो गयी है। स्वामीजी अपनी विराट् अन्त.शक्ति का प्रतिबिम्ब रोगीपर डालते है; फलतः रोगी के विचारों में एक चमत्कारपूर्ण परिवर्तन होता है और वह निर्विकार और नीरोग होकर अपने ससारिक कर्तव्योंका निष्ठापूर्वक पालन करने लगता है।

मन के इस प्रकार प्रसन्न और स्थिर होनेपर शारीरिक स्थिति भी प्राणवान् और गतिशील बनने लगती है। स्वामीजी दुर्गतिको सद्‌गतिमें बदल देने की क्षमता रखते है। स्वामी जी की उर्ध्वमुखी प्रतिभा रोगीकी रग-रगमें प्रवेश करती है। प्राकृतिक चिकित्साके उपकरणों—योगाभ्यास, मानसोपचार, जल-चिकित्सा, सूर्य किरण-चिकित्सा,

आहार-विनियोजन, तेल-मालिश, टहलना आदि-का आधार लेकर स्वामीजी अपनी प्रबल आत्मशक्ति, अपना दृढ़ आत्मविश्वास, अपनी सजग आत्मचेतना और उल्लसित आत्मस्फूर्ति रोगी की नस-नसमें भर देते है। स्वामीजीके पास वह शक्ति है, जिसके बलपर वे उक्त विभूतियोंके नित्य स्वयंसग्राहक है। स्वामीजीकी आन्तरिक चेतना प्रतिक्षण उद्बुद्ध रहती है और इसी चेतना से वे अपने शिष्योंको सदैव पुरस्कृत करते रहते है।

योगिराजजीका संक्षिप्त जीवन--वृत्त

भगवान् परम दयामय हैं। उनकी करुणा और महिमा अपार है। वे मानवको उसके वास्तविक जीवन-लक्ष्य की शिक्षा देने और उसे यथार्थ मार्गकी ओर ले जानेके लिये विविध रूपोंमें जगत्में अवतरित होते रहते है। सन्तों, महात्माओं और पवित्रात्माओंके रूपमें उस विश्व-मंगलकारी की अदृश्य सत्ताका आविर्भाव हमारे बीच सदा होता आया है। यह महान् विभूतियां अपने महान् आदर्शों और उपदेशोंके द्वारा हमें मानव-जीवनके वास्तविक मार्गकी ओर प्रेरित करती है और हमें शान्ति और नित्यानन्दकी अनुभूति कराती है। ऐसे ही महज्जनों में योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजीका भी समावेश है। सन १९१० ई० की ४ थी मार्चको कारवार (उत्तर-कर्नाटक) में योगिराजजीका उदय हुआ और बाल्यकालीन पठन-पाठन मंगलोर (दक्षिण-कर्नाटक), में हुआ। सुधांशुकी अमृत-किरणोंके समान आपका स्वभाव अतीव शान्त, शीतल और मधुर है। आप बाल्यावस्थासे ही सात्विक गुणसंवलित एव शालीन स्वभाव रहे है, अतः आपको विशेष दौड़धूप, घूमधाम और सहपाठियों तथा मित्रोंके साथ झगड़ा, वाद-विवाद आदि बिलकुल पसन्द नहीं था। मित्रगण आपकी शान्ति, सुशीलता, सौजन्य आदिसे अत्यधिक प्रभावित थे और एतदर्थ आपकी सराहना करते रहते थे। किशोरावस्थामें एक दिन कुएँ से पानी निकलाते समय स्वामीजी सहसा कुएँ में गिर गये; किन्तु इस सांघातिक दुर्घटनाका कोई दुष्प्रभाव नहीं हुआ; अर्थात् न तो स्वामीजीके किसी अंगको चोट-क्षति-पहुची और न किसी प्रकारका आन्तरिक आघात पहुंचा। इस घटना के अन्तर्गत स्वामीजीने विश्वनियन्ताकी असीम शक्तिके दर्शन किये और उनके हृदयमें उस असीम अदृश्य शक्ति (ईश्वर) के प्रति दृढ आस्था उत्पन्न हो गई। उस अदृश्य शक्तिकी महती महिमा स्वामीजीके रोम-रोममें रमने लगी।

विद्योपासना, साधना-व्रत और कला-प्रेम

स्वामीजी बचपनसे ही विद्याव्रती, साधनाशील और कला-प्रेमी रहे हैं। बहु-भाषाज्ञान और अष्टांग योगकी सर्वांगीण साधना इसके प्रत्यक्ष और अत्युत्तम उदाहरण है। स्वामीजीने अष्टाग योगका सम्पूर्ण शास्त्रिय अध्ययन और मनन तो किया ही है; साथ ही उसकी सर्वतोमुखी व्यावहारिक साधना भी की है; अत. यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि श्री. योगिराजजी योगशास्त्रके पारंगत विद्वान् और अद्वितीय सफल साधक हैं। सचमुच स्वामीजीकी योगविद्या–बुद्धि और योग–साधना में परस्पर होड़–सी लगी रहती है। स्वामीजी के निकट–समागममें रहकर भी यह समझ लेना सम्भवतः कठिन ही होगा कि विद्वत्ताका पलड़ा वजनदार है अथवा साधनाका। योगिराजजीकी दोनों ही शक्तियां समयानुसार अपनी–अपनी महत्ताका परिचय देती रहती हैं। १९२४ ई० में जब स्वामीजी महाराजाने हृषीकेशकी यात्रा की थी, तब वे योगके विद्यार्थी थे और अध्ययन और साधन—दोनोंकी ओर उनका अनवरत अध्यवसाय चल रहा था। तदुपरान्त काशीमें संस्कृत और हिन्दी–भाषा का अध्ययन किया। हृषीकेश जानेसे पहले मंगलोरमें भी विद्याध्ययन किया। स्वामीजी बहुभाषाविद् हैं। कन्नड़, मराठी, हिन्दी, गुजराती, कच्छी, कोंकणी, मलयालम, अंगरेजी आदि भाषायें आपके लिये हस्तामलकवत् हैं। आप उक्त भाषाओं के अच्छे पण्डित हैं। योगाभ्यासके सिलसिले में श्री. योगिराजजी महारज को उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश में भी अधिक समयतक रहना पड़ा; इसलिये अंगरेजीकी योजनाबद्ध शिक्षा प्राप्त करनेकी ओर आप विशेष प्रवृत्त नहीं हुए। बचपनमें जो रुपये–पैसे मिल जाया करते थे; उनका अधिकाश योग, वेदान्त, उपनिषद् और अन्य आध्यात्मिक ग्रन्थोंको खरीदने में व्यय हो जाता था। इसके अतिरिक्त स्वामीजीका कला–प्रेम भी हमारी दृष्टिके समक्ष बरबस आ खड़ा होता है। बहुज्ञ बननेकी यह महत्त्वाकांक्षा सचमुच प्रशसनीय और अनुकरणीय है। स्वामीजी विविध कलाओं में कुशल हैं। योग–कला तो आपकी आजीवन साधना एव चिरपरिचित अनुष्ठान है इसके अतिरिक्त वक्तृत्वशक्ति (कला), और तदन्तर्गत विषयप्रतिपादन–शक्ति, अपनी बातको श्रोताके हृदयमें बैठा देने की शक्ति और उसे अभीष्ट दिशा में उन्मुख कर देने की कला में स्वामीजी पूर्णतया पारंगत है। लेखन–कला में भी स्वामीजी अद्भुत क्षमता रखते हैं। योग–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, मलशोधन–कर्म आदि के विषय में आपके लेख भारत की पत्र–पत्रिकाओंमें प्रायः प्रकाशित होते रहते हैं, जिन्हें पढ़कर आपकी

विषयप्रतिपादन और सिद्धहस्त लेखन–शक्ति का स्पष्ट दर्शन होता है। तैरना, कुश्ती लड़ना (मल्लयुद्ध करना), मोटर चलाना; बिगड़ जानेपर मोटर को सुधार लेना आदि विविध कलाओं में स्वामीजी भलीभांति सुदक्ष है। व्यापार–प्रवृत्ति के तो आप अग्रणी कला–निपुण है। इसके अतिरिक्त तन्त्रयोग, मन्त्रयोग, भक्ति–योग, शिव स्वरोदय आदिमें स्वामीजीकी पूर्णतया गति है। सूर्य–नमस्कार, अश्वारोहण, साइकल चलाना, दण्ड–बैठक, मलखम्म आदि कठोर व्यायाम भी स्वामीजीकी विराट् साधनाके चिर-सहचर रहे हैं। स्वामीजी इन सभी कलाओंके सफल प्रयोक्ता हैं। सामाजिक रूपमें स्वामीजीके विचार उदार हैं। मौलिक सस्कृतिकी परम्पराओंकी सुरक्षाके साथ–साथ आवश्यक परिवर्तनवादके भी स्वामीजी हिमायती हैं और समाजको एक सुयोजित जीवनचर्याके अन्तर्गत लानेके लिये प्रयत्नशील हैं।

श्रीरामतीर्थ योगाश्रमकी स्थापना और कार्यका श्रीगणेश

सन् १९३३ ई. में श्रीरामतीर्थ योगाश्रमकी स्थापना हुई और तभीसे इसके कार्यका भी श्रीगणेश हुआ। प्रारम्भमें योगाश्रमका कार्य बहुत सीमित क्षेत्रमें रहा। तदुपरान्त श्री. योगिराजजीकी व्यवहारकुशलता, कार्यपटुता और शिक्षा–सुदक्षता आदि गुणोंके प्रभावसे आश्रमके कार्यक्षेत्रका विस्तार बढ़ने लगा और इस शुभ अनुष्ठान का सुयश चारों ओर फैलने लगा। जनसाधारणने योगाश्रमके इस जन–कल्याणकारी आयोजनका स्वागत किया और उससे लाभ उठानेके लिये वह प्रवृत्त हुए। फलतः १९३७ ई. तक योगाश्रमका कार्य–क्षेत्र व्यापक बन गया और उसकी जनसेवा की जिम्मेदारी उत्तरोत्तर बढ़ चली। वह आसन, प्राणायाम, आत्मसयम, सेवा, जप-कीर्तन आदिकी दिव्य साधनाओं और भावनाओंको बल देकर जन–जीवनका शारीरिक और मानसिक परिष्कार करने लगा। उच्च विचारोंका उदय कर मन को सचेत, सतर्क और शक्तिशाली बनाये रखनेके मंत्रसे दीक्षित किया। बुद्धिको सूक्ष्म और कुशाग्र बनाने की प्रेरणा प्रदान की। सेवा, दान तथा विश्वप्रेममें निमग्न रहने के दिव्य मन्त्र से दीक्षित कर जन–मानसको बलवान्, विशाल, प्रेमपूर्ण और सहिष्णु एव शुद्ध बनाये रखनेका शाश्वत सामर्थ्य प्रदान किया और आजके व्यस्त और झझटी मानवजीवनको सुखशान्तिकी ओर ले जाने और उसे व्यवहारकुशल तथा वर्तमान विश्वस्थितिके अनुकूल ध्येयनिष्ठ बनाने

के अपने निर्धारित लक्ष्यका सम्यक् रूप से पालन किया। सचमुच श्रीरामतीर्थ योगाश्रमने जनजीवनकी महती सेवा की है तथा उसे स्वास्थ्य-वैभव, चिरायु, शारीरिक सम्पत्ति, आत्मिक ऐश्वर्य और मानसिक सामर्थ्य तथा स्वर्गीय सुख-शान्ति प्रदान कर कृतार्थ किया है।

बचपनमें श्री. स्वामीजीका नाम श्री उमेशचन्द्र माधवजी जोशी था। अष्टांग योगकी साधना में प्रवृत्त और पारंगत होनेके पश्चात् आपका नाम योगिराज श्री. उमेश चन्द्र हो गया। अपने गुरुद्वारा उपलब्ध उपाधि-समलंकृत नाम-योगिराजजीके नाम-से आप जनताके बीच ख्यातिलाभ करने लगे। योगिराजजीको योग-शिक्षा देनेवाले गुरु एक दण्डी स्वामी थे। वे महान् विद्वान् और योगके साधक महात्मा थे। दूसरे शिक्षक एक गृहस्थाश्रमी योगविद्याके विशेषज्ञ सज्जन थे। स्वामीजीने अनेक तीर्थयात्रायें की हैं और इस अवसरपर उन्हें अनेक ऋषि-महर्षियों, सन्त-महात्माओं विद्वद्वरों और महापण्डितोंके दर्शन करने और उनके उपदेश ग्रहण करनेका सद्भाग्य प्राप्त हुआ है। इसीलिये कहते हैं कि स्वामीजीके जीवनमें अनेक सुख-दु:खोंका अनुभव हुआ। फिर भी, स्वामीजी कभी विचलित नहीं हुए और उनके सुख-शान्तिमय जीवनमें कभी व्यतिक्रम नहीं हुआ। श्री. योगिराजजीकी इस नित्य शान्तिका कारण यही है कि वे मानव-सेवा और जीवदयामें अहर्निश तन्मय रहते हैं। मानव-सेवा ही प्रभुकी सच्ची सेवा है। इससे प्रभु प्रसन्न होते हैं और साधकके मनमें चिरस्थायी सुख-शान्ति की प्रतिष्ठा करते हैं। स्वामीजी स्थितप्रज्ञ हैं। सुख-दुःख, मानापमान, निन्दा-स्तुति, हानि-लाभ आदि विविध जीवन-स्थितियोंके प्रति आपकी निश्चल सम-बुद्धि है। आपको धन, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा आदि का तनिक भी अहंकार नहीं। आप आडम्बरहीन, निरहकार, सरल, सादा जीवन यापन करते हैं। चाय, गाजा, भाग, तम्बाकू, बीडी-सिगारेट तथा अन्य दुर्व्यसनोंसे दूर हैं। आपका जीवन सम्पूर्ण व्यसनहीन है। व्यवहार और परमार्थका सम्पादन आप सुचारु रूपसे कर रहे हैं। आपकी जीवनचर्या भूतकालमें सुयोजित थी और वर्तमानकालमें तदनुसार एक सुयोजित कार्यक्रमको लेकर आप की जीवन-चर्या प्रारम्भ होती है। बचपनसे ही स्वामीजीकी वृत्ति निरीक्षक और परीक्षक रही है और यही उनका वास्तविक स्वभाव भी रहा है; अतएव वे जीवनका मूल्याकन करनेकी कलासे अच्छी तरह परिचित हैं; अर्थात् स्वामीजी जानते हैं कि जीवनको उर्ध्वगति अथवा अधोगतिकी ओर ले जानेवाले मार्ग कौन से हैं और तदनुसार उन्होंने अपना मार्ग चुन लिया है। यह मार्ग अब स्वामीजीके लिये पूर्णतया सुगम हो गया है। जिन दिनों स्वामीजी ब्रह्मचर्य व्रतका

पालन कर रहे थे और योगाभ्यास में निरत थे; उन दिनों एकबार हरिद्वारके समीप गंगा-तटपर बैठकर विचार करने लगे कि निवृत्तिमूलक (सन्यासी) जीवन व्यतीत करना विशेष सुख-शान्तिदायी और सफलता का द्योतक होगा; इसलिये सन्यस्त अर्थात् गृहत्यागी जीवन धारण करना अधिक उपयुक्त होगा; परन्तु तुरन्त ही ये विचार विलीन होने लगे और इनके स्थान पर अन्य विचारोंका उदय होने लगा। योगिराजजी सोचने लगे कि निवृत्त त्यागी जीवन बितानेवाले अनेक साधु-सन्यासी आलसी और प्रमादी बनकर उदर-पूर्तिकी ही चिन्ता अधिकतर करते हैं; फलतः समाजको उनसे कोई लाभ नहीं पहुँचता। उनकी प्रवृत्तियां समाजके लिये कल्याणकारिणी नहीं हैं। वे जो कुछ करते हैं, केवल अपने लिये करते हैं; समाजके उद्धारकी दिशामें उनका कोई आयोजन नहीं। अतः स्वामीजीने-उन महामना स्वामीजीने, जिनको परमात्माने सन्यासी बननेके लिये नहीं; प्रत्युत् जन-गणकी किसी विशेष सेवाके लिये इस धराधाममें भेजा था-संसारको त्यागकर हिमालय की निर्जन गुफाओंकी ओर भागनेको साधारण महत्त्वमण्डित समझा और गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होकर जनसेवाके व्रतका शुभ अनुष्ठान प्रारम्भ किया। वर्तमान-कालमें स्वामीजीको कई पुत्र-पुत्रिया भी हैं। स्वामीजी गृहस्थाश्रमके कर्तव्योंका यथोचित रूपसे पालन कर रहे हैं।

योगाश्रमके व्ययकी पूर्ति केवल साधकोंकी ओरसे उपलब्ध शुल्क आधारपर नहीं हो पाती। क्योंकि योगाभ्यासके लिये आनेवाले सुयोग्य अधिकारी साधकों से शुल्क (फीस) नहीं लिया जाता अथवा अल्प परिमाणमें लिया जाता है। यही कारण है कि आश्रमके व्यय-निर्वाह के लिये आसन-चित्रपट और यौगिक साहित्यका प्रकाशन किया जाता है। मस्तिष्क और बालोंकी पुष्टि और शरीर की मालिश के लिये लाभप्रद ब्राह्मी तेल का निर्माण भी आश्रम में किया जाता है। रामतीर्थ ब्राह्मी तेल बाजार में सर्वत्र उपलब्ध है। यह तेल भी आश्रम के खर्च को पूरा करने में सहयक है। इस योगाश्रम से अबतक देश विदेशके तीन-लाख स्त्री-पुरुषों से भी अधिक लोग प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से योगाभ्यास की शिक्षा ले चुके हैं। वर्तमानकाल में सैकड़ों स्त्री-पुरुष साधक (धनवान् गरीब, डॉक्टर, वैद्य, वकील, पण्डित) आदि अधिकारी लोग श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में योगकी आयोजनाबद्ध शिक्षा पा रहे हैं और अपने जीवन को सफल, कर्मवान् एवं सुख-शान्तिमय बनानेके लिये निरन्तर प्रयत्नशील हैं।

योगाभ्यासकी महत्ता और उससे मिलनेवाले लाभों का मूर्तिमान् प्रत्यक्ष दर्शन स्वामीजीके जीवन में किया जा सकता है; अर्थात् वर्तमानकाल में अनेक प्रकार के व्यावहारिक और पारमार्थिक कार्योंमें निरन्तर व्यस्त रहनेपर भी वे न तो मानसिक थकावट या शारीरिक शैथिल्यका ही अनुभव करते हैं और न उनकी अधिक आयु मालूम होती है।५०वर्षकी आयुपर पहुँच जानेपर भी उनका शरीर २५ वर्ष के नवयुवकके समान सुगठित, कार्यक्षम, उत्साहपूर्ण और तेजस्वी है। यही तो सुनने और समझने योग्य बात है। स्वामीजी प्रातःकाल ५ बजेसे रात ९।१० बजेतक अविराम कार्य करते रहते हैं। आपके जीवनका दैनिक कर्मस्रोत अविच्छिन्न गतिसे प्रवाहित होता रहता है। तैलाभ्यग (मालिश), स्नान, सन्ध्या, आसन, मुद्रा आदि यौगिक क्रियाओंका साधन, समागत सज्जनोंसे भेंट–वार्तालाप, पत्र–व्यवहार और व्यापारादि प्रवृत्तियोंमें सलाह सूचना, पठन–पाठन, व्याख्यान, प्राकृतिक चिकित्साकी व्यवस्था करना, साहित्य–सेवामूलक प्रवृत्तियां और उपयुक्त समय–अवकाश–मिलनेपर धारणा–ध्यान–समाधि का अभ्यास आदि विविध प्रवृत्तियोंमें संलग्न रहनेपर भी स्वामीजी अशक्ति, मानसिक दौर्बल्य, जीवनकी नीरसता अथवा निराशा तथा व्याधि–उपाधिसे सर्वथा मुक्त दिखाई देते हैं। वस्तुतः स्वामीजीने चिरन्तन आरोग्यकी कुंजी हस्तगत कर ली है।

सूक्ष्म निरीक्षण करनेपर कुछ कारण स्वतः हमारे समक्ष आ खड़े होते हैं। हमारे सर्वसाधारण के बीच कुछ ऐसे लोग भी हैं, जिनका जीवन किसी न किसी कारण नीरस और निराशापूर्ण बना रहता है और कुछ लोग आध्यात्मिक जीवनमें पारंगत होनेपर भी व्यावहारिक जीवन में इतने अयोग्य और प्रतिकूल होते हैं कि थोड़े ही दिनों में मुक्त हो जाते हैं। अस्तु स्वामीजीका जीवन व्यवहार और परमार्थ में अपनी कुशलता का परिचय कैसे दे रहा है; इसका सूक्ष्म निरीक्षण करने पर मुझे पता चला है कि कुछ अपवादों और अत्यावश्यक स्थितियोंको छोड़ कर स्वामीजी जन–समुदायके बीचमें नहीं रहते हैं। सीनेमा और मौज–शौक की वस्तुयें स्वामीजीको आकर्षित कर नहीं सकीं। जैसा कि नैसर्गिक जीवनमें कहा गया है, तदनुसार स्वामीजी शुद्ध जल-सेवन, पवित्र वायु–सेवन, आहारमें कच्चे आहारका उपयोग (टमाटर, गाजर, पत्तागोभी, नारियल, काकड़ी, मूली, हरी धनियाकी पत्तियां–इन सबका मिश्रण जिसे सलाद भी कहते हैं–गन्ना अथवा उसका रस, नीबूका शरबत, फल (पपीता, सन्तरा, सेव, अंगूर, आम, अंजीर, अखरोट, बादाम, पिस्ता

आदि) गाय अथवा बकरीका दूध आदि सात्त्विक वस्तुओंका उपयोग) करते हैं। भोजनके समयमें दाल, भात, रोटी साग-सब्जीका उपयोग करते हैं। परन्तु ये सब वस्तुयें अल्प परिमाणमें ही रहती हैं। मिर्च-मसाला, इमली, नमक आदि उत्तेजक पदार्थोंका उपयोग बहुत कम मात्रा में करते हैं। महीनेमें कमसे कम दो उपवास (प्रति एकादशीको) करते हैं। उपवास के दिन नारियल का जल, नींबूका शरबत आदि द्रव पदार्थोंको ग्रहण करते हैं, यह कितना आरोग्यदायक सात्त्विक आयोजन है !

एक दिनकी बात

एक दिन कुछ समयका अवकाश देखकर मैंने स्वामीजीसे विनम्रतापूर्वक पूछा— "आप इस मोहमयी मायानगरी बम्बईमें सुदीर्घ कालसे रह रहे हैं। यहांका जल-वायु, आहार, वातावरण अशुद्ध (अप्राकृतिक) है। अपने निजी अनुभव से मैं जान सका हू कि बम्बई-जैसे विशाल नगरों में रहनेवाले लोग किसी न किसी शारीरिक और मानसिक रोगसे पीड़ित हैं। वे शरीर तथा मनसे दुर्बल तथा व्याधि ग्रस्त रहते हैं। आपका अनुभव क्या कहता है ? क्योंकि जनसेवा को प्रभु-सेवा मानकर ही आपका जीवन व्यतीत हो रहा है। मानवका यह स्वभाव है कि वह अन्य सुविख्यात महात्माओं की तरह जगत्-प्रसिद्ध श्रीरामतीर्थ योगाश्रमके सचालक और अन्य अनेक संस्थाओंके ट्रस्टी तथा उन्हें सत्परामर्श और निर्देश देनेवाले विरल व्यक्तित्वधारी मानवके जीवनकी विविध प्रवृत्तियोंसे परिचित हो और उससे यथोचित लाभ उठाये। मानव स्वभावतः अनुकरणवृत्तिका होता है, इसीलिये वह महापुरुषोंके जीवन-चारित्रोंको पढ़ता, मनन करता और तदनुसार आचरण करनेके लिये उत्सुक और उत्साहित होता है। आपका जीवन सचमुच ही एक दिव्य दीपशिखा के समान दीप्तिमान् है। इसके शान्त और सौम्य प्रकाशमें ऐसे लोग भी अपने जीवनके वास्तविक पथको देख सकेंगे, जो अन्धकारमें भटक रहे हैं और अधोगतिकी ओर निरन्तर आंख मूदकर बढे चले जा रहे हैं; जिनका जीवन आसुरी है और जो ईर्ष्या-द्वेष, घृणाका प्रचार कर रहे हैं; जो निन्दा, चुगुली, व्यभिचार और द्यूत (जुआ) आदि अनिष्टकारी आचरणोंमें ही अपने जीवनके अमूल्य क्षण नष्ट कर रहे हैं; जो काम-क्रोधादि मनोविकारोंसे जकडे हुए हैं;

निस्सन्देह ऐसे हीनवृत्ति मनुष्य भी सफलता और सिद्धिप्राप्त महापुरुषकी उदात्त जीवन गाथाको पढ़-सुनकर उर्ध्वगामी विचारोंसे भर उठते हैं और स्वयंसिद्ध स्थितिपर पहुंचनेके प्रयत्न प्रारम्भ कर देते हैं। सत्संग, सात्विक आहार, पवित्र स्थानमें निवास, सद्ग्रन्थोंका पठन, ब्रह्मविद्याका व्यासंग, योगाभ्यास, दान-पुण्य शान्ति-दान्ति, तितिक्षा उपरति आदि कर्तव्योंके पथपर दृढतापूर्वक चलकर अपने जीवनके वास्तविक प्रश्नको हल कर लेते हैं। उनके जीवनमें एक अभिनन्दनीय और मगलकारी परिवर्तन होता है और वही समाजविरोधी मानव समाजके संरक्षक, समाजके हितैषी और उसके प्रिय बन जाते हैं। अतः आप अपने जीवनव्यापी कार्यों के अनुभव अवश्य प्रकट करनेकी कृपा करें। आपकी उदात्त जीवन-प्रवृत्तियोंसे परिचित होकर मानव निस्सन्देह अपने जीवनको उन्नत बनानेके लिये उत्कण्ठित होगा।

स्वामीजीका विवेचनात्मक और सारगर्भित उत्तर

उत्तरमें स्वामीजीने मधुर और अर्थगर्भित वाणीमें मुझे समझाया कि पंचमहाभूतोंके योगसे निर्मित मानवके इस जड़ शरीरका सदुपयोग यही है कि वह इससे व्यवहार और परमार्थका साधन यथाशक्ति कर ले। ऐसा करने से मन तथा शरीरके सप्तधातु प्रसन्न परिष्कृत और शुद्ध रहते हैं। तात्पर्य यह कि यथासम्भव अवकाशयुक्त ऐकान्तिक पवित्र स्थानमें निवास करना चाहिये। शरीर की तरह घर भी देव-मन्दिरके समान है, इसे हमेशा पूर्णतया शुद्ध रखना चाहिये। ऐसा करनेसे हमारा मन भी स्वच्छ, प्रसन्न और पुलकित रहेगा। जहा स्वच्छता होती है; वहां सरस्वती और लक्ष्मी अविचल निवास करती हैं। इस परमानन्दपूर्ण स्थितप्रज्ञ अवस्था में ही हम शतहस्त होकर विद्या, ज्ञान, धन, जीवनकला और व्यवहारप्रवणताका अर्जन करते हैं-बटोरते हैं और सहस्रहस्त होकर जन-कल्याणार्थ उसका व्यय करते हैं-सदुपयोग करते हैं। यह अवस्था सिद्ध हो जानेपर मानव सामान्य स्थितिसे बहुत ऊँचे उठ जाता है और वह समाज का एक विरल-विशेष व्यक्ति के रूपमें सर्वत्र पूजित और समादृत होता है। इसके अतिरिक्त शारीरिक और मानसिक प्रकृतिको नीरोग बनाये रखने में आहारका महत्त्व भी कम नहीं है। शुद्ध, सात्विक आहारसे शुद्ध ओजस बनकर पवित्र मन, बुद्धि, शक्ति, चित्त और अहंकार बनते हैं; अतः आत्माके इन विभिन्न सूक्ष्म उपकरणोंको पवित्र और निर्विकार बनाये रखनेकी दिशा में सतत प्रयत्नशील रहना चाहिये।

पुष्प का आध्यात्मिक महत्व

सत्संग और सद्ग्रन्थों का पठन भी दैनिक जीवनका आवश्यक कर्तव्य होना चाहिये। जैसे प्रतिदिन सुगन्धियुक्त पुष्पोंके समागममें पहुँचने, उनकी सुगन्ध में श्वासोच्छ्वास लेने और उनके समीप-दर्शनसे हमारी आंखों द्वारा हमारे शरीरमें जो जीवनतत्त्व प्रविष्ट होता है; वह अपनी ही तरह हमें प्रफुल्ल और रसमग्न बना देता है। पुष्प अपनी सुगन्ध और सुन्दरतासे अनायास ही सबको अपनी ओर आकर्षित होने को बाध्य करता है। बम्बई में अनन्त पुष्पराशि देव-प्रतिमाओं पर चढ़ती है। सुकुमार पुष्पका रूप-विधान कितना मोहक है। मानव भी पुष्प की इन विशेषताओंका मूल्यांकन करता है। वह उसे अपने देवता पर चढ़ाता है और देव-प्रतिमाके अग प्रत्यगोंको फूल और फूलमालाओंसे ढक देता है। देव-प्रतिमा इस प्राकृतिक श्रृंगारसे सजीव होकर मुस्करा उठती है और हमपर कल्शणकारी आशीर्वादोंकी वर्षा करने लगती है। भारतीय गृह देवियां जब फूलोंके विविध अलंकारों से अपने शुभांगोको सजाती हैं, तब वे प्रत्यक्ष जगदम्बाके रूपमे हम अपना दर्शन कराती हैं। फूल हमारे सर्वांगपर सुन्दर प्रभाव डालता है और उत्फुल्ल तथा विकसित बनाने में समर्थ होता है और हमारी आत्मा उसे देखकर आनन्दोच्छ्वसित हो उठती है। अस्तु, प्रत्यक्ष और जड़ रूपमें हम भले ही फूलोंसे उपलब्ध लाभोंका अनुभव कर न सकें। फिर भी, फूलोंसे हम ऐसे अदृश्य लाभ उठाते रहते हैं जो आश्चर्यजनक हैं। यही कारण है कि सभी सामाजिक और व्यक्तिगत शुभ कार्योंमें फूलोंका अग्रस्थान है। व्याख्यान, मानपत्र, पूजा-पाठ, जप-तप आदि विविध सांसारिक और पारमार्थिक अनुष्ठानोंमे सुगन्धियुक्त और मनमोहक फूलोंका उपयोग सर्वव्यापी बना हुआ है। इसी प्रकार शुद्ध जल आदिका सेवन यथोचित रूपमें करते रहना चाहिये। इस जड़ शरीरको नीरोग बनाये रखनेमें शुद्ध जलका भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। केवल इतना ही योगाभ्यास की पूर्णता के लिये पर्याप्त नहीं है। इन सब कर्तव्योंके साथ शुद्ध खादी के वस्त्रका परिधान करना, सुख दु:खमें मनको संयत, शान्त और सावधान रखना भी अनेकशः कर्तव्योंके साथ एक अनिवार्य कर्तव्य है।

सूक्ष्म दृष्टि डालनेपर भलीभांति मालूम हो जायेगा कि निर्जन, सुशान्त और दिव्य नैसर्गिक दृश्यों के साथ मानव-जीवनका घनिष्ठ सम्बन्ध सनातन कालसे चला आ रहा है। हम देखते हैं कि ऋषि-महर्षि, साधु-सन्त, योगी, पण्डित आदि

साधनानिष्ठ जनों को प्रायः ऐकान्तिक जीवन ही रुचिकर था। याज्ञवल्क्य, विश्वामित्र, वाल्मीकि, अगस्त्यादि महर्षि, जनक युधिष्ठिरादि राजा, विदुरादि नीतिज्ञ आदि विद्यादान, प्रजापालन आदि कर्तव्यका यथावत् पालन करने के पश्चात् ऐकान्तिक जीवन बितानेकी ओर प्रवृत्त हुए। भारतवर्ष में यह नियम था कि जनसाधारण या विशेष जन सांसारिक गृहस्थ-जीवनमें रहने के पश्चात् वृद्धावस्था आ जानेपर या किसी विशेष अवधि के बाद वन, पर्वत, गंगादि नदियों के तटवर्ती स्थानोंपर रहने लगते थे। इससे स्पष्ट होता है कि इन प्रशान्त और स्वयंसुन्दर स्थानोंपर उन्हें परम सुख-शान्ति और आनन्द की अनुभूति हुई होगी।

प्राकृतिक जीवनमें वन-पर्वतोंका महत्व

प्राकृतिक जीवनमें वन-पर्वत भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं, वहांका शान्त और शुद्ध वातावरण मानवको दिव्य शान्तिका अनुभव कराती है। भारतीय संस्कृति में वन-पर्वतोंकी सनातन कालसे प्रतिष्ठा है। वन-पर्वत भारतीय जीवनके अविच्छिन्न अंग रहे हैं और वे हमारे जीवनके साथ ओतप्रोत हैं। हमारा मन वन-भ्रमण के लिये लालायित होता है। अस्तु निरन्तर कार्य-व्यस्त रहनेके बाद जब कभी मेरे जड़ शरीरमें थकावट, मनमें दौर्बल्यके चिन्ह जान पड़ते हैं; ऐसी दशामें-भले किसीको हमारी इस अभियात्रा की जानकारी न हो; और मैं भी अल्पअवधिके लिये ही क्यों न जाऊँ-तुरन्त मैं बम्बईसे कुछ मीलके अन्तरपर अवस्थित वन्य और पहाड़ी क्षेत्रोंमें मोटर, बस अथवा रेल्वे द्वारा जा पहुँचता हूं और इन नैसर्गिक पवित्र स्थानोंपर योगाभ्यास करता हूँ। आशामय विचारोंमें तन्मय होकर उस प्राकृतिक सौन्दर्यमें अपने जीवन को ओतप्रोत कर देता हूं और अलौकिक आनन्द की अनुभूति में निमग्न हो जाता हूं। यद्यपि पर्वतोंकी चढ़ाईमें कुछ कष्ट होता है। परन्तु परम्परागत प्राप्त और क्रमशः पूर्णविकसित इच्छाशक्ति इन कष्टोंको स्वतः दबा देती है। कभी-कभी सपरिवार भी वन-पर्वत-प्रदेश-भ्रमणके लिये जाता हूँ। कम से कम सप्ताहमें एकबार अवश्य ही प्रशान्त प्रदेशोंके दर्शन का आनन्द लेता हू। इसके प्रतिफलस्वरूप मैं सदैव स्फूर्ति, आनन्द और स्वास्थ्यपूर्ण स्थिति का अनुभव करता रहता हूं। यह वही आरोग्य और आनन्द है, जिसे प्राप्त करनेके लिये सर्वसाधारण स्त्री-पुरुष विविध प्रकारकी औषधिया इंजेक्शन, जीवनतत्त्वयुक्त गोलियोंका सेवन करते हैं। वे इसीलिये नानाप्रकारके व्यसनों

पड़ जाते हैं और रहन-सहन, वेषभूषा आदि विलासितापूर्ण एवं मौज-शौककी वस्तुओंको अपनाकर अपने नैसर्गिक सौंदर्य को कृत्रिम उपादानोंसे सर्वांग आच्छादित करते हैं। फिर भी, उनके शरीर और मनको अभीष्ट आनन्दानुभूति नहीं होती और वे दुखी रहते हैं। इसके विपरीत थोड़ी ही देरके लिये क्यों न हो; प्रकृति की गोदमें मैं लेट जाता हूं और जितनी आवश्यक है, मुझे आत्मिक शान्ति उपलब्ध हो जाती है। इसी संचित शक्ति के आधारपर मैं सप्ताह भर निरन्तर कर्मरत रहता हू। मेरा यह आयोजन अब मेरे पीछे व्यसन बनकर लग गया है। जैसे किसी व्यसनग्रस्त मानवको अभीष्ट वस्तु न मिलनेपर उसके मानसिक विचार बारबार उस ओर उत्कण्ठित होकर दौड़ते रहते हैं; उसी तरह मेरी मानसिक भावनायें वन-पर्वतादि नैसर्गिक दृश्योंके दर्शनकी प्रबल इच्छा-शक्ति का जन्म दे देती हैं और मैं अनायास ही उनकी ओर चल पड़ता हूं। परीक्षार्थ पारिवारिक जनोंसे मैं पूछता हूं कि आज छुट्टीका दिन है; कहां जानेकी इच्छा है। सब लोग एकस्वरसे यही उत्तर देते हैं कि पर्वतीय क्षेत्रोंमें (थाना, मुलुण्ड, नासिकके रास्तेमें अवस्थित खण्डलाघाट, केनेरी गुफा, गोरेगांवका पर्वत-क्षेत्र, गोड़ बन्दरके पर्वतीय क्षेत्र आदिमें) चालिये। उनका यह उत्तर सुनकर मेरा मन प्रसन्न हो उठता है। इसका कारण यह है कि आजकलके अधिकांश अल्पवयस्क किशोर और नवयुवक पर्वतीय प्रयाणके कष्टप्रद कार्य और मौज-शौकसे रहित जीवनको बिलकुल पसन्द नहीं करते। अपने आप इस प्रकारकी इच्छा प्रकट करने का कारण हमारे पारिवारिक जनोंका सुसंस्कृत और अनुशासनबद्ध जीवन है। उनके जीवनका यह स्वभावगत ध्येय बन गया है; फलतः उनका स्वास्थ्य सन्तोषप्रद रहता है।

अस्तु केवल वन-प्रदेशमें घूमनेसे ही सम्पूर्ण उद्देश्य-सिद्धि सम्भव नहीं। जैसे षट्रसोंसे मानव-शरीरगत सप्तधातुओंका निर्माण होता है; उसी तरह निद्रा भी जीवन-चर्याका एक आवश्यक अंग है। मैं प्रतिदिन कमसे कम ८ घण्टे की प्रगाढ़ निद्रामें सोता हूं। स्थूलसे सूक्ष्म और सूक्ष्मसे कारणशरीरमें प्रवेश करनेकी स्थिति निद्रा है। अर्थात् मानवका यह शरीर-मन्दिर अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश और आनन्दमय कोशसे बना है; अर्थात् आत्माके पंचकोश हैं। इसी प्रकार कारणशरीरके साथ सम्बन्ध रखना आत्माके निकट निवास करना है-आत्माके सहवासमें रहना है। आत्म-शक्तिके आधारपर ही स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण शरीर अपने-अपने कार्यको यथोचित सम्पन्न करते हैं। समस्त दिन काम करनेके बाद खर्च किये गये बल (सामर्थ्य) को पुनः प्राप्त

करने के लिये आहार, जल, विहार, विचार आदि अनेक साधनों और उपसाधनों की आवश्यकता है; उसी तरह निद्रा भी जीवनका अत्यावश्यक अंग है। कुछ लोगोंकी धारणा है कि योगाभ्यासी और त्यागी लोगोंको कम निद्रा लेनी चाहिये। जो लोग शारीरिक परिश्रमसे सर्वथा वंचित हैं, जिन्हें केवल बौद्धिक श्रम ही करना पड़ता है और जो लोग बैठे-बैठे, पढ़ते-पढ़ते अथवा प्रवासके समय कुछ देरके लिये निद्रा-जैसी अवस्थापर पहुच जाते हैं और कुछ लोग दोपहर में १ से ४ बजेतक सोते हैं; वे लोग रात्रिकालीन गहरी निद्राका आनंद कैसे पा सकते हैं! भले ऐसे-दिनमें सोनेवाले-लोग रातमें अल्पकालीन निद्रा लेकर सन्तुष्ट हो जायें, परंतु अन्य लोगोंको-जिन्हें विशेष परिस्थितिवश दिनमें बिलकुल सोनेको नहीं मिलता-कमसे कम ८ घण्टेकी निद्रा अवश्य लेनी चाहिये। शान्त और गहरी निद्रा शरीर और मनको उत्साह और नवीन उल्लाससे भर देती है और मानव तरोताजा होकर पुनः अपने दैनिक कार्योंमें योग्यतापूर्वक तत्पर रहता है।

वन-भ्रमणका विशेष प्रेम

कोई विशेष प्रसंग उपस्थित होनेपर श्रीरामतीर्थ योगाश्रमकी मोटरमें हजारों मील की यात्रा करनी पड़ती है। इस अभियात्रा-कालमें रास्तेमें पर्वतापर अथवा गंगादि नदियोंके तटपर, निर्जन स्थानोंमें जहां कहीं भी तीर्थस्थान, मन्दिर आदि मिलते, उनके दर्शन करता हूं और वहां के नैसर्गिक दृश्यों के आनन्दका भी अनुभव करता हू। कभी-कभी रेलवे या वायुयान (विमान) से भी हजारों मीलकी लम्बी यात्रा करनी पड़ती है; ऐसे अवसरपर जहां कहीं भी समयावकाश मिलता है; तुरन्त योगाभ्यास और वन्य क्षेत्रों में भ्रमण-विहार अवश्य करता हूं। मेरी इन प्रवृत्तियोंके फलस्वरूप अभीतक मेरा शारीरिक आरोग्य यथावत् सुरक्षित है; मनोबल और आत्मिक शान्तिकी अमृत-वर्षाका जीवन-रस पानकर मैं परम तृप्तिसे संवलित रहता हू। आयु के अनुसार उसका जैसा प्रभाव और लक्षण शरीरपर प्रकट होना चाहिये, वैसा होता नहीं, बल्कि अल्पवयस्क नवयुवकोंके समान शरीर के सभी हाव-भाव, हलचल प्रत्यक्ष लक्षित होते हैं। लगभग १५ से २० वर्ष पहले जिन लोगोंने मुझे देखा था, वे अचानक मिलने पर बिना सोचे और पूछे ही कह बैठते है कि स्वामीजी आपकी शारीरिक हलचल में आयुकी दृष्टिसे जैसा परिवर्तन होना चाहिये; वैसा प्रकट नहीं होता; अर्थात्

अब भी आपका शरीर सशक्त, स्वास्थ्यसम्पन्न, कुशाग्र बुद्धियुक्त और कार्यकुशलता में अग्रगण्य जान पडता है।

सन्तोंका परोपकारी जीवन

स्वामीजीका यह स्वानुभव सुनकर और कुछ आदर्शोंके प्रति उनकी आदर-भावना को देखकर मुझे अतीव आनन्द हुआ। स्वामीजी समाजकी सक्रिय सेवा करते हैं। आजकल लोगोंमें पुस्तकीय अध्ययन-ज्ञान होता है और वे कथन तक ही सीमित रहते हैं; तदनुसार–कहनेके अनुसार कर्ममें प्रवृत्त होनेवाले और अपने आयोजनोंसे जनसाधारण को लाभ पहुंचानेवाले इस देश–दुनियामें बहुत कम पाये जाते हैं। मैं तो स्वामीजीके समस्त सद्‌गुणों, सत्कार्यों और स्वानुभवोंसे परिचित नहीं हूं। फिर भी सन्त-महात्माओंके सम्बन्धमें सत्य ही कहा जाता है–

सरवर, तरुवर, सन्तजन,
चौथे वरसा–मेह।
परमारथके कारणे,
इन चारोंकी देह।

अथवा—

'तुलसी' सन्त, सुअम्बतरु,
फूल–फलहिं परहेत।
इतते ये पाहन हने,
उतते वे फल देत।

स्वयंसिद्ध साधक स्वामीजी

उपर्युक्त कहावतके अनुसार सचमुच ही श्रीरामतीर्थ योगाश्रम की प्रवृत्ति, उद्देश्य और उसके शुद्ध वातावरण पर दृष्टिपात किया जाये तो वह सम्पूर्ण श्रद्धा रखने योग्य है। स्वामीजीका जीवन जन–कल्याण के कृपाभावसे ओतप्रोत है। आपके पास

आनेवाले–व्याख्यानके समय, योगाभ्यासके समय अथवा अन्य विशेष स्थितियों और कारणोंको लेकर आनेवाले–जनों–वे भोगी हों या त्यागी, पण्डित हों या अपण्डित, महात्मा हों या हीनात्मा, गृहस्थ हों या सन्यासी, पूंजीपति हों या निर्धन, स्त्री, बालक, वृद्ध–कोई भी हो–सब ने स्वामीजीके सान्निध्यमें आकर कुछ न कुछ लाभ अवश्य ही उठाया है। किसीको शारीरिक स्वास्थ्य, किसीको मानसिक शान्ति–स्थिरता, किसीको आत्मदर्शन, किसी को आर्थिक लाभ और किसीको व्यावहारिक उन्नति का प्रशस्त पथ दिखाकर तदनुकूल आचरण करने की प्रेरणा प्रदान की है। जिनका मन स्वभावतः शुभभावना में निमग्न रहता है, वे लोग अधिकाधिक लाभ उठाते देखे जाते हैं। साधक की प्रसुप्त शुभ और शुद्ध मनोवृत्तियाँ एक अदृश्य मंगल स्पर्श पाकर सजग हो उठती हैं और साधक उठकर चल पड़ने के लिये उत्साहित हो उठता है। अशुभ भावनावाले भी स्वामीजीके समागममें आये और स्वामीजीने अपनी बलवती स्वाभाविक शुभेच्छा–शक्तिसे उन्हें ऐसा प्रभावित किया कि उन्हें पश्चात्तापपूर्वक अपने अशुभ भावोंको दूर भगाना पड़ा। प्रभावित मानवके मनपर दीर्घकालसे जड़ जमाकर बैठी हुई मनोदशाओंमें उत्क्रान्ति उत्पन्न करना–उसे परिवर्तित कर देनेका प्रयास करना किसी साधारण व्यक्तिका काम नहीं। इसके अन्तर्गत अदृश्य प्रबल आत्मशक्ति, अप्रतिहत मनोबल और उस सिद्ध जीवन–कलाका गुप्त हाथ रहता है, जो विरल शक्तियोंके पास होती है। स्वामीजीकी यह मनोवैज्ञानिक उपचार–कला सैकड़ों लोगोंको आध्यात्मिक मार्गका अनुयायी बना चुकी है। स्वामीजी साधनाको अपनी चिर–सहचरी बनाये हुए हैं। उनका जीवन 'साधना' का मूर्तिमान प्रतीक है। स्वामीजी स्वयंसिद्ध साधक तो हैं ही, साधकोंके निर्माता भी हैं। उनका अधिकांश जीवन साधना करने और साधकोंका निर्माण करने में ही व्यतीत हुआ है। स्वामीजीके अधिकांश साधक शिष्य अपनी साधनाको सफल बनाकर साध्य–लक्ष्यको सिद्ध करके–प्राप्त करके आज अपने सांसारिक और पारमार्थिक कर्तव्योंका पालन कर रहे हैं। प्रसंगोपात यह भी पता चला कि जिन स्त्री–पुरुषोंसे स्वामीजी बिलकुल परिचित नहीं, वे भी श्रीरामतीर्थ योगाश्रमकी सेवा–सिद्धियों के प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए तन–मन–धन से उसकी सहायता कर रहे हैं: इसमें कोई सन्देह नहीं।

योगाश्रमके कार्य–विस्तारकी महत्त्वाकांक्षा

स्वामीजी की हार्दिक इच्छा है कि योगाश्रमका कार्य–क्षेत्र बम्बई–नगरतक ही सीमित न रहे। स्वामीजी इतनेसे ही सन्तुष्ट होकर बैठ रहना नहीं चाहते; अपितु वे समग्र भारत में नगर–नगर और गांव-गांवमें योगाश्रमके कार्यका विस्तार करना चाहते हैं, जिससे भारतीय जनगण योगाभ्यास के भौतिक और आध्यात्मिक लाभोंसे परिचित हों और योगाभ्यासके द्वारा अपने शरीरको बलवान्, गठीला और स्थिति-स्थापकताकी शक्तिसे भरपूर और मनको प्रसन्न, चैतन्यशील और उर्ध्वगामी बनाकर आत्मदर्शनके निजानन्दका रसास्वादन कर सकें। सभी स्त्री–पुरुष संसार में रहकर अपने सांसारिक कर्तव्यों पंचमहाभूत–यज्ञादि का पालन करते हुए यथेच्छ सुख–साधनों का सम्पादन करने में समर्थ हों। श्री० स्वामीजीका आन्तरिक चिन्तन, हार्दिक अभिलाषा और अन्तिम उपदेश यही है कि सभी स्त्री–पुरुष आत्मानन्दमें सदैव निमग्न रहते हुए सुखी जीवन–स्थिति प्राप्त करें।

स्वामीजीके उपास्य

स्वामीजीके उपास्य देवता ब्रह्मा, विष्णु, शिव होनेपर भी वे निराकारके सूक्ष्म चिन्तनकी ओर प्रवृत्त रहते हैं।

"आत्मवत् सर्वभूतेषु य पश्यति स पण्डितः"–इस श्लोकार्धके अर्थ और भावका मनन करते हुए समग्र चराचर जगत् ही जिस भावात्मक स्थितिपर पहुंचकर निराकार प्रभुका ही साकार स्वरूप दृष्टिगोचर होता है; उस महान् शक्तिको हस्तामलक करनेवाले महानुभाव स्वभावतः निराकार और साकारमें एक ही प्रभुको प्रतिबिम्बित होते हुए देखते हैं। ऐसे महापुरुषोंके मननोन्मुख महान् भाव साकार और निराकारमें एक ही चरम अनुभूति–एक दिव्य दर्शन पाते हैं। फिर भी, व्यापक भावमूलक निराकार की ओर विशेष प्रेरणा रहना स्वाभाविक है।

प्रार्थनामय जीवन

श्री. स्वामीजी प्रार्थनापर विशेष बल देते हैं और उनका जीवन भी प्रार्थनामय है। आप प्रार्थनाको निर्झरिणी मानते हैं, जिससे अभिषिंचित होकर मानवका जीवन-मरुस्थल लहलहा उठता है। प्रार्थनामें निरन्तर निरत रहते हुए प्रार्थीके जीवनमें

एक ऐसी शुभ घड़ी भी आती है, जब परम प्रभुका दिव्य संगीत वह अपने अन्तरतममें सुनने लगता है। हृदयसे उद्‌गत प्रार्थना का यह प्रवाह कभी स्थगित नहीं होता। स्वामीजी का कहना है कि वाणीका सदुपयोग पवित्र प्रार्थनामय शब्दोंके उच्चारणमें है और उन शब्दोंमें भरा हुआ दिव्य भाव प्रार्थ्य और प्रार्थीकी आत्मा को एकता के सूत्रमें आबद्ध कर देता है। जब प्रार्थना हृद्‌गत पवित्र भावोंसे सराबोर होकर प्रस्फुटित होती है; तब शरीरकी रग-रगमें एक शुभ आन्दोलन उठता है और हृदयका अणु-परमाणु अलौकिक आनन्द-रसमें निमग्न हो जाता है। स्वामीजीका मत है कि जो लोग मस्त होकर प्रभुकी प्रार्थनाके गानमें रसमग्न रहते हैं; उनके समग्र कार्य-व्यवहार प्रार्थनाके रूपमें मूर्त हो उठते हैं। हम जहां भी जाते हैं, वह स्थान पवित्रता से पुलकित हो उठता है और जीवन का प्रत्येक क्षण उत्साह का ओजस्वी अनुष्ठान बन जाता है। हम अपने सभी काया में प्रभु-सेवा की अनुभूति करते हुए स्वतः उनका सम्पादन करने में लगे रहते है-हमें प्रत्येक कार्य में प्रभु-सेवा की दिव्य अनुभूति होती है। यही सच्ची प्रार्थना है और यही परम प्रभु को प्रसन्न करने और उनके नित्य सान्निध्य में पहुचनेकी सरल और स्वच्छ पगडण्डी है। भगवान् की अनन्त अनुकम्पा का दिव्य स्रोत हमारे चतुर्दिक् उमड़ता रहता है और हमारी जीवन-गति में कहीं किसी प्रकारकी बाधा नहीं आती। स्वामीजीने यह भी बताया कि प्रार्थना अन्तःकरणके मलिन भावोंको धोकर उसे निखार देती है और प्रार्थी प्रभुकी भक्ति और उसके प्रेममें तन्मय और तदाकार होकर लोकोत्तर आनन्द और दिव्य शान्ति रसकी सात्विक धारासे अपने जीवन को ओतप्रोत बना लेता है। उसकी मानसिक निर्बलतायें तिरोभूत हो जाती हैं एवं उसका मन शान्त, स्वस्थ और निर्विकार हो जाता है।

दैनिक जीवनपर विचारों का प्रभाव

अस्तु अनेक प्रसंगोंमें श्री. स्वामीजीने बताया है कि एक ही स्थानमें सम्पूर्ण विश्वासके साथ परम प्रभुकी महिमामें तल्लीन और ध्यानस्थ होकर प्रतिदिन कमसे कम १० मिनटतक प्रार्थना करनी चाहिये। मनको पूर्ण नियन्त्रित और एकाग्र बनाना पड़ता है। शास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे यह स्थिति स्वभावतः मानी जाती है कि प्रातःकाल शय्यासे उठते समय जैसे विचार मनमें उत्पन्न होते हैं; उसी तरहके उच्च या हीन, शुभाशुभ, पवित्र या अपवित्र विचार समग्र दिन

मनको घेरे रहते हैं और उसी रूपमें समग्र दिन व्यतीत होता है। प्रातःकाल जागते ही यदि भय, चिन्ता, निराशा और शंकामूलक विचारोंका प्रादुर्भाव होगा तो समस्त दिन इसी प्रकारके हीनताद्योतक विचारोंसे मन-मस्तिष्क कुंठित और उत्पीड़ित रहेंगे और यदि प्रातःकाल आशामय, सुखशान्तिप्रद और उल्लासपूर्ण विचारों का उदय होगा तो समग्र दिन वैसे ही शुभ और मनको प्रसन्न-प्रफुल्ल करनेवाले दिव्य विचारोंकी परम्परा चलती रहेगी। उत्साह और उद्यमसे मन आनन्दोद्दीप्त रहेगा। वस्तुतः मनुष्यको उच्च या हीन स्थितिपर पहुंचाने के लिये उसके विचारोंका बहुत बड़ा हाथ रहता है। मानवके जीवन-निर्माणमें उसके विचार बहुत कुछ जिम्मेदार हैं।

स्वामीजीका कहना है कि प्राचीन और अर्वाचीन कालमें राजा-महाराजाओं के प्रातःकाल शय्यात्याग करने पर (द्वापर युगमें भगवान् श्रीकृष्ण बिस्तर से उठने पर प्रातःकालीन प्रार्थना करते थे) आशा, निर्भीकता और प्रशंसायुक्त वाक्योंसे उनकी प्रशस्ति की जाती थी। यह काम भट्ट-ब्राह्मण आदि करते थे और इसका उद्देश्य यह था कि राजाओं को उनके दिनभर के राजकार्यों में विजय और सफलता प्राप्त हो। यद्यपि भारतमें आज राजाओं का अस्तित्व नहीं रहा; परन्तु जब वे राजपदपर थे, तब प्रतिदिन पूर्वोक्त विधि-विधान का पालन किया जाता था; अर्थात् इतने महान् सत्ताधीश, प्रजा-परिपालक, धन-सम्पत्तिके अतुल भण्डार से परिपूर्ण, विपुल सेनासे सुसज्जित, सुरम्य प्रासादों (महलों) से परितृप्त, परिचारकों से चतुर्दिक् घिरे, रानियोंसे सुशोभित और ऐहिक सुख-साधनोंकी प्रचुर राशिसे सम्पन्न होनेपर भी उन राजा-महाराजाओं के जीवन के एक अंगके रूपमें प्रार्थना, प्रशंसा और स्तुति का आधार रखा जाता था।

मंगलकारी और लोकप्रिय अनुष्ठान

अस्तु; स्वामीजीके उक्त आध्यात्मिक विचार निश्चय ही मानव को कल्याण-पथपर ले जानेवाले हैं। स्वामीजीका जीवन-चरित्र मानवता की ममत्वपूर्ण सेवा का उदात्त इतिहास है। इसके लिये न तो उन्हें सन्यास लेना पड़ा और न मठाधीश बनना पड़ा। योगाश्रमकी स्थापनाके पश्चाद्वर्ती आपके सभी कार्योंसे यही सिद्ध होता है कि आपने मानव को नीरोग, निर्विकार बनाकर उसे जीवनकी नैसर्गिक स्थितिपर पहुँचा देनेका व्रत धारण किया है और इसी पुण्यप्रद अनुष्ठानमें

अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया है। इसमें सन्देह नहीं कि आपने योगाश्रमकी स्थापना की और अपनी तत्सम्बन्धी प्रवृत्तियोंको इतना विस्तृत बना दिया कि इस बम्बई नगरीमें, देशके अन्य नगरों और गांवोंमें आपके लाखों साधकशिष्य, भक्त और प्रशंसक पाये जाते हैं। किन्तु इन सारी बातोंको, इस उपलब्ध लोकप्रियताको मानव-सेवाकी महत्त्वपूर्ण अभीप्सा और एतदर्थ प्राप्त प्रत्येक क्षणका सदुपयोग करते रहनेका ही फल समझना चाहिए। स्वामीजी मन, वचन, कर्मसे मुक्तहस्त होकर अपनी यौगिक साधना और आध्यात्मिक अनुभवों का वितरण कर रहे हैं, फलतः प्राणिमात्र का कल्याण तो होता ही है; साथ ही उसीके अनुपातमें स्वामीजीके सुयश-सौरभका विस्तार भी हो रहा है। जाति, सम्प्रदाय और मत-मतान्तरवादसे ऊँचे उठकर स्वामीजी जनगण का शारीरिक और मानसिक परिष्कार योग्यतापूर्वक कर रहे हैं। अतः सर्वसाधारण के मानस में आप उच्च आसनपर स्वभावतः प्रतिष्ठित हो गये है। भारतीय जनता आपकी कृतज्ञ है। वह सुयोग्य और सर्वजनशुभेच्छु मानवका सन्मान करना जानती है। भारतके सुदीर्घकालीन इतिहास में अनेक प्रभावशाली सन्त-महात्माओं और ऋषि-महर्षियों की अविच्छिन्न परम्परा पाई जाती है, जिनका उद्‌बोधन पाकर जनता अपने कर्तव्यानुष्ठानों के प्रति सजग हुई है और इन उद्‌बोधक महात्माओंके चरणोपर अपनी हार्दिक श्रद्धा-भक्तिकी पुष्पाजलि चढ़ाई है।

मानवमें दिव्य जीवनकी प्रतिष्ठा

अस्तु मानवजातिका यह ज्ञान और अनुभव नया नहीं कि सन्त पुरुष जहाँ भी रहेगा, पुष्पकी भांति अपने दिव्य सौरभको चतुर्दिक्-सर्वत्र समान रूपसे बिखेर कर अपने आसपासके वातावरणको पुलकित और अपने अनन्त आत्म-सौन्दर्यका दर्शन कराकर जन-जनको आह्लादित और रसमग्न बना देता है। वह अपनी शुभ्र आत्म-ज्योतिसे स्थानीय वातावरणमें अपनी आलोक-किरणोंको विकीर्ण करता है, जिनके धवलित प्रकाशमें जनगण अपने वास्तविक पथको भलीभांति पहचान लेते हैं और उसी पथपर आगे बढ़कर अपने जीवन-लक्ष्यपर अनायास पहुच जाते हैं। सन्तका अन्तरतम स्नेह और प्रेम-रससे छलकता रहता है तथा अपनी इस रस-माधुरीसे वह जनगणको भी आप्यायित करता है। इस अमृतधाराका पानकर जनसाधारणकी चिरसंचित पिपासा परितृप्तिकी सांस लेती है। वह कृतकृत्य हो जाते हैं। जन-कल्याणकी

अतृप्त अभिलाषाको लेकर ही सन्त आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक शक्तिका अर्जन करता है और एतदर्थ उसे परमात्मा, आत्मा और प्रकृतिकी शक्तियोंके साथ सामंजस्य बनाये रखना पड़ता है। इसके लिये उसे तपस्या करनी पड़ती है और वह जीवनकी विशेष स्थितियोंके साथ संघर्ष करनेके लिये बाध्य है। प्राकृतिक शक्तियोंको स्वानुकूल बना लेने की उसमें अदम्य शक्ति वर्तमान रहती है और आत्मानुभूतिमें वह विश्वमें सर्वोदय की भावना उत्पन्न करने में सदैव सजग रहता है। इसी सर्वकल्याणी परम्पराके मंत्रसे जनगण को दीक्षित करनेके लिये वह सदैव कटिबद्ध रहता है और इस व्यापक स्थितिपर पहुंच जाने के पश्चात् वह परमात्मासे तादात्म्य स्थापित करने के लिये कटिबद्ध होता है। सन्त का यह कठोर जीवन सचमुच वन्दनीय है और उसकी सर्वकल्याणी प्रवृत्तियां प्रणम्य हैं। सन्त जन-जनको उसकी अदृश्य शक्तियोंके प्रति सजग बनाकर उसे उच्च कर्तव्योंकी ओर उन्मुख करता है। यह वह अदृश्य शक्तियां हैं, जो विश्वका संचालन करती है। यह आध्यात्मिक चेतना सन्त को ईश्वरीय शक्ति के व्यापक एवं पारमार्थिक स्वरूप की अनुभूति कराती है। सन्त का आनन्द ऐकान्तिक होता है और उसके संकल्प (ओटो-सजेशन) बलवान् बन जाते हैं। अपनी बाह्य महानता और आन्तरिक सौन्दर्य की ज्योति को विकीर्ण करता हुआ सन्त, ज्ञान और करुणासे अभिभूत सन्त, मुक्त हृदय होकर व्यवहार, व्यापार और जीवन-कर्तव्यों में संलग्न होता है। उसका समग्र जीवन-विधान परमात्म-प्रेरित होता है; इसीलिये कहा जाता है कि सन्तों के कार्य का लेखा-जोखा-हिसाब-किताब दिया जा नहीं सकता। संक्षेपमें सन्तकी प्रत्येक क्रियाशीलता-प्रत्येक हलचल-प्रत्येक गतिविधि मानवमात्रमें दिव्य जीवन की प्रतिष्ठा करती है।

साधकोंको लोकोत्तर स्थिति पर पहुंचानेका शुभ संकल्प

स्वामीजी भारतकी इसी ऋषि-परम्पराकी महिमासे गौरवान्वित हैं। स्वामीजीमें भारत के इन सभी सन्त-महात्माओंके गुणोंका संक्रमण हुआ है। स्वामीजीमें सन्तों की समग्र प्रवृत्तियॉं पाई जाती हैं। स्वामीजी पूर्ण सन्त हैं, पूर्ण योगी है, पूर्ण साधक हैं और साधकों के निर्माता हैं। साधनाके क्षेत्रमें स्वामीजी साधकके स्वभाव और उसकी रुचिको प्रधानता देते हैं और तदनुसार परिस्थिति और प्रसाधन प्रदान कर साधकको क्रमिक उन्नतिकी ओर उन्मुख करते हैं। सुयोग्य साधकों को प्राकृतिक और पारमार्थिक शक्तियोंके सम्पादनमें सम्पूर्ण

सहयोग प्रदान करते हैं और अयोग्य साधकोंमें साधन की ओर उन्मुख होने की इच्छाशक्ति का जन्म देते हैं । साधककी मनोदशामें उत्क्रान्ति उत्पन्न करना स्वामीजी के योगका चरम लक्ष्य है । इस उत्क्रान्ति की विशेषता यह है कि यह साधक की जड़ और जीर्ण शारीरिक और मानसिक स्थिति में एक शुभ हलचल उत्पन्न करती है और साधक के बद्धमूल संस्कारों और विचारों की ग्रन्थियां खुल जाती हैं और उसके भावी जीवन की समस्या सुलझ जाती है। जीवन का नवप्रभात होता है और उस प्रकाश के आधारपर साधक अपने चरम लक्ष्यकी ओर चल पड़ता है। स्वामीजी साधक को योगयुक्तात्मा बना देते हैं। साधक अपनी उच्च जीवन-यात्रा प्रारम्भ कर देता है और इसी प्रकार वह अपने शुभ लक्ष्यकी पूर्तिके प्रयास करता रहता है। इस प्रकार योगिराजजी अपनी योग-शक्तियोंका उपयोग मानवमात्र को अभ्युदय और निःश्रेयसके पथपर पहुंचाने में कर रहे हैं। स्वामीजी सचमुच योगिराज हैं। वे सर्वोदय के मन्त्रदाता हैं। वे जन-जनमें जन-कल्याणकी भावना भरकर और उसे कल्याणकारी संस्कारोंसे सुसंस्कृत कर उसकी बहुत बड़ी सेवा कर रहे हैं। जनसाधारण भी स्वामीजी की इन सेवाओं को सम्मान की दृष्टिसे देखते हैं। उनके सामीप्यमें योगाभ्यास कर अपने भावी जीवनका शिलारोपण करते हैं और तदनुकूल आचरण कर जन-समाजमें स्नेहभाजन बनते हैं । स्वामीजी के जीवन का यही व्रत है। वे साधक को विजय-रथपर बैठा देते हैं और साधक निर्भीक होकर जीवन के प्रशस्त पथपर अग्रसर होता है। आसन, प्राणायामादि विविध यौगिक क्रियाओं का सफल साधक भौतिक (स्थूल) शक्तियोंको सिद्ध करनेके बाद धारणा-ध्यान-समाधि की साधनामें निरत होकर आध्यात्मिक (सूक्ष्म) शक्तियों का सिद्ध विनियोजक बन जाता है और स्वेच्छानुसार उनका परिचालन करता है। स्वामीजी अपनी विद्या और कला का सफल विनियोग करना जानते हैं। इसका कारण यह है कि स्वामीजी अपने जीवन को अत्यन्त संयमित रखते हैं। योगकी एकीभूत और अन्तिम स्थिति 'संयम' है । यह संयम स्वामीजीका चिरसहचर है । स्वामीजी इसी संयम-संकल्पकी प्रबलता से जन-जीवन को प्रभावित करते हैं और उसकी मानसिक वृत्तियोंको एक दूसरी ही दिशाकी ओर मोड़ देते हैं। स्वामीजीमें संयमका सम्पूर्ण परिपाक है। संयमकी नित्यसंगृहीत विद्युत्-शक्तिके प्रभावसे स्वामीजीकी शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ प्रतिक्षण सबल, सजग और क्रियमाण रहती हैं। वे नित्य ही नवीन चेतना, नवीन स्फूर्ति, नवीन उत्साह और शक्तियोंसे आत्मनिर्भर रहते हैं । स्वामीजी चरित्रगौरव हैं। उनका जीवन सर्वांग

पवित्र है। इसी रूपमें साधकोंकी मनोदशाको ढालकर वे समाजकी बहुत बड़ी सेवा कर रहे है।

देशको शक्तिशाली और सुयोग्य नागरिकों की प्राप्ति

आजके भौतिकताप्रधान युगमें—जबकि मानव अपरिमित आकाक्षाओंकी तृप्ति के लिये लालायित रहता है—जनताको सुसंस्कृत जीवनसे दीक्षित कर स्वामीजी मानवके मनको संतुलित, संयत और सेवाभावी बना देते है। स्वामीजी योगयुक्तात्मा हैं और परमानन्दमय स्थितिपर पहुंच जानेकी क्षमता रखते हैं। स्वामीजीका यह कर्मयोग है। स्वामीजी इसी कर्म–समाधि में अपने आपको लीन कर देते हैं, जिसके फलस्वरूप समाज और राष्ट्रको एक शक्तिशाली नागरिक प्राप्त होता है। योगसे अनुशासित बनाकर स्वामीजी साधकको संयमित और नियमित जीवन बितानेकी विद्या सिखा देते हैं। फलतः साधक अबाध गति से अपने घर–संसारको चलाता है। स्वामीजी निरलस, नियमबद्ध और प्राकृतिक जीवन बिताते हैं। उनमें कहीं कृत्रिमताके दर्शन नहीं होते। स्वामीजी प्राकृतिक शक्तियोंके उपासक है और इन्हींके बलपर वे अति सूक्ष्म आध्यात्मिक अनुभूतिमें भी निमग्न होते हैं।

सन्तोषका विषय है कि समाज स्वामीजीकी इन सेवाओंका मूल्यांकन कर रहा है और उनकी शक्तियोंसे लाभ उठा कर अपनी गुणग्राहकताका परिचय दे रहा है। वह स्वामीजीकी इन चिरस्पन्दित शक्तियों को अपने आपमें संक्रमण कर धन्य हो रहा है और सामाजिक जीवनमें सफलता प्राप्त कर रहा है।

अन्तिम अभ्यर्थना

निस्सन्देह स्वामीजी की जनकल्याण-परक प्रवृत्तिया आदरास्पद हैं। वर्तमान अर्थप्रधान युगमें वे मानव की महत्त्वाकांक्षाओंपर सयम का अंकुश लगा देते है और उसकी दृष्टि का इतना विशाल बना देते हैं कि आधुनिक युग की अनेक हानिकारक प्रवृत्तियों–प्रान्तवाद, भाषावाद, सम्प्रदायवाद आदिसे ऊपर उठकर साधक अपना और अपने देश का कल्याण–साधन करता है। स्वामीजी स्वयं शान्त, सहिष्णु और उदारमना हैं; स्वदेश तथा देशबन्धुओंके लिये कल्याणकारी आयोजनों के सचालक हैं और जन–जीवनपर इनका निस्सन्देह शुभ प्रभाव हुआ है।

स्वामीजी जनजीवन में उस जीवनी शक्ति का संचार कर रहे हैं, जिसके बल से योगाभ्यासी साधक प्रकृति की सतत परिवर्तनशीलता का सामना करने में शक्तिमान् होता है। स्वामीजी जड़ और स्थगित बुद्धिको एक चैतन्यमयी गति प्रदान करते हैं आर साधक नई दृष्टिसे अपना और जगत् का मूल्यांकन करने लगता है। योगिराजजी सचमुच भारत की मृत्युंजय संस्कृतिके अग्रदूत हैं और उसीका प्रचार-प्रसारकर जन-जनको अमरत्व का प्रत्यक्ष अनुभव करा रहे हैं। स्वामीजी उस भूतकालीन ऋषि-परम्परा के प्रतिनिधि हैं, जिसके अन्तर्भूत रहकर मनुष्य अभ्युदय और निःश्रेयसकी स्थितिपर पहुंच जाता है। अस्तु; आज जब कि एक ओर वैज्ञानिक उत्क्रान्ति विविध परिवर्तनोंकी सम्भावनायें-मानवजातिके सर्वांगीण उत्कर्ष की दिव्य आशा-सुरभि सर्वत्र आह्लादका अनुभव करा रही है और दूसरी ओर कलह और सर्वनाशकी विकट विभीषिकायें लोकजीवनके चतुर्दिक् घेरा डाले पड़ी हैं; मानव एक अनिश्चित स्थितिमें डावांडोल हो रहा है, ऐसे समय संसार की निरंकुश प्रवृत्तियोंपर योगका प्रतिबन्ध लगाकर स्वामीजी मानव-जातिकी बहुत बड़ी सेवा कर रहे हैं। वे जगत्को परम सुख-शान्ति और सर्वोदयका सन्देश देकर जनता के उज्ज्वल भविष्यका निर्माण कर रहे हैं। श्री. योगिराजजी आजकी कराहती हुई मानवताको सान्त्वना दे रहे हैं और शारीरिक सम्पत्ति, प्राकृतिक वैभव और आत्मिक ऐश्वर्यसे पुरस्कृत कर उसे स्वावलम्बी, समृद्धि-वान् और कृतकृत्य बना रहे हैं। सचमुच योगिराजजी की यह पावन प्रवृत्तियां विश्ववन्द-नीय हैं और लोक-जीवनमें उनकी पूजनीय प्रतिष्ठा है। अतः भगवान्से प्रार्थना है कि वे स्वामीजीको स्वदेशबन्धुओंको एक विशेष-योगयुक्त स्थितिपर पहुंचानेके लिये नित्य नई शक्तियोंसे समृद्ध करते रहें। स्वामीजी अपनी स्वयंभू शक्तियोंका अनन्त कोष अनन्त कालतक वितरण करते रहें और अपने आत्माके सौन्दर्यकी अनन्त रस-राशी उंडेलते रहकर जनगणके जीवन-घटकों को परितृप्त और परिपूर्ण करते रहें। श्री. योगि-राजजीका सुयश विश्वव्यापी और चिरप्रतिष्ठित हो और उनकी आत्माका अमृत-रस-पान कर भारतीय जन अमृतत्व की अनुभूतिमें निमग्न होते रहें। जन-जनके उदात्त और शुभ संकल्प स्थायी संस्कारोंमें रूपान्तरित होते रहें; ऐसी मेरी आन्तरिक अभ्यर्थना है।

राधामोहन मिश्र,
बम्बई

———

अनुसारिणी

उमेश–योगदर्शन ग्रंथ का

शुद्धि–पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२१	११	आदिपर	आदि
१३१	१५	१	?
१३५	२७	आर	और
१३६	१६	समायाभाव	समयाभाव
१५२	३	फूट	फुट
१५४	१३	इ	है
१५६	९	वर्षतककी	वर्षकी
१५९	१९	जलन्घर	जालन्घर
१६३	१०	चाहिय	चाहिये
१६४	१६	सायकाल	सायंकाल
१६४	२५	आर	और
१६७	६	है	हैं
१६८	२०	कितने ?	कितने

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७१	२६	शक्तिशाला	शक्तिशाली
१७५	२२	राग	रोग
१९३	१७	बढता	बनता
१९३	१९	प्रारब्धका	प्रारब्धकी
१९३	२०	पैसे	वैसे
,,	,,	है	हैं
,,	२२	बातका	बातकी
२०४	१७	बढायें	बढ़ायें
२०५	२०	शुद्ब	शुद्ध
२०६	९	कार	प्रकार
,,	१५	औैर	ओर
,,	,,	औैर	ओर
,,	१६	ओर	और
२०७	९	पूर्ववतू	पूर्ववत्
,,	१३	थे	वे
२०८	४	१७	१६
,,	२०	द्रष्टि	दृष्टि
२०८	१७	मत्स्यासरसनं	मत्स्यासनं
२१२	१९	पैर को	पैर
२१४	१७	परको	पैरको
२१४	२०	आर	और
२१६	२	अशीमें	अंगोंमें
२१६	३	होनेकी की	होनेकी भी
२१७	२२	मागको	भागको
२१९	६	उपर	ऊपर
२१९	९	उपर	ऊपर
२२४	१३	उपर	ऊपर
२२५	१०	कमर	कमरे
२२८	११	चुमने	चुभने

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३१	५	कुहानियों	कुहनियों
,,	१२	मालभांति	भलीभांति
,,	१७	उपर	ऊपर
,,	२५	मिटनमें	मिटानेमें
२३२	२	लगाना	लगना
२३३	९	दोनें परोंके	दोनों पैरोंके
२४१	१७	हैं	है
२४६	१४	और	ओर
२६२	२८	स	से
२६७	८	मौहोंको	भौहोंको
,,	११	उँगालियोंको	उँगलियोंको
,,	१२	और	ओर
२६८	२	उपरकी	ऊपरकी
१७१	४	परको	पैरको
२७३	७	है	हैं
२७८	११	परिभाणमें	परिमाणमें
,,	२३	शोघ	शोथ
२८८	२२	पडेग	पडेगा
२९०	१६	कराय	कराये
२९१	८	घण्टेक	घण्टेके
,,	११	च।हिय	चाहिये
३००	३	ग्रन्थो	ग्रन्थों
३००	८	बाईं और	बाईं ओर
३०४	३	हयेलियों	हथेलियों
३०६	४	भेदके	मेदके
३०७	११	चारों और	चारों ओर
,,	१८	सयममें	समयमें
३०८	१	विचारोंसे साथ	विचारोंके साथ
,,	२१	आ प्रहुंती है	आ पहुचती है

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०९	८	उष्टासन	उष्ट्रासन
३१२	१७	२ ते ४	२ से ४
३१८	८	महिने तक	महीने तक
३२५	१६	बावासीर	बवासीर
३२७	९	ओपरशन	आपरेशन
३२८	२	पातःकाल	प्रातःकाल
३३०	५	आर	और
,,	१५	प्रणायामकी	प्राणायामकी
३३२	९	लिय	लिये
३३६	५	अभिष्ट	अभीष्ट
३३७	२१	आशमाय	आशामय
३३८	७	महिने	महीने
३३९	२	जाका भी	जौका भी
३४१	८	ऋतूमें	ऋतुमें
३४५	२	सवर्धनमें	सवर्धनमें
३४६	११	हागा	होगा
३४७	९	निर्मीक	निर्भीक
३५३	४	वठू	बैठू
३५४	२०	करते है	करते हैं
,,	,,	व्यक्तिका	व्यक्तिको
३५५	९	रास्त में	रास्ते में
३५९	२१	नहा हुआ	नहीं हुआ
३६२	३	भाजन	भोजन
३६४	११	महिनेमें	महीनेमें
३६७	११	मृग-मरीचिकामें	मृगमरीचिकामें
३७१	८	स्थिनप्रज्ञ	स्थितप्रज्ञ
,,	,,	जा	जो
३७३	९	भावनाय	भावनायें
३७५	१०	आघ्यामिक	आध्यात्मिक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	२१	होती हे	होती है
,,	२७	मानवोंका	मानवोंको
३७६	२९	सम्भानाओं	सम्भावनाओं
३७७	१९	गोष्यद	गोष्पद
३७८	११	चिकित्साकोंके	चिकित्सकोंके
३७८	२४	पचभूतोंको की	पंचभूतोंकी
३७९	२१	सलाइ-सूचना	सलाह-सूचना
३८०	५	करनकी	करनेकी
,,	५	रखते है	रखते हैं
३८०		चिकित्सका	चिकित्सकका
३८१	३	आवश्वक	आवश्यक
३८१	१०	चरितानायक	चरितनायक
,,	१६	देते है	देते हैं
३८१	२४	ससारिक	सांसारिक
३८२	३	देते हे	देते है
,,	६	रहते है	रहते हैं
,,	२२	निकलाते	निकालते
३८३	११	महाराजाने	महाराजने
,,	१७	महारज	महाराज
३८४	३	कालओं	कलाओं
३८४	२३	ओर	और
३८५	३	स्वगींय	स्वर्गीय
३८५	२५	ओर	और
३८६	९	केबल	केवल
३८६	२०	बालोकी	बालोंकी
,,	२३	सहयक	सहायक
३९१	५	सांसरिक	सांसारिक
,,	११	कराती है	कराता है
३९२	४	प्रकृति भी	प्रकृतिकी